मन्मथनाथ गुप्त
प्रतिनिधि कहानियाँ

सम्पादक
डॉ० कमलकिशोर गोयनका

जनप्रिय प्रकाशन
29/60, गली नं 11, विश्वास नगर
दिल्ली-110032

प्रकाशक
जनप्रिय प्रकाशन
29/60, गली नं० 11, विश्वास नगर,
दिल्ली-110032

संस्करण
प्रथम, 1985

मूल्य
पैंसठ रुपये

मुद्रक
शांति मुद्रणालय, दिल्ली-32

MANMATHNATH GUPTA : PRATINIDHI KAHANIYAN
(Representative Stories)
Edited by Dr. Kamal Kishore Goyanka Rs. 65.00

भूमिका

मन्मथनाथ गुप्त : प्रतिनिधि कहानियाँ पाठकों के हाथों मे सौपते हुए मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है। हिन्दी मे अभी तक कहानीकार द्वारा अपनी चुनी हुई कहानियों के संकलन 'मेरी प्रिय कहानियाँ' तथा 'चर्चित कहानियाँ' शीर्षकों से प्रकाशित होते रहे हैं। रचनाकार का अपनी रचना के प्रति जो दृष्टिकोण होता है, वह किस रचना को श्रेष्ठ एवं प्रतिनिधि मानता है तथा वह किन रचनाओं को अधिकार के साथ पाठकों के सम्मुख बार-बार रखना चाहता है, इसे साहित्य के पाठक जानने के लिए बराबर उत्सुक रहे हैं। यद्यपि लेखक के लिए सभी रचनाएँ समान महत्त्व रखती हैं, परन्तु पाठक की उत्सुकता यह जानने में भी रहती है कि लेखक अपनी किन-किन रचनाओं को अपनी प्रतिनिधि रचनाएँ मानता है। यह साहित्य को साहित्यकार के दृष्टिकोण से देखने की पद्धति है, जो साहित्य-संसार में उत्सुकता एव सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है, परन्तु पाठक और आलोचक का कई बार लेखकीय चुनाव से सहमत हो पाना कठिन होता है। लेखक जिस रचना को श्रेष्ठ मानता है, पाठक उसकी श्रेष्ठता को कई बार स्वीकार नही कर पाता। कई बार ऐसा भी होता है कि पाठक और आलोचक ऐसी रचना को श्रेष्ठ एवं युग प्रवर्त्तक मान लेते हैं जिसे लेखक ने अत्यन्त सहज भाव से लिखा है तथा जिसके सम्बन्ध मे श्रेष्ठता का उसका कोई दावा नही है। रचना को श्रेष्ठ एवं अश्रेष्ठ समझने के लेखक एवं आलोचक के मापदण्ड कई बार भिन्न-भिन्न होते हैं और साहित्य के अध्ययन तथा उसकी समीक्षा मे इन भिन्न दृष्टिकोणों एवं मतों को सदैव समान स्वीकृति मिलती रही है।

मन्मथनाथ गुप्त : प्रतिनिधि कहानियाँ शीर्षक से प्रकाशित यह संकलन एक सहृदय पाठक की हैसियत से तैयार किया गया है, जिसमे निश्चय ही आलोचक की मूल्यांकनपरक दृष्टि भी विद्यमान रही है। आलोचक भी एक प्रबुद्ध पाठक ही होता है जो अपनी सम्वेदनात्मक एवं बौद्धिक क्षमता से 'रचना' के प्रति रिएक्ट करता है। साहित्य-शास्त्र, साहित्य की परम्परा, समकालीन साहित्य आदि का ज्ञान आलोचक की सम्वेदनात्मक एवं बौद्धिक क्षमताओं

साथ संयुक्त होकर उसमें रचना की कलात्मकता को पकड़ने एवं परखने की क्षमता उत्पन्न करता है। आलोचक कई बार रचना में से ही मूल्यांकन के बिन्दु तलाश करता है और उन्ही से उसकी कलात्मकता की पहचान करता है। किसी एक रचना के प्रति भिन्न-भिन्न आलोचक के भिन्न-भिन्न निष्कर्ष हो सकते हैं और प्राय कई बार होते भी हैं क्योंकि रचना भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव डालती है तथा दो व्यक्ति एक ही रचना को एक ही दृष्टि, एक ही सम्वेदना तथा एक ही कलात्मक दृष्टिकोण से नही देख पाते। इस कारण एक रचना की श्रेष्ठता अथवा अश्रेष्ठता अनेक बार विवादास्पद होती है। असल मे यह विवाद भी रचना की श्रेष्ठता का सूचक होता है। इस पुस्तक मे संकलित कहानियो को, पाठकों से मेरा आग्रह है, इसी दृष्टिकोण से देखें कि ये सकलित कहानियाँ सम्पादक के सम्मुख उपलब्ध कहानियों मे से चुनी गयी हैं और मम्पादक ने इन्हें लेखक की प्रतिनिधि कहानियाँ माना है। किसी भी दूसरे सम्पादक अथवा प्रबुद्ध पाठक की सम्मति इससे भिन्न हो सकती है।

इस संकलन को तैयार करते समय जो सबसे बडी कठिनाई सामने आयी वह यह थी कि स्वय लेखक को अपनी कहानियों की संख्या न तो ज्ञात थी और न उनके पास उनकी सभी प्रकाशित कहानियाँ ही उपलब्ध थी। उनके एक आलोचक ने उनकी कहानियो की सख्या 500 बतायी है तथा उनके कहानी-संग्रहों के फ्लैपो पर लिखा है कि मन्मथनाथ गुप्त ने सैकड़ो कहानियाँ लिखी हैं। गुप्त के अभी तक चार कहानी-संग्रह—'दूर की कौड़ी' (1950), 'रक्त के बीज' (1951), 'मेरी प्रिय कहानियाँ' (1959) तथा 'आँखें' (1964) प्रकाशित हो चुके है जिनमे कुल 46 कहानियाँ हैं। इसका अर्थ यह है कि मन्मथनाथ गुप्त की कहानियाँ बडी संख्या मे असकलित हैं तथा वे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे दबी पडी हैं। पुस्तक के परिशिष्ट 'क' मे 104 प्रकाशित कहानियो की सूची दी गयी है तथा लेखक के पास उपलब्ध 56 कहानियों की पाण्डुलिपियों मे 46 कहानियाँ ऐसी है जिनके प्रकाशित अथवा किसी सकलन में सकलित होने का प्रमाण हमारे पास नही है। इसका अर्थ है कि इस सूची के आधार पर—प्रकाशित, संकलित एव पाण्डुलिपियों को प्रमाण मानते हुए मन्मथनाथ गुप्त की कुल 150 कहानियाँ ही हमारी जानकारी मे आती हैं, लेकिन सभी किये गये सम्भव प्रयासो के बावजूद यह पूरे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि यह सूची अधूरी है। लेखक को स्वयं इस ओर प्रयत्नशील होना चाहिए अन्यथा उनकी बहुत-सी कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओ के अंकों मे दबी पडी रहेंगी और फिर वे कभी पाठको के सामने नही आ सकेंगी।

मन्मथनाथ गुप्त से मेरे सम्बन्ध लगभग 15-20 वर्ष पुराने हैं। 'प्रेमचन्द विश्वकोश' पर कार्य करते हुए जब मैंने उनकी पुस्तक 'प्रेमचंद—व्यक्ति और

साहित्यकार' पढ़ी तब उनके अनेक निष्कर्षों से असहमत होने पर भी मैं उनकी विश्लेषण क्षमता से प्रभावित हुआ। पिछले वर्षों मे अनेक बार उनसे बातचीत करने का अवसर मिला है तथा वे मेरे अनेक कार्यों के प्रेरक मार्गदर्शक तथा सहयोगी रहे हैं। मैंने जब राष्ट्रीय धरातल पर 'प्रेमचंद जन्म शताब्दी राष्ट्रीय समिति' (पंजीकृत) का गठन किया तब मन्मथनाथ जी उसके संस्थापक सदस्य बने तथा समिति के सभी कार्यों में सक्रिय सहयोग दिया। मन्मथनाथ गुप्त के सम्बन्ध मे मैंने जब भी विचार किया है तब-तब उनका क्रान्तिकारी जीवन, बीस वर्षों का साहस-पूर्ण कारावास, साठ-बासठ वर्षों का निरन्तर लेखन-कार्य, कथनी और करनी में समानता, छल-कपट एवं दम्भहीन व्यक्तित्व, युवा पीढ़ी को उचित मार्ग-दर्शन करने की तत्परता आदि अनेक विशेषताएँ आँखों के सम्मुख चमकने लगती हैं। मनुष्य के रूप में मन्मथनाथ गुप्त निश्चय ही अनुकरणीय हैं। वे आम आदमी के कद से ऊँचे कद के आदमी है, लेकिन साहित्यकार के रूप मे वे कितनी ऊँचाई पर स्थित है, यह तो आने वाला समय ही बता सकेगा।

मन्मथनाथ गुप्त का जन्म 7 फरवरी, 1907 को हुआ था। वे 1921 के असहयोग आन्दोलन मे पहली बार जेल गये, जबकि उनकी आयु मात्र 13-14 वर्ष की थी। बनारस जेल में उनके साथ पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र', कमलापति त्रिपाठी, रामनाथलाल सुमन आदि मौजूद थे। उग्र ने जेल में ही 'कारागार' शीर्षक से हस्तलिखित पत्रिका निकाली जिसमे गुप्तजी ने बंकिमचन्द्र का अनुकरण करते हुए एक-दो रचनाएँ लिखी। महात्मा गांधी ने चौरी-चौरा काण्ड के बाद 1922 में असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया तो गुप्त जी का भ्रान्ति-भंग हुआ और वे क्रान्तिकारियों के दल में सम्मिलित हो गये। ऊपरी तौर पर वे काशी विद्यापीठ मे पढ़ने थे, परन्तु अन्दर-ही-अन्दर वे क्रान्तिकारियों के दल के साथ डकैती डालते और ट्रेन लूटते। उन्होंने कुल चौदह डकैतियो मे भाग लिया जिसमे एक ट्रेन डकैती भी थी। आखिर में वे काकोरी ट्रेन डकैती काण्ड मे 26 सितम्बर, 1925 को गिरफ्तार हुए और उन्हे 14 वर्ष की सश्रम सजा हुई। इस काकोरी ट्रेन डकैती काण्ड के अन्य अभियुक्त सर्वश्री रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह और अशफाक उल्ला को फाँसी के फन्दे पर चढा दिया गया।

गुप्त जी ने अपने जेल-जीवन मे पुस्तकें प्राप्त करने के लिए भी अनशन और सत्याग्रह किया। उनका अनशन सफल रहा और पुस्तकें सही-सलामत मिलती रहीं, परन्तु लिखने का अधिकार कई साल के संघर्ष के बाद ही मिल पाया। गुप्त जी ने चोरी से हिन्दी और बंगला मे 'काकोरी के शहीद' पुस्तक लिखी जो जब्त कर ली गयी। वे सन् 1937 में प्रान्तीय कांग्रेस सरकार द्वारा रिहा कर दिये गये, परन्तु इसी वर्ष दिल्ली मे उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया और चार महीने की सजा हुई। जेल मे लौटने पर उन्होंने रोटी के लिए पत्रकारिता

अपनायी, किन्तु दूसरे विश्वयुद्ध के छिड़ने पर उन्हे पुन: गिरफ्तार कर लिया गया और इस बार सात वर्ष तक जेल में रहे। इन सात वर्षों मे मन्मथनाथ जी ने अनेक उपन्यास तथा अन्य पुस्तकें लिखी और सैकड़ों पुस्तकों के नोट्स लिए। भारत के आजाद होने पर वे भारत सरकार के प्रकाशन विभाग में 'बाल-भारती' के सम्पादक हो गये और बाद मे 'आजकल' मासिक पत्रिका का भी सम्पादन किया। वे सन् 1968 मे रिटायर हो गये, लेकिन साहित्य से वे कभी रिटायर नही हुए। वे निरन्तर साहित्य-रचना एवं साहित्यिक गतिविधियों मे संलग्न रहे हैं। अभी उनका 'दिन दहाड़े' उपन्यास प्रकाशित हुआ है जो पंजाब की समस्या पर लिखा गया है। इस उपन्यास की अगली कड़ी आजकल वे लिख रहे है जिसमें वे देश को विभाजित करने के अन्तर्राष्ट्रीय षड्यंत्र का उद्घाटन कर रहे है। उनके विचार मे महात्मा गाँधी की हत्या कुछ सिर-फिरे युवको ने की थी, किन्तु मुजीब, इन्दिरा गांधी आदि की हत्या अन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्र का हिस्सा था।

मन्मथनाथ जी का व्यक्तित्व यद्यपि बहुआयामी है, किन्तु उनका क्रांतिकारी रूप ही सर्वत्र प्रमुखता से विद्यमान रहा है। सम्भवत: इसी कारण उन्हे 'क्रान्तिकारी लेखक' कहा जाता रहा है। वे हिन्दी के उन साहित्यकारों मे से है जिन्होंने जीवन का बड़ा हिस्सा कारावास मे व्यतीत किया, किन्तु क्रांतिकारी दृष्टिकोण तथा देश के पुनर्निर्माण की व्याकुलता कम नही हुई। वे लगभग 20 वर्षों तक जेल मे रहे और क्रान्तिकारियों के इतिहास तथा उनके योगदान को उजागर करने के लिए उन्होने 'क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास', 'भारतीय क्रांतिकारी', 'क्रांतिकारियो की आत्मकथा', तथा 'राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास' जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी। उन्होने लगभग 40 उपन्यास लिखे जिनमें 'जागरण', 'रैन अंधेरी', 'रंगमंच', 'प्रतिक्रिया', 'अपराजित', 'सागर-संगम', 'मानव दानव', आदि उपन्यास भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर ही लिखे गये। इनके अतिरिक्त उन्होने प्रेमचंद, शरत्चन्द्र, बंगला साहित्य, यौन शिक्षा, अपराध आदि पर भी ग्रंथों की रचना की।

मन्मथनाथ गुप्त को कुछ लोगो ने मार्क्सवादी लेखक कहा है, परन्तु मुझे वे कभी सीमित अर्थों में मार्क्सवादी नही लगे। वे मूलत: देश-प्रेमी साहित्यकार है। वे क्रांतिकारी मार्क्स को पढकर नही हुए थे, बल्कि गैरीबाल्डी मैत्सिनी, डी० वेलरा, विवेकानन्द आदि देश-प्रेमी नेताओं से प्रेरित होकर क्रांतिकारी बने थे। मार्क्स के अध्ययन से उन्हें अवश्य ही मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त करने तथा समाजवाद की स्थापना की प्रेरणा मिली, परन्तु उनकी लड़ाई देश की स्वतंत्रता के लिए पहले थी, समाजवाद के लिए बाद में, क्योंकि, उनके शब्दों मे ही, आजादी के बिना समाजवाद की स्थापना असम्भव थी। उनकी बहुत-सी कहानियाँ इन ही विषयो को लेकर चलती हैं, लेकिन वे धार्मिक, राजनीतिक,

पारिवारिक, यौन आदि के ढकोसलों आदि को भी नंगा करते चलते है। गुप्तजी का स्पष्ट विचार है कि कहानी (कला) का उद्देश्य मनोरंजन या मानसिक उन्नयन के अतिरिक्त जीवन को निखारना भी है। यदि किसी व्यक्ति को साहित्य से सौन्दर्योपलब्धि होती है तो यह एक बडी प्राप्ति है, परन्तु प्रत्येक लेखक इसे अपने तरीके से सुलझाता है। वस्तुवाद के प्रति गुप्तजी का प्रबल आग्रह है। उनका कथन है कि यदि कलाकार वस्तुवाद के लगोट के प्रति सच्चा है, तो वह भले ही यदा-कदा इधर-उधर आँख लडा ले, तो उससे कुछ आता-जाता नही है। वस्तुवाद खुद-ब-खुद साहित्य मे साहित्येतर वह मूल्य पैदा कर देगा जिससे साहित्य ऊँचा होता है। और यह साहित्येतर मूल्य है—समाज की समस्याओ से जूझना, उनका चित्रण करना न कि कहानी को 'हितोपदेश' बनाना। गुप्तजी सज्ञान चिन्तन से कलात्मक सृजन को उसी सीमा तक स्वीकार करते हैं जहाँ वह कला की सीमाओं से बहक नही जाता। रचना का 'कला' होना आवश्यक है 'हितोपदेश' नही।

'मन्मयनाथ गुप्त . प्रतिनिधि कहानियाँ' शीर्षक यह पुस्तक इन्ही विचारों की पृष्ठभूमि मे देखी-पढी जानी चाहिए। इस संकलन को उनकी प्रतिनिधि कहानियों का संकलन बनाने की पूरी चेष्टा की गयी है, परन्तु इसकी जो सीमाएँ रही है, उनकी ओर आरम्भ मे संकेत कर दिया गया है। यदि यह सकलन एक देश-प्रेमी, क्रातिकारी तथा समाजवाद के लिए प्रतिबद्ध कहानीकार की एक मानसिक झाँकी दे सका तो सम्पादक अपने प्रयास को सफल मानेगा। किसी भी लेखक को समझने एवं पहचानने म यह प्रयास, विश्वास है, पाठको को पसन्द आयेगा।

A-98, अशोक विहार, — कमलकिशोर गोयनका
फेज प्रथम, दिल्ली-110052
15 अप्रैल, 1985

कहानी-क्रम

आशा-निराशा

रमेन्द्र जब दिल्ली पहुँचा, तो वह वहाँ के लिये बिल्कुल अजनबी था। दिल्ली मे उसे पुराने सेक्रेटेरियट मे काम मिला था। पर दिल्ली मे नौकरी भले ही मिल जाये (नौकरियाँ तो अक्सर मिल जाती हैं, और अच्छी तनख्वाह भी मिल जाती है) पर मकान नही मिलता। कोई पूछे कि साहब, मकान न मिलेगा, तो आदमी रहेगा कहाँ ? और कही रहेगा नही, तो नौकरी कैसे करेगा ? पर ऐसे प्रश्नो का उत्तर सरकार नही देती। यह दिल्ली है जी, दिल्ली ! सौ बार गरज हो, तो रहो, नही तो जाओ !

मकान तो नही मिला, फिर भी रमेन्द्र डटा रहा, इस आशा पर कि भविष्य में मकान मिलेगा। नौकरी से छुट्टी पाते ही रोज वह मकान-तलाश में लग जाता। कभी-कभी तो ऐसा ज्ञात होता, कि मकान आज जरूर मिलेगा। पर कोई न कोई अडचन पड जाती, और मकान न मिलता।

अन्त मे रमेन्द्र ने मकान पाने की आशा छोड़ दी। अब वह इस पर उतर आया कि दो-एक कमरे ही मिल जायें। एक-दो कमरों के लिए ही वह पूरे मकान का किराया देने को तैयार था। पर रमेन्द्र के दौड़ने से भी इस मामले में कुछ नही हुआ। हाँ, वह जिस मित्र के घर में ठहरा हुआ था, उसके उद्योग से उसे एक कमरा अवश्य मिल गया। नौकरी मिलने की खुशी से कमरा मिलने की खुशी कुछ कम नही थी।

पर कमरा मिला नई दिल्ली के एक सरकारी क्वार्टर मे, और उसका दफ्तर था यमुना की तरफ, यानी कोई पाँच मील की दूरी पर। ऐसी हालत में बस ही उसका एकमात्र सहारा थी। नौ या सवा नौ बजे कुछ दूर पैदल चलकर बस पकड़ना, और फिर बस से ही आना, यह उसका नित्य का काम था। इसमे कोई विचित्रता नही थी। एकरस नही, नीरस—क्लर्क का जीवन !

पर कीचड़ के अन्दर ही कमल खिलता है। नीरसता के अन्दर से ही सरसता का उद्भव होता है।

एक युवती रोज उसी बस से जाती थी, जिससे रमेन्द्र जाता था। यो तो

में स्त्रियों की कई सीटें थी, और वे सीटें अधिकतर भरी ही रहती थी, पर उन स्त्रियों में से किसी पर रमेन्द्र का ध्यान नही जमता और जम भी नही सकता था, क्योंकि एक महिला एक बार से अधिक दिखाई नही देती थी।

वह महिला सुन्दरी थी। रंग गोरा था, और आँखें बड़ी-बडी थी। पर उन आँखों में गहरी उदासी रहती थी। उदासी और उदासीनता दोनों! उसके शरीर मे मास की कमी थी। वह 'बी शेप' का ब्लाउज पहना करती थी, जिसके ऊपर से उसके वक्षस्थल का ऊपरी हिस्सा दिखाई पडता था, पर वह हिस्सा हड्डीदार था। बस, हड्डियो पर गोरे चमडे की परत चढी हुई थी। इस हिस्से को देखकर रमेन्द्र का मन करुणा तथा सहानुभूति से भर उठता। पर परिचय तो था ही नही, इस कारण उसके मन की यह सहानुभूति भीतर ही भीतर उबलती रहती, और उसे बाहर निकलने का मौका न मिलता। फिर कितनी देर के लिए भेंट ही होती थी, जाते समय मुश्किल से आधे घटे के लिए, और आते समय भी आध घंटे के लिए और छुट्टियों के दिन तो जरा देर की यह भेंट भी नही होती थी।

रमेन्द्र की बड़ी इच्छा होती थी, कि वह इस महिला की जीवन-कहानी जान ले। वह कौन-सी बात थी, जिसके कारण यह सुन्दरी इस प्रकार दुखी बैठी रहती थी? यद्यपि उसे यह कहानी मालूम नही थी, और उसे मालूम करने की कोई सम्भावना भी नही थी, पर उसने यह मान लिया था, कि उसके साथ कही अन्याय अवश्य हुआ है। मन-ही-मन वह उसके प्रति सहानुभूति रखता था। पर अब ज्यों-ज्यो दिन बीतते जा रहे थे, उसकी व्यग्रता बढ़ती जा रही थी, और वह केवल इतने से ही सन्तुष्ट नही रह पा रहा था। वह चाहता था कि अपनी इस सहानुभूति को उस महिला पर व्यक्त करे। पर इसका मौका नही मिलता था।

वह महिला एक कीमती, रंगीन चश्मा लगाती थी, और इसलिए यह मालूम नही हो पाता था, कि उसने कभी रमेन्द्र को देखा भी था या नही। फिर भी एक अज्ञात आशा से परिचालित होकर रमेन्द्र उस महिला के विषय में सोचा करता था। वह कुमारी है, या विवाहिता, या विधवा? उसके कोई है भी कि नही? क्यो वह नौकरी करती है? कितने पैसे पाती है?

केवल इतना पता था उसे कि पंचकुइयाँ रोड से वह चढ़ती है, और माडेल बस्ती के बाद कही पर उतरती है। पर इतना ही क्या कम था? तृषित हृदय को कल्पना की खुराक देने के लिए इतना ही बहुत था। पर कल्पना भी अद्भुत वस्तु है। कभी वह कुछ बताती, कभी कुछ। कभी रमेन्द्र कुमारी के रूप मे उसकी कल्पना करता, और उसे इस बात से बहुत खुशी होती, शायद इसलिए कि वह स्वयं भी कुमार था। फिर कभी वह पति-परित्यक्ता के रूप मे उसकी कल्पना करता, तो उसे उसके अज्ञात पति पर क्रोध आता। इस कल्पना से उसका मन सहानुभूति से भर उठता, पर उतनी खुशी न होती। रमेन्द्र उसे जब विधवा

मानता, तो साथ ही यह भी मान लेता कि वह बाल विधवा होगी।

पर सब कल्पनाओं के बाद घूम-फिरकर वह फिर इसी कल्पना पर आता, कि वह कुमारी ही हैं, न पति-परित्यक्ता हैं, न विधवा। इस रूप में उस स्त्री की कल्पना करने में ही उसे आनन्द मिलता।

एक दिन बस पंचकुइयाँ रोड पर पहुँची, तो उतरे तो दो ही व्यक्ति, पर चढ़ने वाले बहुत थे। अक्सर बस 'ओवर लोडेड' हो जाती थी, पर कुछ दिनों से पुलिस बहुत जाँच-पड़ताल कर रही थी। कई ड्राइवरों को जुर्माना हो चुका था, इस कारण कंडक्टर गिनती से एक भी सवारी ज्यादा नहीं लेते थे।

वह महिला चुपचाप खड़ी थी। पर कई आदमी उसकी परवाह न कर फुट-बोर्ड पर चढ़ आए। जरूरत तो दो सवारियों की थी, पर फुटबोर्ड पर तीन चढ़ चुके थे, यानी दो तो चढ़ चुके थे, और एक बस का पीतल का डंडा पकड़कर झूल रहा था। बस कंडक्टर उससे आरजू-मिन्नत कर रहा था—बाबूजी, हमें तो बहुत थोड़े रुपये मिलते हैं। हम जुर्माना कहाँ से भरेंगे? मर जाएँगे, साहब! उतर जाइये!···

पर वह झूलने वाला व्यक्ति उतर नहीं रहा था।

वह महिला सिमटी हुई खड़ी थी। भला इन मुस्टंडों के सामने उसकी क्या चलती? उसने अपनी कलाई घड़ी की तरफ देखा, और फिर वह कुछ घबराई-सी नजर आयी। करुण नेत्रों से उसने एक बार बस की ओर देखा, फिर कंडक्टर की ओर, पर कुछ बोली नहीं। फिर कुछ शब्द शायद जबान पर आये भी, पर स्फुट नहीं हो पाये।

झूलने वाला व्यक्ति अब भी झूल रहा था, और कंडक्टर उससे विनती करता जा रहा था। यह बहस मुसाफिरों तक फैल गयी, और एक मुसाफिर ने फुटबोर्ड पर एक टाग पर खड़े उस व्यक्ति से कहा—दफ्तर की बस है। क्यों आप खामखा जिद करके सबको लेट कर रहे हैं?

वह व्यक्ति कंडक्टर से तो बड़े मजे में बहस कर रहा था; पर जब एक पैसेंजर ने उससे बहस शुरू कर दी, तो वह ढीला पड़ा। क्षण-भर रुककर, संभल-कर बोला—मैं भी तो दफ्तर जा रहा हूँ। मुझे भी तो देर हो रही है।

अब उसके चेहरे पर झगड़ालूपन का चिह्न नहीं था, बल्कि कृपा-याचना थी। यह स्पष्ट था कि वह यह अच्छी तरह महसूस कर रहा था, कि वह हार रहा था। वह शायद यह भी समझ चुका था कि उसे उतरना तो पड़ेगा ही। और अब वह झेंप रहा था, न कि अकड़ रहा था।

रमेन्द्र पास ही एक बेंच पर बैठा था। जंगले की तरफ की बेंच पर बैठा-बैठा वह सब बहस सुन रहा था, और उसका खून उबल रहा था। एकाएक वह जंगले से मुँह निकालकर, कड़ककर बोल उठा—आप लोगों को शर्म नहीं आती? एक

लेडी खड़ी है ! उसे आने नहीं देते, और बस को खामखा लेट कर रहे हैं।

अब फुटबोर्ड पर खड़े उस व्यक्ति को उतरने का मौका मिल गया। उसने शहीद की-सी अदा से फुटबोर्ड से उतरते हुए कहा—हाँ-हाँ, जरूर ! लेडीज फर्स्ट ! मुझे तो मालूम ही नहीं था !—फिर उसने उस महिला की तरफ देखते हुए, जगह करके कहा—जाइये !

वह महिला आगे बढ़ी, पर वहाँ तो रास्ता अब भी बन्द था।

तब कंडक्टर ने अभी के चढ़े हुए दोनों पैसेंजरों से कहा—आप लोग उतरें। लेडीज फर्स्ट !…

उस झूलने वाले पैसेंजर के उतरते ही, अभी के चढ़े दोनों पैसेंजर समझ गए कि अब उनकी बारी है। बात यह थी कि वे जानते थे कि वह महिला वहाँ खड़ी है, पर वे फिर भी चढ़ गये थे। वे यह भी जानते थे कि नियमानुसार उस महिला को ही पहले मौका मिलना चाहिए था। पर वे दफ्तर के बाबू थे, और उन्हें देर हो रही थी, इसलिए उतरना उनके लिए अप्रिय था।

वे हारते हुए भी झगड़ने लगे। कहने लगे—वाह ! महिलाओं की सीटें खाली कहाँ हैं ?

भीतर से रमेन्द्र फड़का—तुम्हें इससे मतलब क्या है ? खाली हो, या न हो ! लेडीज फर्स्ट !

कंडक्टर ने भी उसका समर्थन किया।

नतीजा यह हुआ, कि उस महिला को बस में जगह मिल गयी। रमेन्द्र ने सोचा था कि शायद भीतर आकर वह उसे धन्यवाद देगी, या कम-से-कम आकर उसकी तरफ देखेगी। पर उसने किसी तरफ नहीं देखा। सीधे जाकर स्त्रियों की एक बेंच पर, किसी तरह जगह पाकर बैठ गयी।

पर रमेन्द्र को इसमें निराशा न हुई। बल्कि उसके मन में कुछ उल्लास ही हुआ कि जिच की हालत तो दूर हुई। गाड़ी कुछ आगे तो खिसकी। उस दिन मामला यहीं तक रहा।

फिर कई दिन बीत गये, पर कोई घटना नहीं हुई।

एक दिन लौटते समय रमेन्द्र को न मालूम क्या सूझा कि वह भी उस महिला के पीछे-पीछे पंचकुइयाँ रोड पर उतर पड़ा। पर महिला ने फिर भी उससे कुछ नहीं कहा। वह अपने रास्ते चली गयी।

एक चौराहे तक तो रमेन्द्र ने उस महिला का अनुसरण किया, पर उसके आगे जाने में शर्म मालूम होने लगी। वह घूमता-फिरता बिड़ला मन्दिर पहुँचा, और वहाँ की वाटिका में घटों बैठा रहा। जब रात अधिक हो गयी, तो पैदल ही चलकर अपने डेरे पर पहुँचा।

रात्रि के अँधेरे में बड़ी देर तक पड़े-पड़े वह आत्मानुशीलन करता रहा।

आखिर वह उस महिला से क्या चाहता है? छि: ! वह कहाँ से कहाँ पहुँच गया। पर यह विचार बदल गया, और तब बारीकी से विश्लेषण करने पर भी उसने अपने को दोषी नहीं पाया। किसी सुन्दरी कुमारी से (अब उसने अपने मन में तय कर लिया था, कि वह सुन्दरी कुमारी है) प्रेम करना, यदि वास्तव में प्रेम ही हो तो, बुरा थोड़े ही है। नहीं, इस सम्बन्ध में वह कोई समझौता करने के लिए तैयार नहीं था। वह कोई आवारा थोड़े ही था। उसने देश-सेवा की थी। जब-जब गाँधी-जी ने, देश ने, कांग्रेस ने आह्वान किया था, तब-तब वह जेल गया था। अब जब कि देश स्वतन्त्र हो गया था, तो उसने नौकरी कर ली थी।

मामला इसी तरह चलता रहा। रमेन्द्र नित्य उसे देखता रहा। वही पंच-कुइयाँ रोड पर चढ़ना, और निर्दिष्ट जगह पर उतरना, यही उस स्त्री का नित्य का कार्यक्रम था। बहुत दिन बीत गये, पर उस स्त्री के सम्बन्ध में रमेन्द्र के ज्ञान में तनिक भी वृद्धि नहीं हुई। बल्कि वह उसकी दृष्टि में अधिकाधिक रहस्यमयी होती गयी। पर इस कारण उसके सम्बन्ध में उसका कौतूहल घटा नहीं, बल्कि उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। तटस्थ कौतूहल वह नहीं था, सजीव कौतूहल था।

एक दिन छुट्टी का समय काटने के लिए, रमेन्द्र चाँदनी चौक की सैर के लिए चला गया। कुछ चीजें भी लेनी थीं। टहलते-टहलते वह थक गया था। सोच ही रहा था, कि फौवारे पर आकर बस पकड़े, कि इतने में उसने देखा, कि वह स्त्री आ रही है। पर उस समय उसकी पोशाक रोज की पोशाक से बिल्कुल भिन्न थी। वह सिर से पैर तक खद्दर पहने हुए थी। नहीं, इसमें कोई शक नहीं था। केवल रोज का वह चश्मा-भर था।

अनजान में ही रमेन्द्र ठिठककर खड़ा हो गया। शायद वह स्त्री भी जरा-सी ठिठकी। उसके चेहरे पर कुछ अरुणिमा भी आयी। पर अगले ही क्षण वह सँभल-कर आगे बढ़ गयी, मानो कोई बात ही न हो।

रमेन्द्र जब तक सँभला, तब तक वह स्त्री चाँदनी चौक की अपार भीड़ [illegible] गायब हो चुकी थी। रमेन्द्र वहीं पर स्तंभित खड़ा रहा। एक साथ सैकड़ों [illegible] उसके मन में दौड़ गये। वह शायद वहीं कुछ देर और खड़ा रहता, पर [illegible] उसे हटा दिया। और वह अपनी अनजान में उस तरफ जाने लगा, [illegible] गयी थी।

रमेन्द्र की आँखें भीड़ में किसी को ढूँढ़ रही थीं। सन्ध्या [illegible] बावली से फौवारे तक इधर से उधर चक्कर लगाता रहा, [illegible] मिली। रमेन्द्र सोच रहा था, तो वह राष्ट्रीय विचार की है। [illegible] क्यों पहनती? पर रोज तो खद्दर नहीं पहनती। [illegible] दफ्तर? नहीं, स्वराज्य के पहले ऐसा हो सकता था, पर अब [illegible] खद्दर पहनने पर प्रतिबन्ध लगाये? तब वह रोज [illegible]

बहुत सोचने पर रमेन्द्र को इसका कारण मिल गया। खद्दर महँगा पड़ता है, इस कारण न पहनती होगी। जरूर यही कारण होगा। इन्हीं बातों को सोचते-सोचते रमेन्द्र घर चला गया।

अगले दिन से फिर वही रोज का कार्यक्रम चलता रहा। उस रहस्यमयी नारी के व्यवहार में कोई फर्क नहीं आया।

होते-होते दो सप्ताह और बीत गये। अब तो रमेन्द्र प्रत्येक रविवार को चाँदनी चौक की सैर अवश्य करने जाता। पर जिसकी आशा करके, वह वहाँ जाता था, वह उसे न मिलती। खैर, आशा में दिन अच्छी तरह कट जाते थे। पर आशा-निराशा के द्वंद्व में उसकी हालत अजीब होती जा रही थी। रात को नींद न आती, दिन में भी चैन न मिलता। पहले वह चाहता था, कि बस पर उसे चढ़ना न पड़े। रास्ता इतना लम्बा न होता, तो अच्छा होता। पर अब तो वह यही चाहा करता था, कि बस धीरे-धीरे चले, और रास्ता कभी खतम न हो।

जब वह महिला बस पर चढ़ती थी, तो रमेन्द्र खिल जाता था। पर जब वह चढ जाती, तो उसी समय से उसके उतर जाने के भय से वह घबराने लगता था।

एक दिन एक ऐसी घटना घटी कि रमेन्द्र को मौका मिल गया। दफ्तर से लौटते समय बस बीच में खराब हो गयी, और कंडक्टर ने यात्रियों से कह दिया, कि बस आगे नहीं जा सकती। जिनको पैसे लौटाने हों वे पैसा लौटा लें। यात्रियों ने मजबूरी जानकर, उतरते हुए कहा—हम लोगों को अगली बस में बैठा दो।

कंडक्टर ने स्वीकार कर लिया। सब यात्री लाइन बनाकर खड़े हो गये। पर कुछ, जो तजर्बेकार थे, पैसे लौटाकर चले गये।

अगली जो बस आयी, वह इतनी भरी हुई थी कि प्रतीक्षा करते यात्रियों के हाथ दिखाने पर भी, और कडक्टर की सीटी पर भी खडी नहीं हुई। फिर उसके बाद की बस आधे घटे में आती। सो सब खड़े लोग घबराने लगे। कडक्टर ने कहा—बाबूजी, पैसे लौटा लीजिए।...मैं मजबूर हूँ।

यात्रियों ने पैसे लौटा लिए। उस महिला तथा रमेन्द्र ने भी पैसे लौटा लिए। पर ऐसा करने में किसी को खुशी नहीं हुई।

पैसे वापस लेकर, लोग अपना-अपना रास्ता पकड़ने लगे। वह महिला भी उस तरफ चली, जिस तरफ बस जाने वाली थी। रमेन्द्र उसके पीछे-पीछे चला।

एक फर्लांग चलने पर सामने ही ताँगे का अड्डा दिखायी पड़ा।

रमेन्द्र ने वहाँ खड़े होकर देखा कि वह महिला क्या करती है। पर वह चलती ही गयी। एक बार शायद उसने सतृष्ण नेत्रों से खडे ताँगों की तरफ देखा, पर अगले ही क्षण आगे बढ गयी।

रमेन्द्र उसे पीछे से देखता रहा। जब वह सौ कदम से अधिक निकल गयी,

तो रमेन्द्र ने एक ताँगा कर लिया।

जब ताँगा उस महिला के सामने पहुँचा, तो रमेन्द्र ने ताँगे को ठहराकर उस महिला को आवाज़ दी—आइये, ताँगे पर बैठ जाइये !

महिला क्षण-भर सोचती खड़ी रही। फिर वह पास आ गयी।

रमेन्द्र पीछे की सीट छोड़कर, आगे की सीट पर जा बैठा। महिला ताँगे पर सवार हो गयी। ताँगे वाले ने घूरकर महिला को देखा, फिर ताँगा चलाने लगा।

थोड़ी देर तक सब चुपचाप रहे।

पर यही मौका था। कही हाथ से निकल गया, तो बस सब खतम। रमेन्द्र ने कुछ भर्राई हुई आवाज मे कहा—मैंने आपको एक दिन चाँदनी चौक मे देखा था।

'हाँ,' संक्षेप मे वह बोली।

पर रमेन्द्र को तो बोलना ही था। बोला—आप उस दिन खद्दर पहने हुए थी।

'हाँ, मैं खद्दर पहनती हूँ, पर रोज नही।'

रमेन्द्र बोला—यह सूत का झमेला बुरा है। सूत दो, तो खद्दर लो। इसीके कारण बहुत-से लोग खद्दर पहन नही पाते।

'और दाम भी ज्यादा पड़ता है,' महिला बोली—फिर भी मुझसे जहाँ तक बन पड़ता है, खद्दर पहिनती हूँ।

'हाँ।' रमेन्द्र अनुमान कर रहा था कि ये कौन हैं। क्षण-भर बाद बोला—मैं तो सन् '30 से खद्दर ही पहनता हूँ।

ताँगे वाला पंजाबी शरणार्थी था। उसका यह ताँगा लूट के माल का था। इस कारण वह अपने को एक छोटा-मोटा राजनीतिज्ञ समझता था। बीच मे बोला—खद्दर-वद्दर कुछ नही है बाबूजी, दिल साफ़ होना चाहिए। मैंने तो कभी खद्दर नही पहना, पर तीन मुसलमान मारे।

रमेन्द्र को ताँगे वाले का इस प्रकार बीच में बोलना अच्छा नही लगा। पर वह महिला सुनकर खिलखिला पड़ी। फिर वह गंभीर होकर, रमेन्द्र से बोली—आप तो इतने दिनो से खद्दर पहनते है, आपने कितने मुसलमान मारे ?

ताँगे वाले ने रमेन्द्र की तरफ घूरा। उसकी दृष्टि मानो कह रही थी, बच्चा तुम क्या खाकर मारोगे ! और अगर कहो भी कि मारा था, तो यहाँ कौन एतबार करेगा ? और उसका बायाँ हाथ मूँछ पर पहुँच गया।

रमेन्द्र ने कहा—तुम बीच मे मत बोलो जो ! खद्दर पहिनने और मुसलमानों को मारने मे क्या ताल्लुक है ? हम लोग तो ऐसे काम को बुरा समझते हैं।

ताँगावाला शायद कुछ झेपा। पर अगले ही क्षण उसने कहा—बाबूजी, ऐसे

कह देना आसान है। मैं भी पहले ऐसी ही बात सोचा करता था। पर जब बिला वजह मेरे माँ-बाप और बड़े भाई मारे गये, और घर छोड़कर भागना पड़ा, तो··· हमेशा ताँगा ही नही हांकते थे बाबूजी ! जेन्टलमैन थे। हमेशा एक-दो बगल में पड़ी ही रहती थी।

उसने घोड़े को चाबुक रसीद किया। घोड़ा दौड़ने लगा; उतना, जितना कि बिना भर पेट खाये दौड़ा जा रहा था।

ताँगा चलता रहा। ताँगे वाले के मन्तव्य से रमेन्द्र बहुत चिढ़ा। इतने दिनों में उसे आज मौका मिला था, और कुछ काम बन रहा था, पर ताँगे वाले ने बना-बनाया खेल बिगाड़कर धर दिया।

फिर भी रमेन्द्र के लिए स्थिति यह थी, कि *आज या कभी नही*। इसलिए उसने कहा—अजीब ख्याल है लोगों के ! खद्दर तो अहिंसा का द्योतक है, और ये लोग उसका मतलब कुछ और ही लगा बैठे हैं।—कहकर, उसने ताँगे वाले की तरफ चुनौती-भरी दृष्टि से देखा।

पर ताँगे वाले ने अबकी बार कुछ नही कहा।

वह महिला बोली—खैर, अगर इसने ऐसा सोचा, तो क्या हुआ ? बहुतेरे एसा ही सोचते है।

'गाधीजी की शहादत के बाद भी ?'

'हाँ, पर ऐसे लोगो की सख्या घट गयी है, और घटती जा रही है। दोनों तरफ के लोगो को होश आ रहा है।'

बातों की गाड़ी यही रुक गयी।

पहाड़गंज का थाना आ गया था। अब उसे थोड़ी ही दूर और जाना था। सैद्धान्तिक बातचीत से एकदम वैयक्तिक सतह पर उतरते हुए रमेन्द्र ने कहा—आप खद्दर पहनती है ?

'आपके मुकाबले मे मै इस क्षेत्र में बिलकुल नयी हूँ—उस महिला ने नम्रता से कहा—1940 से ही समझिये।

रमेन्द्र ने उस महिला को देखा। फिर बोला—तो आप 1942 मे जेल भी हो आयी होंगी ?

'नही, मैं तो नही गयी जेल,' कहकर वह महिला एकाएक चुप हो गयी। जैसे कोई बात कहने जा रही थी, पर हिचक गयी।

पूछे न जाने पर भी रमेन्द्र ने कहा—मुझे तो यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

'अच्छा, आप 1942 मे जेल गये थे !' एकाएक दिलचस्पी भरे शब्दों में उस महिला ने कहा। फिर जरा रुककर बोली—तो आप पर मार-वार भी पडी होगी ?

रमेन्द्र पर मार तो पड़ी थी। फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल के एक जेलर ने उसकी

खूब मरम्मत की थी। डंडों की मार से उसका भेजा खुल गया था, और महीने-भर तक उसे अस्पताल में रहना पड़ा था। पर न मालूम क्यों इस महिला के सामने उस बात को स्वीकार करते हुए उसे कुछ झेंप-सी मालूम हुई। बोला—नहीं, पिटा नहीं बच गया। बहुत लोग पिटे, पर मैं तो बच ही गया।

वह महिला कुछ बोली नहीं। दूर क्षितिज की ओर देखती रही। उसके चेहरे पर जैसे एक काली छाया आ गयी, वेदना की काली छाया।

रमेन्द्र ने यों ही कहा—सब नहीं पिटते। अपना-अपना स्वभाव अलग-अलग होता है। 'टैक्ट' से चलने पर बुरे से बुरे जेलर भी हाथ नहीं उठा पाते—कहकर उसने सर्वज्ञता की हँसी हँस दी।

रमेन्द्र ने ऐसा केवल उस महिला को खुश करने के लिये कहा था, उसका निजी तजुर्बा तो कुछ और ही था। वह स्वयं तो इस कारण पीटा गया था कि बैरकबन्दी के समय वह घास पर बैठा हुआ था। बस, इसी बात पर जेलर के सामने उसकी पेशी हुई थी और ऐंग्लो इण्डियन जेलर ने कहा—अबे साले, शायरी सूझी है ? मार साले को !—कहकर डंडे रसीद किये।

जब जेलर ने मार शुरू कर दी, तो वार्डर भी उस पर टूट पड़े। उस दिन रमेन्द्र के लिए बैरक में बन्द होने की नौबत नहीं आयी। उसे उठाकर अस्पताल ले गये, और वहाँ एक कोठरी में बन्द कर दिया गया।

वह महिला रमेन्द्र की बातें सुनकर खुश नहीं हुई। उसने ताँगे वाले से कहा—रोक दो। मेरी जगह आ गयी।

ताँगे वाले ने ताँगा रोक दिया। महिला उतरकर, अपना पर्स आधा खोलकर, ताँगे वाले से पूछने लगी—कितना दूँ ?

रमेन्द्र ने कहा—रहने दीजिये। पैसे मिल जायेंगे इसे।

'धन्यवाद !' कहकर, वह स्त्री गम्भीर होकर चली गयी।

अगले दिन से फिर उसी बस में उसी प्रकार नित्य भेंट होती। पर रमेन्द्र को कुछ कहने का मौका नहीं मिलता। यह नहीं कि कह न सकता हो, पर पैसेंजरों के सामने झेंप मालूम होती थी। बस, रमेन्द्र नमस्ते करके मुस्करा देता था। पर इस छोटे-से 'नमस्ते' में ही वह मानो अपने सारे अस्तित्व को उँडेल देता था। नमस्ते को वह इस व्याकुलता से कहता था, कि जैसे वह अपने जीवन के एक टुकड़े को काटकर ही उन रमणी को दे देता हो।

वह रमणी भी इस बात को समझती थी। धीरे-धीरे उसपर गम्भीरता का जो पर्दा पड़ा हुआ था, वह हट रहा था। अब तो दो-एक बार उसने भी स्वयं ही नमस्ते किया था।

रमेन्द्र को अब अक्सर नींद नहीं आती थी। रात के बीच में कभी नींद खुल जाती, तो वह उस महिला की कल्पना करने लगता। कल्पना करते-करते वह

पागल-सा हो जाता। वह रात को तय कर लेता, कि कल जब वह बस से उतरेगी, तो वह भी साथ-साथ उतरेगा, और फिर मौका पाकर उससे कहेगा, देवी, मैं तुम्हारा पुजारी हूँ। तुम मुझपर प्रसन्न होओ ! मैं तुम्हे प्यार करता हूँ। मैं तुम्हारे लिये जान दे सकता हूँ। तुम कुमारी रहकर, कब तक इस प्रकार दौड़ती रहोगी ? रोटी के लिये इस सग्राम को तुमने क्यो स्वीकार किया है ? यह तुम्हारे उपयुक्त नही। रोज़ भीड़ मे धक्के खाना, और दिन-भर परिश्रम करना, यह तुम्हारे लिए ठीक नही। तुम रानी बनकर घर पर बैठो। देखो तो, मैं तुम्हारे लिये क्या करता हूँ।

इस प्रकार वह कितनी ही बातें कल्पना मे कह जाता। सुन्दर-सुललित वाक्य सोचकर जाता, पर मौके पर एक बात भी मुँह से न निकलती। केवल करता वह छोटा-सा नमस्ते, और फिर करुण दृष्टि से उसकी ओर ताकता।

और इन दिनों उसे आशा भी हो चली थी। काहे की आशा हो चली थी, यह न तो वह अपने से पूछता था, और न सोचता ही था।

कभी-कभी भाग्य भी अनुकूल हो जाता है। जब अगले रविवार को रमेन्द्र चाँदनी चौक की सैर करने जा रहा था, तो वह महिला मिल गयी। रमेन्द्र नमस्ते करके साथ चलने लगा। बोला—कहिये।

वह महिला बोली—मैं जरा कुछ जरूरी चीजें खरीदने के लिये यहाँ चली आयी थी।

रमेन्द्र ने देखा कि अभी उसने कुछ खरीदा नही है। बोला—अभी तो आपने कुछ नही खरीदा है। चलिये, मैं भी चलता हूँ। मुझे भी खरीदना है।

एक क्षण के लिये शायद वह महिला हिचकिचायी। फिर आत्मसमर्पण के भाव से बोली—चलिये।

दोनों साथ-साथ चलने लगे।

पश्चिमी पजाब से भागे हुए हिन्दुओ ने यहाँ तरह-तरह की दूकाने खोल ली थी। इन लोगो की दूकानो के कारण चाँदनी चौक की सडक की चौड़ाई आधी रह गयी थी। इधर से उधर जाने मे भीड के कारण करीब-करीब शरीर से शरीर सटाकर जाना पड़ता था। तिसपर इस समय सूर्य आसमान के बिलकुल बीचोबीच पहुँच गया था। गर्मी लग रही थी। उस महिला के माथे पर पसीने की बूँदें दृष्टिगोचर हो रही थी।

रमेन्द्र ने कुछ देर तक चलने के बाद कहा—चलिये, किसी जगह बैठकर चाय पी ली जाय।

चलना जारी रखते हुए उस महिला ने कहा—मैं तो चाय पीती नही।

'तो चलिये, लस्सी ही पी जाय,' रमेन्द्र ने निराशा की व्याकुलता से कहा।

उस महिला ने कुछ देर तक जैसे सोचा। फिर आत्मसमर्पण के ढंग से बोली

—चलिये।

दोनों एक अच्छे रेस्तराँ में दाखिल हुये। लस्सी मँगाई गयी। कुछ मिठाई आदि भी आयी। रमेन्द्र ने मौका पाते ही अपना परिचय दे दिया—मैंने 1932 में देशसेवा में यह सोचकर कदम रखा था कि इसी में मर-खप जाऊँगा। बहुत-से साथी मर-खप गये भी। पर मैं बच गया। अब स्वतन्त्रता मिल गयी है, कुछ न कुछ करना ही था। इस कारण सरकारी नौकरी कर ली।

फिर गिलास में बची हुई लस्सी को एक ही बार में समाप्त करके, उसने कहा—मैंने सरकारी नौकरी को उसी भावना से स्वीकार किया, जिस भावना से जेल गया था। छः महीने हो गये। पर देखता हूँ कि वहाँ देशभक्ति की गुंजाइश बहुत कम है। और वही लालफीतावाद तथा नौकरशाही का बोलबाला है।

'और यह आपने नहीं देखा कि कल जो आपके सताने वाले थे, वे ही आज आपके ऊपर वाले बने हुए हैं?' महिला ने कहा।

रमेन्द्र ने जोश में आकर कहा—हाँ-हाँ, बिल्कुल ठीक कहा आपने। कुछ समझ में नहीं आता कि•••

उस महिला ने प्रशंसा पाकर, अपने प्रवचन को जारी रखते हुए कहा—यद्यपि वे ऊपर से अपने को बदले हुए दिखाते हैं, पर भीतर से वे पहले ही जैसे हैं।

रमेन्द्र अब बिल्कुल खुल गया। बोला—आपने बहुत सुन्दर विश्लेषण किया। जो बात मेरे मन में बार-बार आती थी, उसीको आपने सुन्दर शब्दों में रख दिया। —फिर एक मिठाई मुँह में डालकर, उस महिला की तरफ देखते हुए कहा—आपके और मेरे विचार खूब मिलते हैं!

'हाँ,' उस महिला ने कहा। पर उसका चेहरा एकाएक अन्धकाराच्छन्न हो गया। क्षण-भर रुककर वह बोली—तो आप भी 1942 के 'हीरो' हैं?

'हीरो तो क्या, सेवक हूँ!' रमेन्द्र ने कुछ झेंपते हुए कहा। उसे यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो सका कि हीरो शब्द का प्रयोग व्यंग्य में हुआ था या यों ही। व्यंग्य का कोई कारण तो नहीं था।

उस महिला ने कहा—तब आपको कोई बड़ी जगह क्यों नहीं मिली? आज तो जेल से लौटे हुओं की बड़ी पूछ है।

रमेन्द्र बोला—जिनकी है, उनकी है। यहाँ तो किसी से सिफारिश नहीं करायी। जो काम मिला, सो कर रहा हूँ।—फिर सोचा कि कहीं वह यह न सोचे कि सौ रुपये का क्लर्क है। बोला—300 मिल जाते हैं। किसी तरह काम चल जाता है। अधिक की जरूरत ही क्या है?

वह महिला खा-पी चुकी थी। रमेन्द्र भी खा चुका था। अब बिल की प्रतीक्षा हो रही थी। ऊपर पंखा अविश्रान्त रूप से चल रहा था।

वह महिला बोली—1942 के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं? लोगों ने

जो तार आदि काटे थे, बहुत-से लोग उसे बुरा कहते थे।

'पर उसीकी बदौलत तो भारत स्वतन्त्र हुआ है, चर्खे की बदौलत नही।'

'तो आप भी ऐसा सोचते हैं ?' जोश के साथ महिला ने कहा।

'बिलकुल ! मेरे विचार तो ये ही हैं। मैं सोचता हूँ कि उन्ही कार्यों की बदौलत भारत को जो कुछ स्वतन्त्रता मिली है, मिली है।'

'पर गांधीजी ?'

'गांधीजी को इसमें न घसीटिये। वे नियम से परे थे। उनके असली विचार किसी को कभी ज्ञात न हो सके। उन्होंने मौखिक रूप से जरूर तार काटने वालों की निन्दा की, पर इस कारण उन्होंने कांग्रेस से किसी को निकालने के लिए तो कहा नही।'

'हाँ, यह बात तो है।'

बिल आ चुका था, तथा पैसे दे दिये गये थे। अब दोनों उठे। यद्यपि बातचीत 1942 पर ही होती रही, पर रमेन्द्र का मन अब दूसरी ही बातों में उलझ रहा था। उसने रास्ते में चलते-चलते एकाएक प्रसंग से अलग होकर कहा—मैं तो आपके विचारों पर मुग्ध हूँ। आपके विचार बहुत सुन्दर हैं। मैंने तो किसी को इतने स्पष्ट तरीके से सोचते नही देखा।

फिर सौदे की खरीद शुरू हुई। कुछ मामूली चीजें लेनी थी। खरीदने में देर नही लगी। जब सौदा खरीदा जा रहा था, तो कई चीजों के दाम तो रमेन्द्र ने ही दे दिये। यह सब तो हो रहा था, पर रमेन्द्र सोच रहा था कि अभी इस स्त्री का नाम भी मालूम न हो सका।

उसने मौका पाते ही कहा—मेरा नाम रमेन्द्र भटनागर है। बाकी परिचय तो आप जान ही चुकी। आपका परिचय ?

वह महिला जैसे इस प्रश्न के लिये तैयार थी। बोली—मेरा नाम कान्ति है। बाकी मेरा कोई परिचय नही है। न तो मैं जेल गई, और न 1942 की हीरोइन ही हूँ—और वह हँसी।

रमेन्द्र ने कहा—आप बार-बार मुझे हीरो कह रही हैं। कही व्यंग्य तो नही कर रही हैं ?—और उसकी आँखों में वेदना झलकने लगी। वे ऐसी हो रही थी, जैसे वर्षणोन्मुख बादल हों।

कान्ति कुछ झेंप गयी, उसका हर्गिज यह मतलब नही था। उसने जल्दी से कहा—मेरा मतलब हर्गिज, हर्गिज यह नही था। खैर, अभी क्या बताऊँ ? कभी आपको मालूम होगा कि 1942 के वीरों के लिये मेरे मन मे कितनी श्रद्धा है।

रमेन्द्र आश्वस्त हुआ।

उस दिन फिर कोई बात नही हुई। कान्ति ने यह कहकर पीछा छुड़ाया कि उसे किसी रिश्तेदार से मिलना है।

इसके बाद फिर वही रोज की बस-यात्रा और दफ्तर। अधिक से अधिक नमस्ते और कुछ नहीं।

रमेन्द्र निराश हो चला। और यह भी पता नहीं था कि रविवार को भेंट होगी कि नहीं। इस कारण रमेन्द्र से रुका नहीं गया। शुक्रवार की संध्या को जब कान्ति बस से उतरने लगी, तो रमेन्द्र ने उसके हाथ में एक बन्द लिफाफा थमा दिया। लिफाफे पर लिखा था—

'कुमारी कान्ति देवी।'

कान्ति लिफाफा लेने में कुछ झिझकी। पर बस से उतरने की जल्दी थी, सो लेकर उतर गयी।

घर जाकर उसने फुर्सत से एकान्त में लिफाफा खोला। उसमें लिखा था—

मेरी आराध्य देवी,

जो बातें जबान पर बार-बार आते-आते रह जाती थी, उन्ही को कहने के लिये यह पत्र लिखने की जरूरत हुई। मुझे तुम्हारा जो थोड़ा-बहुत परिचय मिला है, उसी से मैं अत्यधिक प्रभावित हो चुका हूँ, और इस नतीजे पर पहुँचा हूँ, कि मेरे जीवन की मरुभूमि में तुम्हारी रस-धारा का प्रवाहित होना अत्यन्त आवश्यक है। मैंने लगभग पन्द्रह साल का समय राजनीति में दिया। पर उसने मुझे कुछ नहीं दिया। देश को कुछ दिया या नहीं, पता नहीं। हां, कुछ लोग अवश्य मजे कर रहे हैं। मुझे ऐसे चन्द लोगों से डाह नहीं है, जो लाखों के त्यागों की बदौलत ऊँची कुर्सियों पर बैठे हैं। मैं तो तुम्हारे साथ किसी नीरव कोने में जीवन के दिन गुजार पाऊँ, तो उनमें से किसी से भी अपने को अधिक सौभाग्यशाली समझूँगा! बस, तुमसे मेरी यही प्रार्थना है कि तुम आकर मेरे हृदय को आबाद करो। तुमको उन शहीदों की कसम, जिनकी तुम निरन्तर प्रशंसा किया करती हो। बस, और क्या लिखूं?

मिलनाभिलाषी दास
रमेन्द्र

जब कान्ति ने यह पत्र पढ़ा, तो वह बड़े असमंजस में पड़ गयी। रमेन्द्र अच्छा-खासा जवान था, सच्चरित्र और स्वरूपवान, आदर्श जीवन-साथी। पर''' वह आगे सोच न सकी। उसकी आँखों से अश्रु-धारा जारी हो गयी।

उसने पत्र को बार-बार पढ़ा। फिर उसको फाड़ डाला। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गयी।

अगले दिन बस में कान्ति ने रमेन्द्र को जो पत्र दिया, वह यों था—

प्रिय बन्धु,

पत्र मिला। धन्यवाद! कल चाँदनी चौक के उसी रेस्तराँ में बारह बजे दिन में मिलें। शेष मिलने पर ही।

कान्ति

इस पत्र को पाकर रमेन्द्र फूला नही समाया। उसकी हालत ऐसी हो गयी, मानो संसार की निधि उसे मिल गयी हो। थोडी ही देर मे वह कान्ति के पति के रूप में अपनी कल्पना करने लगा। वर्षो की रुकी हुई इच्छाएँ उभर आयी, और वासना ने ज़ोर मारना शुरू किया। कल्पना मे वह उस नीड़ तक पहुँच गया, जिसे दोनो मिलकर अपने प्रेम के उपकरणो से बनायेंगे। उसे ऐसा जान पड़ने लगा कि देश के लिए उसने जो कष्ट उठायें, जेल मे जो मारें खायी, तनहाइयाँ काटी, सब सार्थक तथा सुफल हो गया। इस समय यदि उससे कहा जाता कि वह अपने भाग्य को दुनिया के सबसे बडे अधिनायक, नेता या राजा से तबदील कर ले, तो वह इसके लिए तैयार न होता।

शनिवार की रात को उसे बहुत थोडी नीद आयी। पर जितनी भी नीद आयी, उतनी ही उसके लिए काफी सिद्ध हुई। कम नीद आने पर भी वह थका हुआ नही था।

जल्दी-जल्दी सब काम खतम हुआ। वह रोज अपने हाथ से दाढी बनाता था। आज भी बनायी। पर आईने मे देखने पर वह उसे पसन्द नही आयी। कही-कही बाल छूट गये थे। बाल भी कुछ बढे हुए थे। बस, वह सीधे कनाट प्लेस पहुँचा, और वहाँ एक ऐंग्लो इडियन या शायद चीनी की दूकान में दाढ़ी बनवाई, और बाल कटवाये। इतने का ही बिल अढाई रुपये हुआ। पर आज रमेन्द्र ने इसकी परवाह नही की। पैसे और किस दिन के लिये थे?

इसके बाद खद्दर के साफ वस्त्र धारण करके रमेन्द्र चाँदनी चौक पहुँचा। पर अभी ग्यारह ही बजे थे। एक घंटा काटना भी आज पहाड-सा मालूम हो रहा था, हालाँकि रोज आध घंटे पौन घटे तक बस का इन्तज़ार करना पडता था।

रमेन्द्र समय काटने के लिये इधर-उधर चक्कर लगाने लगा। एकाएक उसके मन मे आया कि जब बात पक्की हो जाये, तो कुछ उपहार देना चाहिये। वह उपहार क्या हो, इसीकी कल्पना मे बाकी समय अच्छी तरह कट गया। वह झपटा हुआ रेस्तराँ पहुँचा, तो बारह बज ही रहे थे।

बारह बजकर पाँच ही मिनट हुए थे कि कान्ति आ गयी। वह अपनी रविवार की साधारण पोशाक मे थी।

खाना खूब अच्छी तरह हुआ। रमेन्द्र ने रोटी, केक, मिठाई, फल, सभी चीजें मँगवायी। खर्च करने में उसने कोई कसर नही रखी। बातचीत भी करीब-करीब प्रत्येक विषय पर हुई, सिवा उस विषय के।

रमेन्द्र मन ही मन कुछ परेशान हो रहा था। पर यह सोचकर मन को तसल्ली दे रहा था कि जब उसने खुद बुलाया है तो कुछ न कुछ कहेगी ही, नही, तो चलते समय पूछ लिया जायेगा। अपने को जो कुछ कहना था, वह तो लिख ही दिया गया।

खाने-पीने के बाद कान्ति ने कहा—चलिये, आज आपको 1942 के एक वीर से परिचय कराऊँ। रिपोर्ट के अनुसार ये 200 मील रेल की पटरी उखाड़ने तथा सैकड़ों मील तार काटने के लिये जिम्मेदार थे। सन्'43 के अन्त मे ये गिरफ्तार किये गये। मारते-मारते उन्हें काना कर दिया गया। इस पर भी साम्राज्यवाद की जलन न मिटी, तो बिजली का करेंट देकर उन्हें नपुंसक कर दिया गया। कभी वे बड़े पुरुषार्थी थे, पर अब अपाहिज हैं, महज़ मांस और हड्डियों का ढेर।—कान्ति के चेहरे पर कड़वेपन की गहरी छाप थी।

वह चुप हो गई। उसका चेहरा रुँआसा-सा हो गया।

रमेन्द्र बोला—अवश्य दर्शन करूँगा। वे हमारे पूजनीय हैं। मैंने तो कभी उनका नाम नही सुना।

कान्ति ने उसी प्रकार कड़वे लहजे से कहा—हाँ, कोई कैसे सुने? अखबारों को दूसरों की हाँकने से फुर्सत मिले तब न! संयुक्त प्रान्त की सरकार ने उनके लिये बीस रुपये माहवार पेंशन बाँधी थी। पर उन्होंने लेने से इन्कार कर दिया।

'बीस रुपये!' आश्चर्य से रमेन्द्र ने कहा—आजकल बीस रुपये क्या होते है! जिनकी बदौलत सब कुछ हुआ, वे पायें बीस रुपये! इससे बढकर लज्जा की बात और क्या हो सकती है? ऐसे लोगों को तो सिर पर चढ़ाना चाहिये।

दोनो ताँगे पर बैठकर, पंचकुइयाँ रोड के एक मकान मे पहुँचे।। चारो तरफ गरीबी की छाप थी। एक अर्ध अँधेरे कमरे में घुसकर कान्ति ने कहा—ये ही है 1942 के वे वीर!

रमेन्द्र ने देखा कि एक जीवित शव-सा सामने खाट पर पड़ा है। कमर से नीचे का हिस्सा बिल्कुल सूख गया था। पैर लकडी-से हो रहे थे। एक आँख नही थी। रमेन्द्र ने हिचकिचाकर पैर छुए। भक्ति की भावना अधिक थी या भय की, कहा नही जा सकता। शायद कुछ दुर्गंध भी मालूम हो रही थी।

उस व्यक्ति ने अजीब स्वर में कहा—कान्ति, क्यों मुझे झेंपा रही हो? तुम न होती, तो मुझसे कुछ होता! तुम्ही तो उन तूफानी दिनों में सब कुछ करती थी! और नाम मेरा होता था! बस, तुम पकडी ही नही गयी।

रमेन्द्र ने कान्ति की तरफ प्रशसायुक्त आश्चर्य से देखा।

कान्ति की आँखो में आँसू थे। बोली—ये तो बढा-चढ़ाकर कह रहे है! मेरे पति हैं न!

रमेन्द्र ने जो यह सुना, तो उसका सारा शरीर एकाएक अकड़ गया। फिर वह सँभल गया, और यंत्रवत् दो-चार बातें करने के बाद वहाँ से विदा हो गया।

कान्ति ने इसके बाद रमेन्द्र को कभी बस मे नही देखा। वह अब भी रोज़ 10 बजे दफ्तर जाती है, और पाँच बजे आती है। इस प्रकार वह 1942 के एक जीवित शहीद का पालन करती है। 120 रुपये में मुश्किल से पूरा पडता है।

इस युग की सावित्री

मैंने रेस्टोरेंट मे जाकर एक ऐसी जगह चुन ली, जहाँ से मैं सबको अच्छी तरह देख सकता था। खाने के साथ-साथ अन्य लोगों को घूरने मे न्यारा ही रस मिलता है। एकाएक मेरी आँख उस महिला पर पड़ी और मेरा जी धक् से हो गया।

उस महिला की चितवन मे कोई ऐसी बात थी, जिससे मैं फौरन ही आकृष्ट हुआ। दो पेग चढाने पर किसी महिला की आँखो मे जो बात आती है, वही उस महिला की आँखों मे मौजूद थी। वह भी मेरी तरह अकेली थी और सबको घूर-घूरकर देख रही थी। उसकी मेज भी अभी तक खाली थी।

मैंने अन्य मेजों पर बैठे हुए लोगो को देखा तो उनमें कुछ टूरिस्ट किस्म के लोग मालूम पडे जिनके रँग-ढँग से साफ पता चलता था कि वे यहाँ नये-नये आये है। उनके गले में कैमरे लटक रहे थे और किसी-किसी के पास विभिन्न हवाई जहाज कम्पनियो के नामांकित कंधे से लटकाये जा सकने वाले जीपदार बैग भी थे। एक तो अपना कैमरा खोलकर अपने साथी को कुछ समझा भी रहा था। बाकी कोई खास बात नही थी, सब लोग खा-पी रहे थे। किसी को कोई फिक्र नही थी।

रेस्टोरेंट का ब्वाय उस महिला के पास आया, पर उसने कोई आर्डर नही दिया। शायद यह कहा कि वह किसी का इन्तजार कर रही है। मुझे इस कल्पना से (क्योंकि मैंने कुछ सुना तो था नही) धक्का-सा लगा और मेरी आँखो मे जो नशा चढ रहा था, वह एकाएक उतार पर आ गया। पर मैंने अपने मन को समझाया, भले ही वह किसी का इंतजार कर रही हो और वह किसी और की हो, पर मुझे उसे देखने मे जो आनन्द मिल रहा है उससे तो मुझे कोई वंचित नहीं कर सकता। मैंने जैसे यह बात अपने को एक चुनौती-सी देते हुए कही।

वह महिला घडी देख रही थी। उसने दो मिनट के अन्दर दो बार घड़ी देखी। मैंने सोचा, अच्छी बात है, तो जिस हजरत के इन्तजार में है, वह ठीक समय से नही आये। स्त्रियाँ ही देर करती हैं, पुरुष भी ऐसा कर सकते है, खास कर इस तरह की मृगनयनी चन्द्रवदनी से मिलने मे, यह मुझे अब पता लगा।

फिर भी मेरी अन्तरात्मा ने यह कहा कि जो कुछ हो रहा है सो अच्छा ही हो रहा है, आज वह न आये तो अच्छा ही है। मैंने भी पता नही क्यो आर्डर नही दिया और जग से गिलास भर-भरकर पानी पीता रहा, यद्यपि मैं जानता था कि उस मेज का वेयरा मेरे इस कृत्य को तिरस्कार की दृष्टि से देख रहा है।

अरे ! उस महिला ने फिर मेरी तरफ देखा, फिर उसने घड़ी देखी और शायद उसने कुछ निश्चय किया। कई मुहूर्त ऐसे होते हैं, जब मनुष्य यह अनुभव करता है कि उसके जीवन मे कोई बड़ी बात, नित्य नैमित्तिक धारा से हट कर कोई घटना होने जा रही है। मैं ऐसा ही अनुभव कर रहा था। वह महिला एका-एक अपना लटू-पटू सम्हालकर (जाने किस अरसिक ने स्त्रियो के लिए बैग लादना अनिवार्य कर दिया) उठी और मेरे पास आकर कोयल की तरह कूक कर धीरे से बोली—आप किसी का इंतजार कर रहे हैं ?

मैंने कुर्सी से जरा उठकर कहा—जी नही, मैं किसी की प्रतीक्षा नही कर रहा हूँ।

वह पहले से अधिक मधुर स्वर में बोली—यदि मैं आपके साथ बैठूं तो कोई आपत्ति तो न होगी ?

मैं अपना अहोभाग्य बताने ही वाला था कि वह बैठती हुई बोली—अभी हमारे यहाँ इतनी सभ्यता नही हुई कि कोई स्त्री कही अकेली बैठ सके। आपने देखा, लोग मुझे किस बुरी तरह घूर रहे थे। अब मुझे कोई नही घूरेगा।

मैंने यह समझने की चेष्टा की कि घूरनेवालों मे मुझे कहाँ तक शामिल किया गया है या कि मुझे सबसे अधिक घूरनेवाला देखकर ही महिला शेर के माँद मे जाकर शेर से लड़ने के इरादे से मेरे पास आ बैठी है।

इस समय मैं जो बातें लिख रहा हूँ, शायद वे मेरे उस समय के विचारों का हूबहू प्रतिनिधित्व नही करती। सत्य केवल इतना है कि वह जब आकर इस प्रकार अप्रत्याशित रुप से मेरे पास बैठ गयी तो मैं थोड़ी देर के लिए हतबुद्धि हो गया, हाँ उस अर्द्धघबड़ाहट मे एक अनुभूति फिर भी मुझे हुई कि रेस्टोरेंट में मौजूद सब लोग मुझे घूर कर देख रहे थे। यद्यपि इस प्रकार सब लोगों की दृष्टि एक साथ पड़ने के कारण मैं और घबड़ा गया, पर साथ ही मुझे एक गौरव का भी अनुभव हुआ, जो इस प्रकार के अवसरों पर सभी अनुभव करते है।

वह महिला अपनी मतवाली आँखों से मुझे देख रही थी। एक ख्याल से ऐसा होना मुझे अच्छा भी लगा कि सब लोग जो मुझे घूर रहे थे, उस दृश्य को महिला ने नही देखा। कौन जाने वह इतनी आँखों की सम्मिलित दृष्टि के सामने भड़क ही जाती। मैंने कहा—आपके लिए क्या मँगाया जाय ?

इसके उत्तर मे महिला ने मुझसे कुछ नही कहा, पर ब्वाय को बुलाकर कई चीजों का आर्डर दे दिया।

जब ब्वाय चला गया तो बोली—माफ़ कीजिये, मैंने आपसे कुछ पूछा नहीं। पर लोग कैसे होते हैं, आप जानते ही है। मैंने सबको यह इम्प्रेशन देना चाहा कि हम लोग पूर्व-परिचित है और एक-दूसरे की खाने-पीने की आदतों को अच्छी तरह जानते है।

मैंने भी यह बात समझ ली थी, मैंने कहा—पर आपने बिना जाने जो-जो आर्डर दिया, मै स्वयं आर्डर देता तो भी उन्ही चीजों का आर्डर देता।

वह महिला मुस्करायी और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसकी हँसी में मादकता तो थी ही, पर कुछ ऐसी बात थी जो छुरी की तरह चुभ जाती है। कुन्द छुरी नहीं, डॉक्टर की छुरी, जिससे हड्डी भी कट जाय तो पता न लगे।

खाते-खाते हम लोग बातें करते जाते थे और मैं अपने भाग्य को सराहता जाता था कि न जाने किन ग्रहों के प्रभाव से यह दिन आया। कहते हैं बारह वर्ष में घूरे का भाग्य भी बदलता है, सो यहाँ तो बारह क्या जाने कितने बारह, लगभग तीन बारह साल निकल गये थे, फिर भी प्रेम का मुँह नहीं देखा था, बस कहानियों, उपन्यासों और फिल्मों में प्रेम देखता था और इस नतीजे पर पहुँचा था कि या तो प्रेम गजमुक्ता की तरह कवियों की कल्पना-मात्र है या किसी भाग्य के वरपुत्र को ही इसका प्रसाद प्राप्त होता है। मेरे जीवन-तरु पर भी कभी वसन्त के किशलय निकलेंगे, इसकी मुझे रंचमात्र आशा नहीं थी। भला मरुभूमि कैसे आशा करती कि उसमें फूलों की चाँदनी फैलेगी। वह लेडी (महिला शब्द से उसका पूरा रूप सामने नहीं आता, इसलिए हिन्दी वाले मुझे माफ करें) बोली—मैं दुखी हूँ। मेरे दुख के बहुत-से कारण है। मेरा विवाह अच्छा ही हुआ था, पर बाद को पता चला कि पति महोदय केवल मेरे पिता की सम्पत्ति से प्रेम रखते थे, असल में उनका दिल कहीं और गिरवी रखा हुआ था।—कहकर महिला ने रूमाल से अपनी आँखें पोंछी।

मैं समझ नहीं पाया कि ऐसे नाजुक प्रसंग में किस तरह सहानुभूति जतानी चाहिए। जल्दी में किसी उपन्यास का ऐसा प्रसंग याद नहीं आया जिसमें हूबहू यह गुत्थी सुलझाई गयी हो। खैरियत यह है कि सहजात बुद्धि ने सहारा दिया और मैंने अपने को कहते हुए पाया—आज कौन ऐसा व्यक्ति है जो अपने विवाह में सन्तुष्ट है! जन्म, मृत्यु, विवाह, जीवन की ये तीन सबसे महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं, इनमें दो पर अपना कुछ वश नहीं है, पर विवाह जिस पर कि वश है, उसे भी लोग बड़े भोंडे तरीके से बिना समझे-बूझे करते है। स्वभाव, कुल, चरित्र, इत्यादि मिलाने की बजाय लोग जन्मपत्री मिलाते हैं, जिसका कोई अर्थ नहीं होता।

महिला ने कहा—हाँ, और जन्मपत्री जैसे बनती है, वह आप जानते ही है। पण्डितों को पैसे दे दीजिये तो वह आपको गधे से घोड़ा बना दें।

विषय सुन्दर चला था। मैंने घड़ी देखी 7 बज चुके थे। इस विषय पर बात-

चीत करते हुए मजे मे दो घण्टे निकल सकते थे। और कुछ नही तो बतरस तो मिल ही रहा था। लेडी वातचीत करने मे वडी पटु थी। मुझे तो यह भी मालूम हो रहा था कि वह सुपठित भी है।

मैंने जोश में आकर कहा—इन सारी समस्याओ का समाधान यह है कि विवाह की भोंड़ी प्रथा ही दूर कर दी जाये। पुरुष भी कमायें और स्त्रियाँ भी कमायें। किसी के लिए किसी की जीवन-संगिनी होना लाजिम न हो। जब तक निभे तब तक साथ हो, वाद को अलग हो जायें। हमेशा के लिए पट्टा लिखवाना बिल्कुल असभ्यता का द्योतक है।

वह लेडी कुछ मुस्कराई। शायद उस मुस्कराहट मे कोई ऐसा उपदान था जो मुझे चुभा। वह वोली—आप बहुत आगे की बातें कर रहे हैं। अभी हमारा समाज इतना आगे जाने को तैयार नही है, इसीलिए सारा दुख है।

मेज पर का सारा सामान खतम हो चुका था। ब्वाय आकर खड़ा हो गया था। लेडी ने फिर से घड़ी देखी और अब की बार उसने चीज-पकौड़े की पुनरावृत्ति कराने के साथ ही साथ अपने लिए चिकेन-कटलेट का आर्डर दिया और फिर मेरे मुँह की तरफ देखकर बोली—आप जब इतने आधुनिक विचार रखते हैं तो *नानवेजीटेरियन तो होगे ?*

मैं था तो नानवेजीटेरियन, पर मैंने मन-ही-मन हिसाव लगाया तो सोचा कि इसके बाद और कुछ नही तो आइसक्रीम जरूर आयेगी और यहाँ पैसे नही थे, मैंने कहा—मैं यह नही मानता कि विचारों मे आधुनिक होने का अर्थ अनिवार्य रूप से मांस-भोजन का पक्षपाती होना है। बर्नेडशा, आइन्स्टाइन इत्यादि जो इस युग के महान विचार नेता हुए है, वे निरामिषभोजी थे। मैं तो कुछ भी नही लूँगा।

वह लेडी फिर मुस्करायी। हमारा विचार-विनिमय चलता रहा और मैं बाकी बचे हुए दो-तीन चीज-पकौड़ो को इस मितव्ययिता के साथ खाने लगा कि शायद चीटियाँ भी मुझसे शरमा जाती। बिल आने के बाद मैं सबके सामने शर-मिन्दा नही होना चाहता था।

बातचीत बड़ी तेजी से चलती रही। मैंने कहा—आप मेरे विचारों को आधुनिक कहती है, पर मैं तो अपने को बहुत रूढिवादी समझता हूँ। मेरे एक मित्र है जो मुझसे भी आगे बढे हुए है। वह कहते है कि अव्वल तो भविष्य मे विवाह-प्रथा रहेगी नही और यदि रही तो पुरुष इतने बुद्धिमान होंगे कि वह अपनी पत्नी मे अपना वंश नहीं चलाना चाहेंगे बल्कि जैसी सन्तान की इच्छा हो वैसे नरपुंगव का वंश चलायेंगे। मसलन कोई यह चाहता हो कि उसका लड़का पहलवान हो, तो वह अपने समय के सबसे बड़े पहलवान का बीज शीशी मे बन्द प्राप्त करेगा और उसी से अपनी इच्छा की पूर्ति करेगा। पत्नी के साथ प्रेम मे

कमी नहीं होगी और न पुत्र के प्रति प्रेम घटेगा। फिर भी अपनी नाचीज नस्ल चलाने के अहमकपन से छुटकारा हो जायेगा।

इसी प्रकार हम दोनों में वार्ता होती रही। चिकेन-कटलेट आया, उसके बाद आइसक्रीम आयी। यहाँ तक कि आठ बज गये। अब वह महिला बार-बार दरवाजे की ओर देख रही थी। मैं समझ गया कि अब यह पति के डर से घर जाना चाहती है, इसलिए मैंने प्रसंग को जबर्दस्ती फेरते हुए कहा—पुरुष तो रात-रात-भर घूमते हैं, पर कोई नहीं पूछता; महिला बेचारी यदि दिया-बत्ती के बाद कहीं अकेली जाय तो बस लेने के देने पड़ जाते हैं।—कहकर मैंने अपने चेहरे को बहुत कड़वा बनाते हुए कहा—पता नहीं हम किस शताब्दी में हैं···

मैं और भी कुछ कहना चाहता था कि वह महिला किसी को आते देखकर उठ खड़ी हुई। जिसे देखकर वह उठ खड़ी हुई थी, वह तीर की तरह इधर ही आया तो महिला (अब मैं उसे महिला ही कहूँगा) उसके पास गयी और फिर मेरा उस व्यक्ति से परिचय कराते हुए बोली—यह मेरे पति हैं, और यह सज्जन मेरे आज के होस्ट हैं।

उस व्यक्ति ने मुझे नमस्ते किया, पर उसके चेहरे पर भी मैंने वही मुस्कराहट देखी जिसे उस महिला में कई बार देख चुका था। वह व्यक्ति बोला—आपसे परिचय हुआ, बहुत खुशी हुई। कल हम लोगों की शादी की बारहवीं सालगिरह है, आप अवश्य पधारियेगा।

उस महिला ने भी मुस्कराते हुए कहा—हाँ, अवश्य आइयेगा और अपने उस मित्र को भी लाइयेगा। टा टा—कहकर वह अपने पति का हाथ पकड़कर चलती बनी।

थोड़ी देर में मुझे ख्याल आया कि निमन्त्रण तो इन लोगों ने दिया, पर मुझे कोई पता नहीं दिया और न नाम ही बताया। मेज की ओर निगाह डाली तो प्लेट में बिल पड़ा था। वही एकमात्र वास्तविकता थी।

कलाकृति

नन्दन कश लेते हुए बडे ध्यान से अपनी नव-विवाहिता पत्नी के हर कार्य को देख रहा था। कोई बन्धन नही था क्योंकि फ्लैट मे दो ही प्राणी थे : नन्दन और अलका। अलका घर की हर चीज को जैसे सूंघ-सूंघकर आगे बढ़ रही थी। पुस्तकों पर तो उसने ध्यान ही नही दिया, न उसने दीवार पर टँगे हुए कैलेण्डर को देखा, चित्रों की तरफ भी उसने केवल उड़ती हुई निगाह डाली और अन्त मे उसका ध्यान उस कलमदान पर पड़ा, जिसके साथ ही कृत्रिम पेड़ के तने के अंदर तारीख दिखाने की व्यवस्था थी। कुल मिलाकर यह वस्तु बहुत सुरुचिपूर्ण थी और उससे मेज की शोभा में चार चाँद लगते थे। कई लोग इस कलमदान की प्रशसा कर चुके थे।

पर कई दिनों से इधर विवाह की चहल-पहल की वजह से तारीख नही बदली गयी थी। अलका ने उसे उठा लिया और उसने उसकी तारीख ठीक की। फिर जैसे उसने कुछ सोचा और उसने एकाएक कलमदान को अपने से अलग कर दिया।

इसके बाद वह बैठक के अन्दर घूमती रही। लौटकर वह फिर उसी कलमदान के पास पहुँची और उसे हाथ मे उठाकर बोली—इसकी यहाँ क्या जरूरत है? आजकल कलमदान से कौन काम लेता है? यह तो फाउन्टेनपेन का युग है।

नन्दन सहसा कुछ बोल नही सका, वह टुकुर-टुकुर देखता बैठा रहा।

अलका ने जैसे अपने-आपसे प्रश्न किया—इसकी यहाँ क्या जरूरत है?

अब की बार नन्दन सचेत हो गया, बोला—उसकी जरूरत नही है, तभी तो वह कला की वस्तु है। नही तो वह तो कुर्सी-मेज की श्रेणी मे आ जाता। उपयोगिता से ऊपर उठने पर ही कला का क्षेत्र शुरू होता है।

पर अलका ने फैसला-सा सुनाते हुए कहा—नही, नही, इसकी यहाँ कोई जरूरत नही है। भोंडा लगता है।

नन्दन ने विवाह के बाद पहली बार नववधू के प्रस्ताव का गम्भीरता के साथ प्रतिवाद करते हुए कहा—पर तारीख?

इस पर अलका बोली—कैलेण्डर तो टँगा है, तारीख देखने के लिए काफी है।

—कहकर वह आगे बिना कुछ कहे कलमदान लेकर भीतर चली गयी।

नन्दन वहाँ बैठे-बैठे सोचता रहा और छुट्टी के अन्तिम दिन का उपभोग करने की दृष्टि से सिगरेट का कश लेता रहा। कैसी अजीब बात थी कि कलमदान ही अलका की अप्रसन्नता का शिकार हुआ!

क्या स्त्रियों में कोई छठी ज्ञानेन्द्रिय होती है? विवाह के पहले नन्दन ने बाकायदा एक पुलिस-अधिकारी की तरह अपने फ्लैट की तलाशी ली थी कि कोई ऐसी चीज न रह पाये जिसमें मुक्ता की गन्ध रह जाय। उसने पहले ही मुक्ता की सारी चिट्ठियाँ उसे वापस कर दी थी।

मुक्ता ने पत्र लेकर कहा था—इन्हें वापस करने की कोई विशेष जरूरत नहीं थी। तुमसे मुझे यह भय नहीं है कि कभी तुम इनका दुरुपयोग करोगे, फिर भी जब लाये हो तो लाओ—कहकर उसने नन्दन के सामने ही उनमें दियासलाई लगा दी थी।

नन्दन ने बैठे-बैठे इन पत्रों को जलते देखा था और उसे ऐसा लगा था कि उन पत्रों के साथ-साथ उसके हृदय का भी कुछ हिस्सा सुलग और धुँधुआ रहा है। वह सन्न-से रह गया था। उसे कोई विशेष आशा तो नहीं थी कि मुक्ता अपना निर्णय बदलेगी, क्योंकि उसने बहुत सोच-समझकर ही निर्णय किया था। फिर भी उसके मन के अन्तस्तल में राख के ढेर के नीचे एक चिनगारी उभरी थी कि शायद विविध परिस्थितियों में वर्षों के दौरान लिखित इन पत्रों को देखकर मुक्ता का जी भर आये और वह कुछ कहे।

पर मुक्ता ने तो उन पत्रों को करीब-करीब देखा ही नहीं। जिस प्रकार से बंडल बँधा हुआ था, उसी प्रकार से उनमें दियासलाई लगा दी। बाद को नन्दन ने सोचा था कि जो अपने प्रेम को इस तरह अस्वीकार कर सकती है, वह पत्रों के प्रति मोह क्यों दिखाती?

जब पत्र जल चुके, राख-भर रह गयी, तब मुक्ता ने नन्दन से कहा था—तुम बहुत बुद्धिमान हो, जगत्-व्यापार समझते हो, इसलिए तुम कोई गम न करना। तुम मेरे बारे में चाहे जो कुछ सोचो, पर तुम हमेशा यह तो सोच ही सकते हो कि मैंने तुमको जो कुछ दिया, वह असली था और जो मैं उसे देने जा रही हूँ, जो मेरा पति कहलायेगा, वह नकली है, सेकेण्ड-हैण्ड है।

इस पर नन्दन ने टूटते हुए कहा था—जब तुम यह जानती हो और तुम इतनी बुद्धिमती हो, तो फिर तुम मेरी ही क्यों नहीं बनी रहती···

इसपर मुक्ता कड़वी हँसी हँसकर बोली थी—वह युग गया जब नारी केवल घर या परिवार से सुखी रह सकती थी। यह अच्छा हुआ या बुरा, इसे तो दार्शनिक और समाज-सुधारक ही सोचें, पर वह युग लद गया और अब नहीं लौटने का। मुझे प्रेम चाहिए पर और भी कुछ चाहिए, जो तुम दे नहीं सकते हो।

इस पर नन्दन ने तर्क करते हुए कहा था—प्रेम पहले और अन्य चीज़ें बाद को।

मुक्ता अपनी शुभ्रदन्त-पंक्ति की छटा बिखराती हुई बोली थी—बिलकुल यही बात ! प्रेम तो हो चुका, अब दूसरी गम्भीर बातों के लिए उसके पास जा रही हूँ, जो वही दे सकता है।

नन्दन राख के ढेर की तरफ देखता रहा। उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह ढेर उसके गले को अवरुद्ध कर रहा है। बोला—हम लोग तीन साल तक एक-दूसरे के बने रहे। अब मेरे लिए जाना असम्भव होगा।

मुक्ता ने इस पर कहा था—तुम विश्वास करो नन्दन, कि मैं भी यह निर्णय बहुत यातनाओं में घुल-घुलकर ही ले पायी। तुम विश्वास करो कि तुम मुझे भूल जाओगे।'''फिर उसने हँसकर कहा था—मेरी ऐसी विश्वासघातिनी को भूलने में तुम्हें कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए।

पर यही तो नहीं हुआ। उसने अपने से यह तर्क कई बार किया था, पर मन नहीं मानता था। नाहक ही लोग मनुष्य को तार्किक प्राणी कहते हैं, जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण निर्णय तर्क से नहीं किये जाते।

पर मुक्ता ने तो तर्क से ही निर्णय किया था और वह उस पर बिलकुल निष्करुण होकर अन्त तक डटी रही। सबसे आश्चर्य की बात तो यह रही कि वह बराबर अपने भावी पति को तुच्छ और हेय करके दिखाती रही। फिर भी उसने नन्दन की प्रार्थनाओं पर ध्यान नहीं दिया।

नन्दन ने कहा था—तुम उसे इस तरह तुच्छ बता रही हो, पर उसी को तुम जीवन-संगी चुन रही हो, उसी के वंश को तुम चिरस्थायी करने जा रही हो, क्या यह उचित है ?

इस पर उसने बड़े ही अजीब ढँग में कहा था—मैं ऐसा क्या कोई खुशी से करूँगी ? जब उसके दामों पर गुलछर्रे उड़ाऊँगी, तो उसीकी सन्तान धारण करूँगी, यह तो उसी तरह है जैसे तुम सेठ बागड़िया के यहाँ नौकरी करते हो, उसके लक्ष्यों और उद्देश्यों को जीवन का रस पहुँचाते हो, क्या तुम उनसे सहमत हो ?

नन्दन ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया था क्योंकि उसने समझ लिया था कि और कोई प्रभाव भले ही पड़े, पर मुक्ता पर तर्कों का प्रभाव नहीं पड सकता।

अन्तिम भेंट इस प्रकार बहुत करुण रही थी, तभी मुक्ता ने उसे वह क़लमदान भेंट कर दिया था और कहा था—यह तुम्हारी मेज पर रखा रहेगा, तुम रोज़ जब तारीख बदलोगे तब मेरी याद आयेगी। तुम विश्वास करो, जिस प्रेम से मैं यह वस्तु तुम्हें समर्पित कर रही हूँ, उस प्रेम से भविष्य में मैं किसी को कोई चीज़ नहीं दूँगी।

कहकर उसने स्वयं आगे बढ़कर नन्दन के ओठ चूम लिये थे, पर उनमें पहले

की तरह उष्णता नही थी; बल्कि भविष्य की द्योतक शीतलता या एक प्रकार की उदासीनता आ गयी थी जैसे दोनों एक-दूसरे के लिए मर ही चुके हों।

नन्दन तारीख वाला क़लमदान लेकर शून्य हृदय से घर चला आया था। उसके बाद यथासमय मुक्ता का विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ था। वीकली में नवदम्पती के चित्र भी छपे थे।

यद्यपि वे इसी नगर मे थे, पर नन्दन से कभी मुक्ता की जिसे भेंट कह सकते हैं, वह नही हुई। कभी दूर से तेज मोटर मे जाते हुए नवदम्पती या अकेले मुक्ता की एक झलक देख ली, बस इतना ही।

उसके बाद नन्दन ने यह विवाह किया था, क्योंकि सब लोग करते हैं, क्योंकि मन की एक खाई को भरना था।

कितनी अजीब बात है कि नववधू ने आकर पहला ही काम यह किया कि तारीख वाले कलमदान को हटा दिया। वह ऐसा अनुभव कर रहा था जैसे वह स्वतन्त्र न हो बल्कि किसी अदृश्य शक्ति के हाथो मे खिलौना-मात्र हो। शायद उस शक्ति मे तर्क है, पर करुणा नही है। वह शक्ति किसी के हृदय के तन्तुओं के टूटने की परवाह नही करती।

सिगरेट के धुएँ के अन्दर से वह अपने मिटते हुए संसार को देख रहा था और साथ ही उस संसार को देख रहा था, जो सामने आ रहा था। उसे कोई उत्साह नही था।

इतने मे अलका भीतर से आयी। उसके हाथ मे एक पैकेट था, बोली—अरे, तुम तो तब से बैठे न जाने कितनी सिगरेटें फूंक गये! मैं उस कलमदान की जगह पर एक वास्तविक कलाकृति रख रही हूँ—कहकर उसने वह पैकेट खोला और उसमे से हाथी-दाँत का तारीख बदलने वाला कलेण्डर रख दिया। इसमें सन्देह नही कि वह बहुमूल्य था।

नन्दन अपनी जड़ता से सहमा जाग उठा। उसके मन में प्रबल सन्देह हुआ कि जैसे उसको मुक्ता ने तारीख गिनने के लिए कलेण्डर दिया है, वैसे अलका को तो किसी युवक ने नही दिया?

उसके चेहरे पर कई रंग आये और गये। उसने जल्दी से सिगरेट राखदान पर रख दी। उसके हाथ मे तनाव आ गया। वह डगमगाते कदमों से हाथी-दाँत के चिरन्तन कलेण्डर की ओर बढ़ा। उसने उसे कसकर पकड़ लिया, जैसे बिल्ली चूहे को पकड़ती है। वह उसे फर्श पर पटकने ही वाला था कि उसका ध्यान उस पर अंकित शब्दों पर गया। उसपर लिखा था—नानी की ओर से।

नन्दन के हाथ ढीले पड़ गये, उसने उसे मेज पर रखते हुए मुस्कराने की चेष्टा करते हुए कहा—वाकई उच्च कलाकृति है।

अलका गौरव के साथ बोली—होना ही था, नानीजी हाथी-दाँत भारत से ले गयी थी, बाकी सारा काम हालैंड का बना हुआ है।

का वर्षा जब कृषी सुखानी

लोग कहते हैं कि मुझको देखकर यानी मैं क्या कर रहा हूँ, यह देखकर घड़ी मिलाई जा सकती है। पर मैं ही जानता हूँ कि यह बात कितनी गलत है। फिर मुझे तो अपने जैसे आदमियों की दुनिया में कोई कमी मालूम नहीं होती। कम-से-कम एक आदमी से तो रोज सवेरे-सवेरे मेरा साबका पड़ता है, जो मेरी ही तरह नियम से सवेरे टहलने आता है।

जब मैं नाई की दूकान के इस बगल से निकलता हूँ तो वह उस बगल से आता है और उतने ही नियम के साथ कुएँ के पास बैठकर हू-हू करते हुए पागल से कहता है—चल बे चाय पी ले'''

कितने ही लोग उस पागल को हू-हू करते सुनते हैं, पर कोई उससे कुछ नहीं कहता, बस वही आदमी उसे बुलाकर जरूर चाय पिलाता है।

महीनों से यह बात देख रहा हूँ और कई बार इस पर चिन्तन भी करता हूँ कि आज के युग में ऐसे भी लोग मौजूद हैं, जो नियमपूर्वक अच्छा काम करते हैं और किसी पर उसका ढिंढोरा नहीं पीटते।

मैंने अपने मुहल्लेवाले मित्र बाबू रामशरण से एक दिन बात-बात में उसका जिक्र किया, पर जैसी कि उनकी आदत है, उन्होंने उस बात को तो सुना नहीं और अपनी तरफ से दूसरी ही बातें शुरू कर दीं। उन्हें मैं अच्छी तरह जानता था। उनके सम्बन्ध में मेरी यह धारणा थी कि वे महज अपनी आवाज पर आशिक हैं और इसीलिए बोलते हैं, चाहे उसमें कोई तुक हो या न हो। बेमौजूँ कहावतें तथा उद्धरण देने में भी वे बेजोड़ हैं। नाक-भौं सिकोड़ते हुए बोले—सौ सुनार की, एक लुहार की। आजकल चाय तो ऐसी हो गयी है जैसे साँस लेने को हवा हो। जब देखो तब चाय, जहाँ देखो वहाँ चाय। दुनिया में चाय की दूकानें जिस रफ्तार से बढ़ रही हैं, उसमें तो ऐसा मालूम होता है कि यही रहेगी और कुछ नहीं रहेगा।

मैंने उन्हीं की बातचीत की पद्धति अपनाते हुए कुछ व्यंग्य के साथ कहा—अन्त में तो बस अल्लाह का नाम ही रहेगा जैसाकि मस्जिद वाला फकीर कहता

है।

इस पर बाबू रामशरण नाराज होते हुए बोले—हाथ कंगन को आरसी क्या ? यह भी एक निहायत बेवकूफी की बात है। जब नाम लेने वाले ही नहीं रहेंगे तो नाम कहाँ से रहेगा ?

मैंने अपने विषय पर लौटते हुए कहा—नाम हो या न हो, पर अच्छा काम अच्छा ही कहलायेगा। यह निश्चित है कि यदि ऐसे परोपकारी जीव न होते तो वह पागल कब का मर चुका होता, क्योंकि यह तो साफ ही है कि सरकार के पागलखानों में उसके लिए जगह नहीं है। इतने दिनों से यह पागल यहाँ घूमता है। इसके कपड़े फटकर चीथड़े हो गये, चीथड़े भी गल गये, तब शायद किसी ने और कोई लत्ता दे दिया, पर इसकी ओर सर्वशक्तिमान भारत-सरकार की पुलिस की दृष्टि नहीं गई और यह जब तक कुएँ में गिर कर या और किसी तरह से नहीं मरेगा, तब तक इसी तरह 'हू-हू' करता रहेगा।

बाबू रामशरण में यह आदत भी थी कि जब कोई बात कही जाती थी तो उसके आधे पर ध्यान देते थे, बाकी आधे पर कोई ध्यान नहीं देते थे। बोले—सूनी सार से मरखना बैल अच्छा। पागल को जिला कर कौन-सा बड़ा पुरुषार्थ हो रहा है ? जब पागल ही हो गया और न उसका इलाज हो सकता है, न और कोई उपचार हो सकता है, तो उसका मर जाना उसके लिए भी अच्छा है, और समाज के लिए भी।

बात तो ठीक थी, पर व्यक्ति से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह इतनी गहराई तक सोचे, फिर आँख के सामने किसी को, भले ही वह पागल हो, बिना खाये मरने देने में कौन-सी इन्सानियत है ? मैंने यही कहा।

तब रामशरण बाबू ने जैसे कुछ चेतते हुए कहा—अल्पज्ञान भयंकरी। तुम जो बात कह रहे हो, वह इसलिए कह रहे हो कि सारी बातें नहीं जानते। यदि जानते तो ऐसा नहीं कहते। तुममें यह कमजोरी है कि जो लोग नियमित रूप से कार्य करते हैं, उनमें चाहे और कोई भी ऐब हो, उसे तुम देख नहीं पाते और उसकी सारी बातों को अच्छी रोशनी में देखते हो।

इसके पहले भी लोगों ने मुझ पर यह दोष लगाया था, इसलिए मैं चुप ही रहा, क्योंकि दोष कई बार गुण का चमड़ा ओढ़कर आते हैं और पता ही नहीं चलता कि ये दोष हैं।

वह बोलते गये—जो व्यक्ति रोज उसे चाय पिलाता है, वह एक प्रसिद्ध ठेकेदार है। इसका कारोबार सारे शहर में फैला हुआ है। सच तो यह है कि अब इसका कारोबार उस मंजिल पर पहुँच चुका है, वहाँ कुछ करना नहीं पड़ता। सारे काम अपने आप ही सरकते जाते हैं और मुनाफे का ढेर लगता जाता है।

तुमने भी इसका नाम सुना होगा। इसका नाम है पुरुषोत्तम, पर यह है पूरा

नराधम। इसने नही किये ऐसे बुरे काम नही हैं। सच तो यह है कि अब इसे ठेकेदारी मे कोई दिलचस्पी ही नही है, सिवा इसके कि उसी के दायरे में यह अपनी विभिन्न प्रवृत्तियों के लिए शिकार खोजता रहे।

मैंने मृदु प्रतिवाद करते हुए कहा—पर यह तो अधेड़ उम्र का है···

—इससे कुछ नही आता-जाता। तलवार पुरानी हुई तो क्या, काट वही है। जब यह ठेकेदारी मे कुछ नाम कर ही रहा था, तब इसने एक शरीफ घर की औरत को फाँसने की कोशिश की थी। उसमे इसकी बड़ी बदनामी हुई थी और शायद पिटते-पिटते बचा था, तब से इसने प्रतिज्ञा कर ली कि यह दायरा छोड़ देना चाहिए। उसके लिए जैसे शरीफ घर की स्त्री वैसी ही मजदूरों की स्त्रियाँ। बल्कि उसने देखा कि मजदूरो की स्त्रियाँ अक्सर ज्यादा अच्छी होती हैं। शहरों की स्त्रियों का सारा सौन्दर्य बनाव-शृंगार और कपड़े-लत्ते की अपेक्षा रखता है। यदि उनसे अलग करके उन्हें देखा जाए तो वे अक्सर बड़ी फीकी लगती है, जबकि मजदूरों मे बात ही कुछ और है।

यहाँ के मजदूर अक्सर राजस्थान से आये हुए होते हैं और उनकी स्त्रियाँ काफी लम्बी-चौड़ी होती हैं तथा उनका यौवन छलकता हुआ होता है। उनके मामूली और बुरी तरह सिले हुए कपड़े उस यौवन को कैद नही कर पाते, बल्कि उसकी झलक और भी मोहक होकर सामने आ जाती है।

तुम कहोगे कि मैंने इतनी बातें कहाँ से जानी। मैं कभी उसके साथ था। यह बात और है कि मैं एक मामूली ठेकेदार रह गया और वह सरकार की दृष्टि में गण्यमान्य ठेकेदार हो गया। क्यों हुआ, इसका रोना इस अवसर पर नही रोना है।

पुरुषोत्तम का हाल यह था कि जब उसने मजदूरों की स्त्रियों पर हाथ मारना शुरु किया तो वह एक हजार एक रात के शाहजादे की तरह रोज नई-नई स्त्रियों पर हाथ मारता रहा। मैं जानता हूँ तुम इस पर विश्वास नही करोगे, क्योंकि तुम्हारे दिमाग मे यह बैठा हुआ है कि हमारे मजदूर ईमानदारी के पुतले हैं। पर यह बात सत्य से बिलकुल दूर है। न मानो, माल रोड के पास अपने जो हकीम तीरथमल बैठते हैं, उनसे पूछ देखो। वह कहते हैं कि उनके पास प्रतिदिन दस बीस ऐसे मजदूर मरीज आते हैं जिनको कोई न कोई गुप्त रोग हो गया है।

मैंने पूछा—यह तो पुरुषों का हाल है, पर क्या हकीम तीरथमल के पास स्त्रियाँ भी आती हैं?

बाबू रामशरण ने बीच मे टोके जाने पर नाराज होते हुए कहा—छोटे मियाँ तो छोटे मियाँ, बड़े मियाँ सुभान अल्लाह! कितनी बातें मुझसे कहलवाना चाहते हो? स्त्रियाँ तो इसलिए नही आती कि पुरुष हकीम के सामने वे अपने बताना नही चाहती। यदि मजदूरनियों को ये रोग नही हैं तो मजदूरों को

कहाँ से आये ?

मैंने कहा—माफ करना रामशरण जी, आप तो बिल्कुल बुद्धि के विरुद्ध बातें कर रहे हैं। यह तो आपको मालूम ही होगा कि हमारे शहर में ज्यादातर मजदूर ऐसे हैं जो अपनी बीबी नहीं ला सकते और मजदूरी करने वाली जनता में स्त्रियों से पुरुषों की संख्या बहुत अधिक है। आप तथ्यों को अस्वीकार तो नहीं कर सकते।

बाबू रामशरण ठेकेदार होने के नाते मजदूर वर्ग के उसी प्रकार से दुश्मन थे जैसे कि सब पूँजीपति होते हैं। यदि ऐसी अवस्था में वे मजदूरों को नैतिक रूप से अपने से गिरा हुआ समझते हैं तो इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं थी। इसलिए मैंने इस पर ज्यादा जोर नहीं दिया, पर वे खुद ही आक्रमणात्मक ढंग से बोले—तुम इन सालों को क्या समझते हो ? पहले-पहल जब ये शहर में आते हैं तो ये इधर-उधर जाने की हिम्मत नहीं करते, अपने ही तबके और देश की स्त्रियों पर हाथ मारते हैं, पर जब हौसला कुछ खुल जाता है, तब ये इधर-उधर जाते हैं। न हो तुम तीरूमल से पूछ लो।

मैंने कहा—कुछ भी हो, पर इस मामले में तो उसकी मैं प्रशंसा ही करूँगा कि वह रोज सवेरे उस पागल को चाय पिलाता है।

इस पर रामशरण बाबू बिना कारण आपे से बाहर हो गये, फिर भी उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार कहावत का प्रयोग करते हुए कहा—का बर्षा जब कृषी सुखानी। तुम तो इतना ही जानते हो कि वह उसे चाय पिलाता है, पर मैं जानता हूँ कि यह अक्सर इसे खाना भी खिलवा देता है, पर इससे क्या ? जब खेती सूख गई तो वर्षा से क्या लाभ ? यह ठूंठ अब हरियाने का नहीं है।

मैंने कहा—पागल को सही दिमाग बनाना उसके हाथ में नहीं है, सच तो यह है कि इस सम्बन्ध में विज्ञान भी अभी अँधेरे में टटोल रहा है···

मेरे मुँह से बात छीन कर बाबू रामशरण ने कहा—अन्धे के हाथ कभी-कभी बटेर लग जाता है, यही तुम कहोगे न ? पर छोड़ो विज्ञान की बातें। पुरुषोत्तम की बात सुनो। शायद इसका जी कुलियों की स्त्रियों पर हाथ मारते-मारते भर गया, इसलिए यह दूसरी तरफ झुका। इधर के सभी लोग जानते थे कि एक मजदूर की लड़की बहुत ही खूबसूरत है। उसका असली नाम क्या था, यह तो मुझे पता नहीं, पर मन ही मन मैं उसे पद्मिनी कहता था। तुम बताओगे कि पद्मिनी और अलाउद्दीन की कहानी बिल्कुल अनैतिहासिक है, पर मैं इतिहास की बात नहीं करता। मेरे मन में वीरगाथा वाली पद्मिनी का जो चित्र था, वह इस युवती को देखकर मूर्त हो उठता था।

जो भी उसे देखता था, वही उस पर मुग्ध हो जाता था। मुहल्ले और गैर-मुहल्ले के बहुत-से शरीफजादे उसके पीछे रहते थे, पर उसका बाप उसे कभी आँखों

से ओझल नही होने देता था और हर समय छाया की तरह उसके पीछे लगा रहता था। बात यह है कि पद्मिनी की माँ मर गई थी और बाप-बेटी सिरकी की एक झोंपड़ी में पहाड़ के नीचे रहते थे।

कई लोग उसका चक्कर काटते रहते थे, पर कोई उसके पास कभी फटक नही पाया।

एक दिन पुरुषोत्तम ने उसे देख लिया, बस वह उस पर लट्टू हो गया। वह दिन-रात इसी फिराक मे रहने लगा कि कैसे उसे अपने चंगुल मे लाये। पर वह इस मामले मे कतई सफल नही हुआ। पद्मिनी का बाप एक दूसरे ठेकेदार के अधीन काम करता था। पहले पुरुषोत्तम ने उसे फोडकर अपने यहाँ काम देना चाहा, पर इसमें भी उसे सफलता नही मिली। तब उसने उस ठेकेदार से साफ-साफ कहा कि मेरा ऐसा-ऐसा इरादा है, तुम इसे अपने यहां से निकाल दो।

वह ठेकेदार भी कोई दूध का धुला हुआ नही था। उसे अब तक पद्मिनी का पता नही था, अब जो पता चला तो वह भी ललचा गया। उसने नैतिक सिद्धान्तों की दुहाई देते हुए कहा— मैं ऐसे बुरे काम मे साथ नही देने का।

इसके बाद शायद दोनों में कुछ समझौता हुआ और दोनों मिलकर उस बेचारी के पीछे पड़ गये। एक दिन उस ठेकेदार ने पद्मिनी के बाप को बालू के ट्रक के साथ कही दूर भेज दिया। पुरुषोत्तम मौके से मोटर लेकर पद्मिनी की झोंपड़ी में पहुँचा, पर वहाँ वह नही थी। पास-पड़ोस की किसी स्त्री के पास जाकर बैठी थी।

इस तरह उसने कई बार घात लगाया, पर उसकी दाल नही गली।

पद्मिनी के बाप ने मामला ताड़कर लड़की की शादी तय कर ली और उसकी शादी का दिन भी आ गया। राजस्थान से या ईश्वर जाने कहाँ से बरात आई। पुरुषोत्तम तथा उसके साथी ठेकेदार भी मेरे ख्याल से बिना बुलाए हुए वहाँ पहुँचे और हर तरह की मदद पहुँचाने लगे। जब वर शादी के लिए जाने को हुआ, तब पता नही किसने उसे पट्टी पढा दी या उसने खुद ही किया, वह मचल बैठा कि साइकिल मिले तभी वह आगे बढेगा।

इस पर बेचारा पद्मिनी का बाप बहुत घबडाया। तब उसके ठेकेदार ने उसे तसल्ली दी और कहा—यह तो कोई बड़ी बात नही, तुम मेरा रुक्का लेकर चले जाओ, साइकिल मिल जाएगी। घबड़ाओ मत, मैं सब कुछ देखता हूँ।

क्या करता वह बेचारा चला गया। वह जल्दी लौट आये, इसलिए पुरुषोत्तम ने उसे अपनी मोटर दे दी। ज्योंही पद्मिनी का बाप चला गया, त्योंही पुरुषोत्तम और उसका साथी दोनों बारातियों मे पहुँचे और उन्हे बुरी तरह गालियाँ देने लगे—साले, सुअर के बच्चे, दुनिया-भर के भुक्खड़, साइकिल लेने चले हैं। सबको पचास-पचास जूते लगवाऊँगा···अभी यहाँ से निकल जाओ···

इस प्रकार गालियाँ सुनकर बाराती बुलक कर फौरन वहाँ से रवाना हो गये। जो लोग पद्मिनी की तरफ से थे, उनको भी पुरुषोत्तम ने बहुत बुरा-भला कहा। बिना कारण बिगड़ते हुए बोला—माने तुम लोगों ने बारातियों को यह नहीं बताया गया कि वह बेचारा दो रुपये का मजदूर ठहरा, कहाँ से दो सौ रुपये की साइकिल बात की बात में पैदा करेगा ?

पुरुषोत्तम तथा उसके साथी ठेकेदार के इशारे पर उनके नौकरों ने और भी अधिक गालियाँ दीं। नतीजा यह हुआ कि सब लोग भागते हुए दिखाई पड़े।

पुरुषोत्तम ने पद्मिनी के पास जाकर बड़े प्रेम से कहा—बेटी चलो, हम तुम्हारी इससे कहीं अच्छी शादी कराएँगे। तुम बिल्कुल न घबड़ाओ।

बात यह है कि पद्मिनी यह सब झंझट होते देखकर और अपने पिता को न लौटते देखकर रो रही थी। पुरुषोत्तम ने उसे अपने साथ ले जाना चाहा, पर वह राजी नहीं हुई। चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी।

इसी तरह कई घंटे हो गए। रात अधिक बीत चुकी थी। तब पुरुषोत्तम ने पता नहीं क्या स्वांग रचा, शायद यह कहा हो कि उसका बाप नई साइकिल पर आते हुए चोट खा गया या और कुछ, पद्मिनी पुरुषोत्तम के साथ दूसरी मोटर में बैठकर चली गई।

तब से उसका पता नहीं लगा।

जब पद्मिनी का बाप अगले दिन आया, तो उसने सारी बातें सुनीं। वह पागल-सा होकर इधर-उधर दौड़ने लगा। बाराती अभी तक जमुना किनारे ठहरे हुए थे। वह वहाँ गया। वहाँ उन लोगों ने उसकी गालियों से पूजा की, फिर वह पुरुषोत्तम के यहाँ पहुँचा, वहाँ उसे धक्के देकर निकाल दिया गया। तब वह पुलिस में गया, पर वहाँ भी कोई नतीजा नहीं निकला।

चार दिन बिना खाये-पिये दौड़-धूप के बाद एकाएक उसके दिमाग का कोई पुर्जा ढीला हो गया और वह बिल्कुल पागल हो गया। यह पागल वही पद्मिनी का बाप है, जिसे पुरुषोत्तम रोज चाय पिलाता है।

बाबू रामशरण ने मेरे चेहरे की तरफ विजय गर्व से देखा और मैं उनकी दृष्टि के सामने अपने को बौना अनुभव करने लगा।...

चेंज

एक के बाद एक रमेश, सुरेश और मीना तीनों बच्चे बीमार पड़े। रामलगन बाबू और शकुन्तला दोनों परेशान हो गये। विवाह हुए अभी सात ही वर्ष हुए थे, फिर भी दोनों को ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे बूढ़े हो गये हों। रमेश अभी छः वर्ष का था, पर अभी से रामलगन बाबू के मन में उसके भविष्य के सम्बन्ध मे बड़ी चिन्ता पैदा हुई थी। जिस तरह से वह विकसित हो रहा था, उससे रामलगन बाबू चिन्ता मे पड जाते थे। उसकी उम्र के सब लडके पहली किताब समाप्त कर चुके थे, पर वह अभी क ख में ही अटका हुआ था। खेलने जाता था तो निश्चित रूप से कही न कही से कुछ उठा लाता था। शकुन्तला इस आदत की तरफ जो सहिष्णु दृष्टिकोण रखती थी, वह भी रामलगन बाबू को नापसन्द था। कभी-कभी तो उन्हे शक हो आता था कि कही उन्ही को चिढ़ाने के लिए शकुन्तला इस प्रकार के दृष्टिकोण का प्रतिपादन तो नही करती ?

तिस पर ये बीमारियाँ, और बीमारियाँ माने केवल फिक्र और परेशानी नही, इसका अर्थ खर्च भी था। अवश्य रामलगन बाबू कोई बहुत गरीब आदमी नही थे, फिर भी डॉक्टर को पाँच, दस गिनाते समय बुरा तो लगता ही था।

दाम्पत्य जीवन में न तो अब कोई रोमांस रह गया था और न कोई रस। एक रुटीन की तरह जीवन चला जा रहा था। फिर भी कभी इस जीवन मे बड़ा रस था। एक मिनट का विच्छेद अखरता था। यदि किसी अनिवार्य कारण से एक-दूसरे से बिछुड़ते, तो इतने मोटे-मोटे पत्रों का विनिमय होता था कि डाकखाना वाले उसे बेयरिंग बना देते थे। पर इन सात सालों मे यह सारा रस-स्रोत न मालूम कहाँ डूब गया था। फिर भी कभी-कभी दस-बीस मुहूर्त के लिए पुराना रस उमड़ पड़ता था। पर कही बच्चो के विषय मे और कही घर के प्रबन्ध के विषय मे कुछ झगड़ा होता, और फिर एक दूसरे को अपना जानी दुश्मन नही तो अपरिचित अवश्य समझते थे।

ऐसे ही चलता जा रहा था। इतने मे रामलगन बाबू ने एक दिन झल्लाकर डॉक्टर से पूछा—क्यों डॉक्टर साहब, क्या बात है, हमारे बच्चे अधिक

क्यों होते हैं ? मुहल्ले में इतने बच्चे हैं, वे तो इतने बीमार नही होते।

डॉक्टर साहब नुसखा लिख रहे थे। कुछ बोले नही। केवल एक बार कनखी से रामलगन बाबू को देखा। बात यह है कि उनके इस प्रश्न का लहजा कुछ इस प्रकार का था जैसे दूध लेते समय ग्वाले को कहा जाता है—क्यों भाई, आजकल दूध बहुत पतला आ रहा है ?

जब डॉक्टर साहब नुसखा लिख चुके, तो बोले—डॉक्टर कोई खुदा नही होता—कहकर नुसखे को देते हुए खड़े हो गये, फिर बोले—आप कभी बाहर नही जायेंगे, कानपुर से कभी हिले नही, फिर लड़के बीमार न हो तो क्या हों। कभी-कभी स्वास्थ्य के लिए बाहर जाकर आबोहवा बदल आना अच्छा रहता है।

न मालूम शकुन्तला कहाँ खड़ी होकर यह बात सुन रही थी। वह उसी दिन से रामलगन बाबू के पीछे हाथ धोकर पड़ गई। मिजाज अच्छा होता, तो भी यही बात कहती, और नाराज होती, तो भी यही बात कहती। रामलगन बाबू टालमटोल करते रहे। कहाँ जायें, इतने बच्चे हैं, अकेला जाना होता तो बात और थी, दफ्तर मे छुट्टी नही मिलेगी इत्यादि-इत्यादि कहते रहे। पर शकुन्तला ने इस जोर से हमले को जारी रखा कि अन्त तक रामलगन बाबू के पैर उखड़ गये। शकुन्तला ने उनकी सारी आपत्तियों को काटकर रख दिया।

कहाँ चलना चाहिए इस सम्बन्ध में उसने सबसे पहले अपने भाई के पास इलाहाबाद जाने के लिए प्रस्ताव किया। पर शादी के बाद किसी मौके पर रामलगन बाबू का अपने साले से झगड़ा हो चुका था, तब से रामलगन बाबू उसे बचाकर चलते थे। इसके अलावा उनका साला बहुत बड़े ओहदे पर था। अवश्य रामलगन बाबू भी अच्छे ओहदे पर थे, पर साले के ओहदे के मुकाबले मे यह ओहदा छोटा था। इस कारण रामलगन बाबू ने कहा—जैसा इलाहाबाद तैसा कानपुर। इलाहाबाद की आबोहवा कानपुर से अच्छी थोड़े ही है।

इस पर शकुन्तला उनसे लड़ बैठी, और यह साबित करने की चेष्टा करने लगी कि इलाहाबाद की आबोहवा कानपुर से अच्छी है, पर रामलगन बाबू टस से मस नही हुए। अन्त मे शकुन्तला को इलाहाबाद की जिद छोड़नी पड़ी। पर पति को तैश दिलाने के लिए बोली—तुम्हे कही जाना-आना नही है, इसीलिए तुम इलाहाबाद नही जाना चाहते—कहकर चुनौती के स्वर मे बोली—तो तुम्ही कोई जगह बताओ जहा चला जाय।

इस चुनौती के फलस्वरूप रामलगन बाबू ने अपने एक रिश्तेदार के यहाँ बिजनौर मे जाने का प्रस्ताव रखा। पर अब की बार शकुन्तला ने इस प्रस्ताव पर विटो कर दिया। बोली—ऐसी जगह मे क्या जाना जो सभ्यता से दूर है। मैं तो वहाँ नही जाऊँगी—कहकर उसने मुँह बना लिया।

इस पर बात बढ़ गई। अन्त तक शकुन्तला ने कहा—सच्ची बात है, मैं

तुम्हारे किसी रिश्तेदार के यहाँ जाना नही चाहती। वे होगे रुपये वाले, पर उन्हें न कोई उठने का सलीका आता है, न बैठने का।

अतएव यह प्रस्ताव भी यही रह गया।

इस बीच में मीना फिर बीमार पड़ गई, और कुछ अधिक दिन बीमार रही। डॉक्टर कई दफे आये और गये। इस कारण फिर से आबोहवा बदलने का प्रस्ताव सामने आया और यद्यपि रामलगन बाबू आबोहवा बदलने के प्रस्ताव के बहुत पक्ष में नही थे, पर मीना की बीमारी से वे इतने घबडा गये कि उन्होंने स्वयं ही इस प्रस्ताव को सामने रखा।

सद्भाव के एक मुहूर्त मे पति-पत्नी में इस सम्बन्ध मे एक समझौता हो गया, और यह तय हुआ कि रामलगन बाबू के मित्र हरिप्रताप बाबू के यहाँ दिल्ली मे चला जाय। दिल्ली में हरिप्रताप बाबू जहाँ रहते थे, वह शहर के अन्दर गिने जाने पर भी शहर की भीड़ से दूर था, इस कारण रामलगन बाबू और शकुन्तला इन दोनों के विचार कायम रहते थे। आबोहवा बदलती थी, और साथ ही साथ शहर मे रहना भी होता था।

रामलगन बाबू ने जल्दी से छुट्टी ले ली, और सारी तैयारियों के बाद वे सपरिवार दिल्ली के लिए रवाना हो गये। हरिप्रताप बाबू को पहले से ही खबर दे दी गई थी, वे स्टेशन पर आकर इन्हे अपने बंगले में लिवा ले गये।

सचमुच स्थान-परिवर्तन के साथ-साथ सबकी तन्दुरुस्ती सुधर गई। मीना जो बीमार-बीमार-सी आई थी, आते ही अच्छी तन्दुरुस्त हो गई। सबके चेहरों पर लाली आ गई। हरिप्रताप बाबू रामलगन बाबू को पाकर बहुत खुश हुए। बोले—भई, तुम्हे पाकर बहुत दिनो बाद जी खोलकर बात करने का मौका मिला। यहाँ तो ऐसी अजीब आबोहवा है कि दफ़्तर तो दफ़्तर है ही दफ़्तर के बाहर भी वही आबोहवा रहती है। किसका क्या ओहदा है यह किसी समय भुलाता नही है, और उसी के अनुसार बातचीत करने के लहजे मे, खड़े होने के कोण में तथा हंसी के अंश में फर्क आता है।

इसी प्रकार मनोरमा ने शकुन्तला से कहा—यहाँ की स्त्रियाँ कभी एक-दूसरे से हिलमिल नही पाती। हम लोग उधर की हैं, हमे यहाँ की स्त्रियों का अत्यन्त उग्र प्रसाधन पसन्द नही आता, फिर भी जैसा देश वैसा भेप करना पड़ता है।

दोनो आपस में बहुत हिलमिल गईं। दोनों परिवारो के बच्चे भी आपस मे इतने हिल गये कि कहाँ तो इसके पहले नौकरों के होते हुए भी माँ को उनके लिए काफी समय देना पड़ता था, और अब यह हालत हुई कि बच्चों को बुलाकर उनसे भेंट करना पड़ता था। विस्तृत बंगला था, लड़के उसमे खेलते थे, और अक्सर वे उसके बाहर भी दूर-दूर तक निकल जाते थे।

जब भी मौका लगता दोनों परिवार मिलकर किसी न किसी द्रष्टव्य स्थान

देखने के लिए निकल जाते थे। छुट्टियों मे अर्थात् हरिप्रताप बाबू की छुट्टियों में पिकनिक भी होती थी।

बीसेक रोज मे दिल्ली के सारे द्रष्टव्य स्थान देख लिये गये। यहाँ तक कि कई स्थानों को दो-दो बार भी देखा गया। रामलगन बाबू और शकुन्तला का सम्बन्ध इस बीच मे बहुत सुधरा था। बच्चों की फिक्र थी ही नही, इसलिए वे एक-दूसरे की दिलजोई करते थे। रामलगन बाबू को बागबानी का शौक था, वे माली के साथ बागबानी मे लग गये। कानपुर मे उनके पास जो घर था, उसमें बागबानी के लिए एक बित्ता भी जमीन नही थी, फिर भी रामलगन बाबू ने वहाँ बीस-पच्चीस गमले लगा रखे थे। इन गमलों को लेकर पति-पत्नी में काफी चख-चख रहा करती थी, याने जब चख-चख होती थी, तो ये फूल के गमले भी उसके घी मे आग का काम देते थे। शकुन्तला कहा करती थी, यों ही जगह कम है, तिस पर इन गमलों को लाकर और जान बवाल मे डाल रखा है। इस प्रकार के झगड़ों का परिणाम यह हुआ था कि शकुन्तला मे प्रकृति तथा प्राकृतिक वस्तुओं के प्रति जो थोड़ा-बहुत स्वाभाविक प्रेम था, वह भी जाता रहा था। इस कारण यहाँ आकर लगातार पति के साथ सद्भाव कायम रहने पर भी शकुन्तला पति की बागबानी मे साथ न दे सकी। वह उतने समय के लिए घर ही मे बैठकर कोई फिल्म पत्रिका या उपन्यास देखा करती थी।

हरिप्रताप बाबू बडे कर्मठ व्यक्ति थे। वे अपनी ही चेष्टा से एक अपर डिवीजन क्लर्क से अडर सेक्रेटरी के ओहदे पर पहुँच गये थे। उन्हे जब समय मिलता तो बैठकर कुछ पढ़ते थे। पुस्तकों का उन्हे अच्छा शौक था। पढ़ें या न पढ़ें उन्हें पुस्तकें खरीदने का बहुत चाव था। हर महीने सौ-पचास की पुस्तकें ले लेते थे। शकुन्तला को अपने कालेज के दिनों के बाद एक सास्कृतिक आबोहवा में रहने का मौका मिला। उसे दिल्ली बहुत पसन्द आयी। कई बार वह रामलगन बाबू को लेकर दिल्ली में सर्वदा होनेवाली कला-प्रदर्शनियो मे गयी, पर रामलगन बाबू को कोई रस नही आया। तब वह कभी अकेली और कभी मनोरमा के साथ प्रदर्शनियों मे गयी। हरिप्रताप बाबू इन प्रदर्शनियो मे अवश्य जाते थे। कला समझें, या न समझें, वे प्रत्येक चित्र को ध्यान से देखा करते थे। बात यह है कि सहकर्मी अफसरो मे इन कला-प्रदर्शनियों के सम्बन्ध मे जब बातचीत होती थी, तो वे चुप नही रहना चाहते थे। साहित्य और कला मे उनकी दिलचस्पी का उत्स-स्थल यही था।

उस दिन नये पौधे लगाये जा रहे थे। रामलगन बाबू चाय पीकर तीन बजे से माली के साथ जुट गये थे। पौधो को इधर से उधर हटाकर लगाना था। इतने मे भीतर से शकुन्तला व्यस्त-समस्त होकर आयी और बोली—आज शिल्पी चक्र की प्रदर्शनी का अन्तिम दिन है, चलो जल्दी से तैयार हो लो, सब लोग तैयार हो रहे है।

कला-प्रदर्शनियों से रामलगन बाबू का जी भर गया था। वे सामने एकत्रित पौधों को इस प्रकार देखने लगे जैसे बच्चा उन खिलौनों की तरफ देखता है जिनके सम्बन्ध में वह यह समझता है कि वे उससे छीने जा रहे हैं। अंत में साहस बटोर-कर रुआंसा स्वर में बोले—मुझे रहने दो, नही तो ये पौधे मर जायेंगे।

शकुन्तला चेतावनी के स्वर में बोली—आज प्रदर्शनी का अन्तिम दिन है।

फिर भी रामलगन बाबू जैसे जड़भरत की तरह खड़े थे उसी प्रकार खड़े रहे। बोले—अखबार मे पढ लूंगा।

शकुन्तला ने जो यह सुना तो वह बहुत क्रुद्ध हुई, बोली—तो इसका मतलब यह है कि मैं इस प्रदर्शनी को देखने से वंचित रह जाऊँ? महीना-भर बाद तो उसी नीरस जीवन मे लौट जाना है।···

वह और भी कुछ कहती, पर रामलगन बाबू ने कड़ा होकर कहा—तुम्हे *उसमे रस आता है तुम जाओ, मुझे क्यों घसीट रही हो? तुम्हारे कलाकार जहाँ* से नकल मारते है, या ऐसी चेष्टा करते है, मैं उसी प्रकृति को देखता हूँ, और मुझे वह ज्यादा पसन्द है। तुम चाहे इस पर जो कुछ भी समझो।

शकुन्तला तेवर बदलकर बोली—कला केवल प्रकृति का अनुकरण नही है। कलाकार प्रकृति में अपनी आत्मा को भर देता है—कहते-कहते वह और भी तेज हो गयी, और बोली—तुम इन बातों को क्या समझो? खजाने मे काम करते-करते तुम्हारी आत्मा मर गयी है।

माली अब तक खड़ा-खड़ा उनकी बाते सुन रहा था, जब देखा कि मेम साहब का (दिल्ली मे प्रत्येक अफसर की बीबी मेम है) पारा चढ रहा है तो वह एक बुद्धिमान नौकर की तरह वहाँ से हट गया। न मालूम इसके बाद क्या बात हुई, शकुन्तला वहाँ से क्विक मार्च करती हुई चली गयी, और रामलगन बाबू अकेले ही बागबानी में जुट गये। थोड़ी देर में माली भी कही से प्रकट होकर उनके साथ हो गया।

शकुन्तला ने हरिप्रताप बाबू से कहा—वे तो नही जायेंगे, कह रहे हैं कि पौधे मर जायेंगे।

'अजी पौधों की भली चलाई, माली सारा काम कर लेगा। मैं अभी जाकर समझाता हूँ।'

शकुन्तला ने कुछ कडाई के साथ कहा—समझाने से कुछ फायदा नही होगा। *वे कहते है कि प्रकृति कला से बडी है, और वे प्रकृति के सेवक हैं।*

सुनकर हरिप्रताप बाबू कुछ उधेड़बुन मे पड़ गये, बोले—उधर मनोरमा भी नही जा रही है। कहती है कि घर मे आज मेहमान आयेंगे, रसोई देखना है।

शकुन्तला तेज़ी में तो थी ही, बोली—कोई बात नही। तो फिर आप सब लोग घर पर रहिये, मैं अकेली ही प्रदर्शनी चली जाऊँगी।

हरिप्रताप बाबू बोले—नही-नही, मैं तो किसी भी हालत में जाऊँगा ही, मैंने तो कभी कोई प्रदर्शनी नही छोड़ी। विशेषकर यह प्रदर्शनी तो बहुत अच्छी है।

इसी समय मनोरमा वहाँ पर आयी तो शकुन्तला ने उससे चलने के लिए कहा। पर मनोरमा बोली—यहाँ तो नित्य ही एक न एक प्रदर्शनी लगी रहती है, एक मे नही जा पायी तो कोई बात नही। कुछ मेहमान डिनर पर आ रहे है, रसोई देखना जरूरी है।

'''हम लोग घंटे-भर मे लौट आयेंगे।'

मनोरमा बोली—यही घंटा-भर तो सबसे ज्यादा जरूरी है। आप लोग जायें।

शकुन्तला बोली—वह भी नही जा रहे है।

'क्यों-क्यों? क्या बात हो गयी?'

तीनो सम्मिलित रूप मे रामलगन बाबू के पास गये, पर वे बोले—भई, मैं कला-वला को कुछ समझता नहीं हूँ, और फैशन मे पड़कर बार-बार जाया नही जाता।

हरिप्रताप बाबू मनोरमा का मुँह ताकने लगे। मनोरमा ने कहा—तो फिर आप दोनों ही चले जायें।

रामलगन बाबू ने भी खुशी से इसका स्वागत किया। हरिप्रताप बाबू और शकुन्तला कार पर बैठकर प्रदर्शनी चले गये।

मनोरमा बड़ी देर तक रामलगन बाबू की बागवानी देखती रही। बोली—मेरी भी रुचि आपसे मिलती है। मैं यह समझ नही पाती कि दिल्ली वालो की तरह खामखा प्रदर्शनियो मे जाकर चित्रों की तरफ बुद्धू की तरह घूमने से क्या फायदा। फैशन मे आकर इन बातो को करना मुझे पसंद नहीं।

एक पौधे को लगाकर पानी देते हुए रामलगन बाबू बोले—मैं जो हूँ, वही लोगो को दिखाना पसंद आता है। मैंने एम० ए० पास किया, काम भी अच्छा करता हूँ, पर सोलह वर्ष तक देहात मे रहा, उसकी छाप कहाँ जायेगी। मैं यह चाहता भी नही कि वह जाये। बारह साल से बुखार नही आया।

इसी प्रकार दोनों में बातचीत होती रही। मनोरमा ने यह कहा कि दिल्ली का जीवन उसे बडा कृत्रिम मालूम होता है। दोनो मिलकर दिल्ली वालों पर खूब हँसे। बात करते-करते रामलगन बाबू ने कहा—पर आपकी सहेली को दिल्ली का जीवन बहुत पसंद आया।

मनोरमा बोली—हाँ, कुछ अजीब बात मालूम होती है। उनको तो यहाँ की हर बात पसंद है।

जिस समय मनोरमा और रामलगन बाबू में ये बातें हो रही थी, उसी समय शकुन्तला और हरिप्रताप बाबू प्रदर्शनी मे घूम रहे थे। दोनों एक-एक चित्र को

ऐसे घूर रहे थे, जैसे वे उनके पेंदों तक देख पा रहे है। बीच-बीच में दोनों कुछ इस किस्म के मन्तव्य प्रकट करते जाते थे—यह अच्छा है, यह खूब रहा, सूझ अच्छी है, यों और अच्छा होता—इत्यादि।

दोनों साथ-साथ चल रहे थे। चलते-चलते शकुन्तला ने देखा कि हरिप्रताप पीछे रह गये और एक चित्र को खडे-खडे देख रहे है। वह कुछ क्षण अपने सामने के चित्र के सम्मुख रुकी। फिर भी हरिप्रताप बाबू नही आये। तब वह लौटकर उनके पास आयी तो देखा कि वे आत्मविस्मृत होकर 'एक पहाडी लड़की' शीर्षक चित्र को देख रहे है। शकुन्तला ने कहा—चलिये, देर हो रही है—फिर बोली—इसमें क्या ऐसी बात है जो आप इतने ध्यान से देख रहे हैं?

हरिप्रताप बाबू का ध्यान अब टूटा। बोले—आप क्या समझेंगी इसमे क्या बात है—कहकर वे समझ गये कि शायद कुछ कटु बात कह गये, इसलिए बोले—सच कहा है 'मोहे न नारि नारि के रूपा।'

शकुन्तला हँसकर बोली—तो आपको यह बहुत पसंद आयी?

चित्र के सामने से हटते हुए हरिप्रताप बाबू बोले—आपसे बहुत मिलती-जुलती है।

शकुन्तला के चेहरे पर एकाएक लाली दौड गयी। पर उसने कुछ नही कहा। उसके मन मे इच्छा हुई कि अपने चेहरे को इस समय आईने मे देखे, पर वहाँ कोई आईना न था। फिर भी उसका मन एक सरूर से भर गया। लौटते-लौटते उसका यह सरूर और भी चढा। नरम जमीन पाकर हरिप्रताप ने दो-चार बार उसकी तारीफ की, बोला—आपने सच्चे कलाकार का हृदय पाया है।

प्रदर्शनी से वे एक नामी रेस्टोरेन्ट मे गये। शकुन्तला ने कुछ प्रतिवाद भी किया, पर हरिप्रताप नही माने। दो-दो प्याली चाय पीकर वे घर लौटे। यद्यपि इस सम्बन्ध में कुछ तय नही हुआ था, फिर भी दोनो मे से किसी ने घर मे रेस्टोरेन्ट की बात का उल्लेख नही किया।

अभी छुट्टी के काफी दिन बाकी थे। कई बार ऐसे मौके लगे जब मनोरम को रामलगन बाबू से और शकुन्तला को हरिप्रताप बाबू से अलग मिलने तथा अपने हृदयो को खोलकर बातचीत करने का मौका मिला। हरिप्रताप बाबू तो अपने को एक साहसी और सज्ञान प्रेमी मानते थे, इसलिए उन्होंने तो मौका पाकर शकुन्तला का हाथ एक-आध बार पकड़ लिया। उधर रामलगन बाबू को बस एक मोह का अनुभव होने लगा, और उन्हे मनोरमा का सग अच्छा लगने लगा। पर वे स्वभाव से नम्र और भद्र थे, इस कारण अन्त तक ठीक-ठीक समझ नही पाये कि वे क्या चाहते है और उन्हे क्या चाहना चाहिए। मनोरमा उन्हे हिम्मत दिलाती रही, पर इसके फलस्वरूप वे पहले से अधिक विह्वल हो गये और बागवानी मे अधिक समय देने

लगे। अब तो वे कभी कला-प्रदर्शनी में जाते भी नहीं थे, और कोई उनसे जाने के लिए अनुरोध भी नही करता था। मनोरमा भी अक्सर किसी न किसी बहाने इन प्रदर्शनियों से जान छुड़ाती थी, और आकर रामलगन बाबू की बागवानी देखती थी।

इसी प्रकार रामलगन बाबू की छुट्टी खतम हो गयी। विदाई के दिन चारों आँसू बहाते रहे। यहाँ तक कि बच्चे भी रो दिये।

शकुन्तला अब हर हफ्ते मनोरमा को चिट्ठी लिखती है, और रामलगन बाबू हरिप्रताप को। असल में जो जिसको चिट्ठी लिखना चाहता है, वह उसको चिट्ठी लिख नही पाता। मिलने की इच्छा होते हुए भी वर्षों से मिलना न हो सका। दोनो परिवारो मे बराबर बच्चे भी होने जा रहे है।

चौर्यभूषण का भीषण भाषण

संग्रहकर्ता की प्रस्तावना

सम्पादक महोदय तो मानेंगे नही, मेरा नाम दे देंगे, पर यह लेख या भाषण मेरी रचना नही है। यह भाषण मुझे पड़ा मिला था, कहाँ पड़ा मिला था इसका ब्योरा व्यर्थ है। इस भाषण को पढ़ने पर मालूम होता है कि दिल्ली के आसपास चोरों की कोई अखिल भारतीय संस्था है, उसी के मनोनीत सभापति चौर्यभूषण (यह हमारे पद्मविभूषण की तरह कोई सम्मान मात्र मालूम होता है) का यह भाषण है जिसे वे चोर महासभा नामक किसी संस्था में दे चुके थे या देने वाले थे। बहुत प्रयास करने पर भी यह पता नही लगा कि महासभा का प्रधान दफ्तर कहाँ है और वह क्या कार्य करती है, संभव है कि कोई महानुभव (महानुभाव नही, क्यो यह भाषण में देखें) पाठक इस गुत्थी को सुलझा सकें। इस भाषण में एक मौलिकता देखने में आयी, वह यह कि भाषण के लेखक ने कोष्ठक में अपने लिए यत्र तत्र कुछ हिदायतें लिख रखी थी जैसे "यदि तालियाँ बजें तो लज्जाशील ढंग से हँस कर सर झुका देना, यदि न बजें तो पढ़ने की तेज़ी बढ़ाओ।" लेखक का मतलब स्पष्ट ही यह था कि कोष्ठकवाला अंश पढ़कर सुनाये जाने के लिए नही, बल्कि केवल अपने लिए है। फिर एक बार प्रार्थना है कि मुझे निम्नलिखित भाषण का लेखक समझकर ख्वामख्वाह साहित्यिक चोर बना कर महासभा की महानुभव बिरादरी में शरीक करके वह सम्मान न दिया जाय, जिस पर मेरा कोई अधिकार नही है। इस भाषण को प्रकाशित करना इसलिए जरूरी है कि चुनाव आ रहा है और इससे होनहार नेताओं को बहुत कुछ मिलेगा। भाषण से भी महत्त्वपूर्ण शायद कोष्ठकवाले अंश हैं।

—संग्रहकर्ता।

भाषण इस प्रकार है:

महानुभव भ्रातृवृन्द,

सब से पहले मैं यह बताऊँ कि मैं चोर महासभा के माननीय सदस्यों को सारी परम्पराओं के विरुद्ध महानुभव कहकर क्यों सम्बोधित कर रहा हूँ। अब तक

आपको महानुभाव कहा जाता था, पर मेरी तुच्छ बुद्धि में आपके अनुभाव या भाव कहाँ तक महान् हैं यह विवाद का विषय है, पर आपके अनुभवों की महानता के सम्बन्ध मे कोई दो राय नही हो सकतीं (ठहरो ताकि तालियाँ बजें, यदि नही बजतीं तो खाँस दो ताकि कोई यह न भाँप सके कि तुम अपनी प्रशंसा चाहते हो, यदि तालियाँ बजें तो मुस्करा कर इतना-सा सिर झुकाओ जिससे मालूम हो कि तुम इस प्रकार प्रशसित होने के आदी हो) इसके बाद आपने मुझे महासभा का सभापति बनाकर जो लोकोत्तर सम्मान दिया है, उसके लिए आभार स्वीकार करता हूँ। (तालियो के लिए रुको और सभा की तरफ देखो) आपने मुझे क्यों यह सम्मान दिया, जब इस बात पर सोचता हूँ तो मेरी हालत हिन्दी के उस वयोवृद्ध सम्पादक की तरह होती है, जिनसे कामशास्त्र सम्बन्धी एक पुस्तक की भूमिका लिखने के लिए कहा गया तो उन्होंने लिखा कि मुझे यह सम्मान शायद इसलिए दिया गया कि मेरी पत्नियाँ मरती रहने के कारण मैंने एक के बाद एक पाँच शादियाँ की। (रुककर लोगो को हँसने का मौका दो, कोई रसिक होगा तो हँसेगा ही, और अरसिक यदि न हँसा तो उसका मलाल क्या ? दुःख है कि महासभा नामधारी संस्थाओ मे अरसिको और काठ के उल्लू उजड्डों की सख्या अत्यन्त अधिक है।)

इसी प्रकार मै सोचता हूँ कि आपने मुझे यह सम्मान क्यो दिया तो मैं यही पाता हूँ कि मैंने अपने समय मे चोरी की सभी किस्मो मे हाथ बटाया है। (नम्रता दिखला कर हँसो नही तो लोग समझेंगे तुम मगरूर हो) मैंने सेंध डाली, ताले तोड़े, जेबें काटी और इन सब चोरियो से कही अधिक मुश्किल मैंने साहित्यिक चोरी की, अनुवादक मात्र होकर भी मै महान् कलाकार बना, लोगो की पुस्तकों की पाण्डुलिपि चुराकर अपने नाम से छापा इत्यादि इत्यादि, इसी कारण कदाचित् आपने मुझे चौर्यभूषण की महान् उपाधि दी और अब मेरे कमजोर कन्धों पर महासभा के वार्षिक सभापतित्व का बोझ डाला। नही तो मै किस लायक हूँ ? (जेब के रूमाल निकाल कर आँख पोछो ताकि लोग समझें कि तुम रो पड़ोगे, पर खबरदार, रोना मत, नही तो लोग बुजदिल समझेंगे। याद रखना कि यहाँ सब महानुभाव हैं, जरा भी कलई खुली कि लोग 'लू-लू' बोल देंगे।)

जब हम अन्तिम बार मिले थे, तब से यमुना के पुल के नीचे बहुत पानी निकला, अभी बाढ़ भी आयी थी, सारे ससार मे घटनायें बडी द्रुत गति से होती रही हैं। पंडित नेहरू के सफल नेतृत्व के कारण दूसरे देशो मे हमारी धाक बढी। उनकी रूस यात्रा से तथा महामति बुलगानिन और महानुभव ख्रुश्चेव की भारत-यात्रा से भारत और रूस का विशेषकर हम में से उठाईगीर और गिरहकट वर्ग का बहुत लाभ हुआ। पहली पंचवर्षीय योजना से कितने रोजगार बढे यह मैं नही जानता, पर इन नेताओं के स्वागत मे जो अपार भीड़ एकत्र होती रही, उससे

हमारा रोजगार चमका और हमारी कला मे चार चांद लगे। आशा है कि चीन और रूस अपने ऐसे नेताओं को निरन्तर भेजते रहेंगे, जिन्हे देखने के लिए भारतीय जनता आंख की अन्धी और गाँठ की पूरी होकर पागल की तरह दौड़ पड़े। हमारे देश की नीति चूंकि तटस्थता की है, इस कारण मैं तो यह कहूँगा कि अमेरिका को भी चाहिये कि वह अपने महापुरुषों को निरन्तर भेजता जाय, जिससे वेरोजगारी में कुछ कमी तो हो। हम 'रूसी-हिन्दी भाई-भाई', 'चीनी-हिन्दी भाई-भाई' के साथ 'अमेरिकी-हिन्दी भाई-भाई' चिल्लाने को तैयार हैं बशर्ते कि सब की पाई-पाई कमाई हमारी जेबों की खाइयों को भरे और अधिक धन की प्राप्ति से पंचवर्षीय योजना सफल हो। (यहाँ अवश्य तालियां पड़ेंगी, क्योंकि लोग और चाहे कुछ न समझें पैसों की बात खूब समझते हैं।)

इस बीच में हमारे देश के नेताओं और सरकार ने समाज के समाजवादी ढाँचे को अपना ध्येय स्वीकार किया है। यह सरासर हमारी विजय है। (जरूर तालियाँ बजेंगी, क्योकि मूर्ख और विद्वान सब यही दावा करते हैं कि वे जटिल से जटिल मामलों में अग्रणी रहे हैं और उन्होने पहले ही सब कुछ जान लिया था) कैसे यह बताने के लिए हमे इतिहास की शरण मे जाना पड़ेगा। आदिम समाज समाजवादी था। उसमे सारी सम्पत्ति सामाजिक थी। ज्योंही वैयक्तिक सम्पत्ति का उदय हुआ, त्योंही तभी से समाज मे समता लाकर उसे सन्तुलित करने के रूप में चौर्य विद्या का उदय हुआ। इस प्रकार पहला चोर ही पहला समाजवादी था। तब से कितने युग निकल गये, हमारे पूर्ववर्तियो को सम्पत्ति के मालिकों के हाथों में कितने ही निर्यातन सहने पड़े, पर हमने न समाजवाद का पल्ला छोडा और न उसके लिए जद्दोजेहद और संघर्ष त्यागा। (यदि यहाँ पर तालियाँ न बजे तो सभा की तरफ चुनौती से देखो। उस कहावत को याद रखो कि टेढी उँगली के बिना घी नहीं निकलता।)

मार्क्स नामक यवन को व्यर्थ ही मे समाजवाद के प्रवर्तक होने का श्रेय दिया जाता है। उस विचारधारा के आदिप्रवर्तक तो हम हैं। मार्क्स और आवडी के नेताओं से सहस्रो ही नही शायद एक लाख वर्ष पहले (यदि यहाँ ताली बज जाय तो ताव में आकर कह देना नही-नही दस लाख वर्ष पहले) हमारे प्रथम महानुभव अग्रज ने समाजवादी आन्दोलन का सूत्रपात किया था। हमें यह कहते हुए हर्ष होता है कि तब से अब तक हमने सैंकडों विरोधी परिस्थितियों के वावजूद आन्दोलन को जारी रखा और युग के अनुसार उसमे नये-नये परिवर्तन किये। सम्पत्ति के मालिकों ने समाजवाद की प्रगति को रोकने के लिए ताले, कुर्ते के अन्दर की जेबें, आयरन सेफ और न मालूम क्या-क्या पूंजीवादी और राक्षसी आविष्कार किये, पर हमने भी तुम डार-डार हम पात-पात इस कहावत को चरितार्थ करते हुए उनके सारे हथकंडे व्यर्थ किये और समाजवाद की दुन्दुभि बजाते रहे। (यदि

इस पर ताली न बजे तो मेज को जोर से ठोक देना क्योंकि एक फ्रेंच क्रान्तिकारी ने कहा है कि बहरों को सुनाने के लिए धड़ाका चाहिये।) अब खुशी की बात है कि हमारी सरकार ने समाजवाद को अपना लिया है, आशा है कि वह उसी मुस्तैदी, सरगर्मी और ईमानदारी से समाजवाद की सेवा करेगी जैसे हमने शताब्दियों के दौरान में किया है। (तनकर खड़े हो जाओ, ताली अवश्य बजेगी।)

भारत सरकार ने समाजवाद का काम सम्हाल लिया है, क्या इससे यह नतीजा निकलता है कि हम अपना काम बन्द कर दें? (यहाँ रुक जाओ और लोगों को 'नहीं, नहीं' कहने का मौका दो, पर अगर वे न कहें तो तुम कहो नहीं) नहीं, हर्गिज नहीं। हमें तो अपने सामने उस समाज की स्थापना का ध्येय रखकर आगे बढ़ते जाना है जिसमें किसी के पास चोरी करने लायक कुछ रह ही न जाय। मित्रो। यदि सब के पास सब चीज होगी तो चोरी करने का कष्ट भला क्यों कोई करेगा? पर सौभाग्य से या दुर्भाग्य से वह समाज अभी दूर है। (यहाँ ताली अवश्य पिटेगी।)

यहाँ मैं एक गूढ़ सैद्धान्तिक बात उठाता हूँ। वह यह कि अब हमारा और देश के एक प्रसिद्ध दल का एक ही याने समाजवाद ध्येय हो गया। केवल यही नहीं, उपाय के सम्बन्ध में भी हम एकमत हैं। प्रागैतिहासिक युग के प्रथम चोर से लेकर अति आधुनिक चोर जो ऐमिरिलिन गैस की सहायता से आमरन सेफ गला लेता है, हम बराबर अहिंसा के पुजारी हैं। सच तो यह है कि हम अपने उपाय को अहिंसा का अर्क कह सकते हैं, क्योंकि हमारे उपाय में तो हिंसा या अहिंसा की कोई जरूरत ही नहीं होती और सम्पत्ति का हस्तान्तरण हो जाता है। हमारे उपाय के मुकाबले में विनोबाजी का भूदान, ग्रामदान, श्रमदान आदि ऐसे ही हैं जैसे टैंक के मुकाबले में मुथडी खुंकरी। विनोबाजी जिस से दान लेते हैं, उसके मन में दूँ या न दूँ, इस प्रकार का एक द्वन्द्व चलता है, चाहे ऐसा दो मिनट के लिए ही हो। वे मुहूर्त बड़े घातक होते हैं। इन मुहूर्तों को देवासुर संग्राम या खुदा और शैतान की लड़ाई के मुहूर्त कह सकते हैं, पर इनमें अक्सर शैतान की आन ही रह जाती है, और दान की शान प्रकट नहीं हो पाती। पर हम तो शैतान को जीत का मौका ही नहीं देते। जब दान हो चुकता है, तभी दानी को पता लगता है कि क्या हुआ, उसे दुःख तो होता है, होना ही था, वह तो हर हालत में होता, पर शैतान को जीत का मौका ही नहीं रहता। इस प्रकार न केवल हमारा ध्येय समाजवाद है, पर हमारा साधन भी अहिंसा का सब से आध्यात्मिक रूप है। (चुनौती के रूप में सीधे खड़े हो जाओ, ताकि मालूम पड़े कि तुम्हारे रोम-रोम से यही सदा आ रही है।) बहुत ही हर्ष का विषय है कि कई पुराने तिकोनिये देशभक्तों ने हमारे उपाय की श्रेष्ठता स्वीकार की है, और वे यदाकदा सफाई के साथ उसका प्रयोग भी करते हैं, पर वे खुले आम ब्लेड, चाभियों का गुच्छा और रिंच सम्हालने के बजाय चर्खा

चलाते हैं। (इस पर अवश्य ही हँसी होगी) पर मित्रो, ये रामधुन भी करते हैं, इस कारण हम आशा करते हैं कि ईश्वर इनको कभी न कभी सन्मति देगा और ये लोग खुलकर हमारी समाजवादी बिरादरी में शामिल होंगे। (यहाँ गिलास उठाकर एक घूंट पानी पिओ जिससे श्रोताओं पर दुहरा रोब पड़ेगा, एक तो यह कि तुम श्रमदान कर रहे हो और दूसरे यह कि तुम थक चुके हो और जल्दी ही रुकोगे। हिटलर के उस कथन को याद रखो कि वक्ता के लिए श्रोताओं को बोर करना घोर अपराध है।)

अब प्रिय मित्रो, एक ही बात कहनी रह गयी, वह एक तरह से इस सम्मेलन की असली बात है। जब हमारा ध्येय समाजवाद की स्थापना यानी ऐसे समाज की स्थापना है, जिसमें सब के पास सब कुछ हो, जिससे चोरी द्वारा सन्तुलन स्थापित करने की अनुप्रेरणा ही न रह जाय, तब तो कोई माने या न माने वाम-पंथियों को हम से भाईचारा स्थापित कर लेना चाहिये। हमारी तरफ से कांग्रेस की बेरुखी समझ में आती है क्योंकि वह सत्तारूढ़ है, पर वामपंथियों की उदासीनता समझ में नहीं आती। मैं यह डंके की चोट पर कहता हूँ कि वामपंथी जब तक हम लोगों के साथ रक्षात्मक और आक्रमणात्मक मित्रता नहीं कर लेते, तब तक भारत में उनका राज्य होता नहीं दीखता। उनमें यह नैतिक साहस होना चाहिये कि एक तो वे जयप्रकाश नारायण की तरह मार्क्स नामक यवन का पल्ला छुड़ाकर भारतीय ढंग का समाजवाद अपनावें, जो एक तरफ विनोबाजी का खड़ाऊँ चुम्बन करे, साथ ही लोहिया को ललक-ललक कर ललकारे और दूसरे वे हमें अपनावें। नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय। (यहाँ ताली अवश्य बजेगी, क्योंकि साधारण लोग उद्धरण को प्रमाण मानते हैं चाहे वह कितना ही बेतुका या अप्रासंगिक हो।)

हम जनता से भी कुछ आशायें रखते हैं, वह यह कि वह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'स्थितप्रज्ञता' के महान् आदर्श पर क्यों नहीं चलती? धन साथ थोड़े ही जायगा, जैसा कि भक्त कबीर ने कहा है कि संग तो केवल सूखी लकड़ियाँ जायेंगी, सच तो यह है कि वे भी साथ नहीं जायेंगी। फिर यह किलकिल हाय-हाय कैसी? समाजवाद तो स्थापित होगा ही, नेहरू-जयप्रकाश से लेकर सारे वामपंथी और कामपंथी सभी इसकी कसम खा रहे हैं, फिर इन तालों, आयरन सेफों इत्यादि से क्या लाभ? आप इन बातों से इतिहास के पहिये को पीछे की ओर तो नहीं ले जा सकते, पूँजीवाद के बाद समाजवाद अवश्यंभावी है, फिर व्यर्थ में अपयश क्यों लेना। हर हालत में विजय तो हमारी होगी। (यहाँ एकाएक व्याख्यान समाप्त करो, यह भी एक अदा है) जय हिन्द (दायें-बायें देखकर बैठ जाओ, सभी तालियाँ बजायेंगे, अवश्य इन ताली बजाने वालों में कई ऐसे होंगे जो तुम से छुट्टी पा जाने की खुशी में ताली बजायेंगे, पर तुम्हें इससे क्या। तुम्हें आम खाने से मतलब या पत्तियाँ गिनने से। लोग तो यही समझेंगे कि तुम्हारा खूब सम्मान हुआ।)

जिन्दगी-भर लाश ढोता रहा

एक दिन मैं पैदा हुआ था। यह एक बहुत बड़ी घटना थी। जहाँ तक कि मेरा अपना सम्बन्ध है, मेरे लिए इतिहास की सब से बड़ी घटना, क्योंकि मैं लाखों वर्षों के इतिहास को अपने अस्तित्व से ही नापता हूँ, उस तरह जैसे कोई शीशे में सूर्य को देखे।

इसी तरह एक दिन एकाएक मुझे आत्मज्ञान हो गया। शायद आत्मज्ञान शब्द ठीक नही है, क्योकि इसका एक रूढ अर्थ है। पर कोई और शब्द न समझने के कारण मैं इसे आत्मज्ञान ही कहूँगा, यद्यपि असल मे यह परज्ञान है, यानी दूसरे के सम्बन्ध मे और अपने इर्द-गिर्द के सम्बन्ध मे ज्ञान है। क्या आत्मज्ञान मे परज्ञान शामिल नही?

बात इतनी-सी है कि मैं टहल रहा था और टहलते-टहलते मैंने अपने को यमुना के किनारे पाया। धीरे-धीरे चला जा रहा था। बहुत कम दिन ऐसे होते हैं, जब कोई काम नही होता है और आदमी का हाथ अपनी जेब मे होता है। इसलिए किसी प्रकार की कोई जल्दी नही थी। इतने मे ऐसा लगा जैसे मेरी शान्ति भंग हो रही है। कुछ पीछे से या पता नही कहाँ से बीच-बीच मे ऐसी आवाज आ रही थी जो शान्ति भंग करने वाली थी। पहले तो मैं समझ नहीं पाया कि काहे की आवाज है, कौन चिल्ला रहा है, क्यों शान्ति भंग हो रही है। पर थोड़ी ही देर मे पता लगा कि 'राम नाम सत्य है' की आवाज है और जब मैंने ध्यान से देखा तब पता लगा कि अर्थी आ रही है और उसके पीछे-पीछे कुछ लोग। कुछ तो अर्थी के इर्दगिर्द और कुछ ऐसे दिखायी पड रहे है जैसे लडाई छोड़ कर भागे हुए हों। मैंने विशेष ध्यान नही दिया। यद्यपि बुरा तो लगा।

पता नही क्यो इस तरह मे जब अर्थी ले जाई जाती है तो मन पर एक काली छाया न जाने किस बात की, शायद मौत की पडती है। आदमी भूल जाता है, नहीं तो यह याद करता रहता कि मुझे भी एक दिन मरना है। फिर उसके लिए जीना कठिन और असम्भव हो जाता। किसी शास्त्रकार ने खूब कहा है कि अपने को अजर-अमर जानकर विद्या और धन बटोरा जाए और अपने सम्बन्ध मे यह

समझकर कि यम ने बाल पकड़ रखे हैं, धर्म का आचरण किया जाए। हँसी आयी कि क्या सुन्दर प्रचार कार्य है। मनुष्य ने अपने प्रचार के लिए सबसे बड़ा खूँटा मृत्यु को बनाया है। राम नाम सत्य है—यह आवाज भी उसी की एक प्रतिध्वनि है, यद्यपि सच बात यह है कि राम, जिनकी हम याद करते है, खैर छोड़िये उस बात को…

इस बीच अर्थी वाली पार्टी करीब-करीब मेरे पीछे आ पहुँची थी और मैं उन लोगों को कुछ हद तक पहचान रहा था जो अर्थी के साथ थे। यह पार्टी शब्द भी कितना अद्‌भुत है। जिंदों की भी पार्टी होती हैं और मुर्दों की भी पार्टी होती है। तो जब ये लोग पास आ गये और अब इन से बचने का कोई उपाय नही रहा, तो मैंने आश्चर्य के साथ देखा कि यह तो जाने-पहचाने हैं। हमारे ही इलाके के भले-मानुस हैं।

शायद मैं उनसे बचकर चल देता, पर इनमे से एक ने मुझे पुकारते हुए कहा —"कहिए!"

वह और कुछ नही कह सके। मैंने वह प्रश्न किया, जो इस समय कोई भी व्यक्ति करता। मैंने कहा —"किसका स्वर्गवास हो गया?"

उन्होंने कहा—"अरे, आप नही जानते! ईश्वरचन्द्र जी का देहान्त हो गया!"

मैं ईश्वरचन्द्र जी को भलीभाँति जानता था। एक-दो साल से नही लगभग 14-15 साल से उनको देखता चला आ रहा था। मंझले कद और गेहुँआ रंग के व्यक्ति थे। हमेशा कुछ-न-कुछ काम करते दिखाई देते थे। अक्सर उनके हाथ मे कोई पोटली या थैली होती थी। कभी उन्हे किसी दुकान के सामने लाइन लगा कर खड़े होते भी देखता था। कभी उनको मैंने बेकार घूमते हुए, जैसे कि मैं इस समय घूम रहा था, नही पाया था। वह हमेशा कामकाज करते रहे।

मेरे परिचित ने कहा—"कल रात को उनका एकाएक देहान्त हो गया। आप को खबर नही मिली?"

मैं इस प्रश्न का अर्थ समझ गया। मैंने कहा—"खबर मिलती तो मैं यहाँ टहलता होता! मैं भी आप लोगों के साथ होता।"

यह कहकर मैं भी उन लोगो के साथ हो लिया। अपना जोश दिखाने के लिए और यह दिखाने के लिए कि मैं मोहल्ले वालों से कोई अलग नही हूँ और न मैं कोई अकड़ूखाँ हूँ, मैंने भी जाकर दो-एक बार कन्धा लगाया। रास्ता काफी लम्बा था और एक-दो साहब अलग से यह शिकायत भी कर रहे थे कि अब जमाना बदल गया है। इस तरह कन्धे पर मुर्दा ढोकर मीलो ले जाने का कोई अर्थ नही होता है। लाश ढोने वाली गाड़ी टेलीफोन करके बुला लेते और उस पर लाश श्मशान मे ले जाते। दूसरे लोग बसों या गाड़ियों से पहुँच जाते। समय नष्ट

करने में क्या होता है।

मैंने देखा कि बहुत-से लोगों की यही राय थी। ईश्वरचन्द्र जी से इनमें से किसी को विशेष प्रेम रहा हो, ऐसा मुझे नहीं लगा। फिर भी पता नहीं, मौत के डर से या जिसे लोकलज्जा कहते है उसके कारण, अर्थी के साथ चलने वालों की सख्या काफी थी। कुछ शायद यह सोचकर इस अवसर पर आये होंगे कि मुझे भी एक दिन मरना है और इसी तरह दूसरों के कन्धो पर जाना है।

जब मैं दो-तीन बार कन्धा दे चुका, तब मैंने समझ लिया कि अब मेरा कर्त्तव्य पूरा हो गया। मैं पीछे की ओर रहने लगा ताकि मेरी बारी न आये। मैं सोचने लगा कि यह ईश्वरचन्द्र क्या आदमी था। मैंने एक से पूछा—"क्यों साहब, इनकी कितनी उम्र हुई होगी?"

उस आदमी ने कहा—"67 साल की उम्र हुई थी।"

मैंने यों ही पूछा था। मुझे यह बात मालूम थी क्योंकि ईश्वरचद्र 65 साल की उम्र मे सेवा-निवृत्त हुए थे। यो जब यह नौकर थे, तब 55 की उम्र मे ही सेवा-निवृत्ति हो जाती थी। पर पता नही कैसे क्या उन्होंने धाँधली की या जादू किया कि 65 की उम्र तक नौकरी करते रहे। हमेशा यह लिखकर जाता था कि यह आदमी बहुत तजुर्बेकार है, इसके बिना काम नही चल सकता। इसी कारण उन्हें बार-बार दो-दो साल और फिर एक-एक साल का एक्सटेन्शन मिलता रहा।

ईश्वरचंद्र कोई बडे अफसर नही थे। मेरा ख्याल है, यों तो मैंने कभी पता नही लगाया, पर वह असिस्टेंट भी नही थे। हमेशा बहुत मामूली पद पर ही रहे। अपर-डिवीजन क्लर्क रहे थे। फिर पता नही कोई तरक्की हुई या नहीं हुई। कम-से-कम उन्हे देखने से तो यही पता लगता था कि कोई तरक्की नहीं हुई थी। खैर जो कुछ भी हो, एक्सटेंशन उन्हे मिलता रहा। यह पता नही कि उन्होने सरकार को धोखा दिया या सरकार ने उन्हे धोखा दिया, क्योकि बेचारे 40 साल से ऊपर नौकरी करने पर भी दो साल भी पेंशन नही भोग सके।

उन्होंने अपने लडके को उच्च शिक्षा दी थी। लड़का कोई विशेष लायक नही था, पढ़ने-लिखने मे तेज नही था, पर स्वराज्य होने ही उसे कोई मौका मिल गया और वह किसी बाहरी देश में चला गया। वहाँ से पता नही क्या डिग्री लेकर आया कि उसे फौरन अच्छी नौकरी मिल गई। यह सब अपनी आँख के सामने की बात है। बड़ी अजीब बात है कि जब उसे अच्छी नौकरी मिल गई, तब उसने अपने माता और पिता को आदर की दृष्टि से देखना तो दूर रहा, वह उन्हें कुछ घृणा की दृष्टि से ही देखने लगा। यह घृणा और भी उस समय बढ़ गई, जब उस लडके ने एक अच्छे खानदान की लड़की से शादी कर ली। लड़की भी उच्च शिक्षिता थी।

ईश्वरचन्द्र जी बार-बार यह दावा करते थे—जानते हो मेरी पतोहू एम० ए० पास है!

यह शुरू-शुरू की बात है। बाद को वह न तो अपने लड़के निरंजन की तारीफ करते थे और न बहू की। देखा गया कि लडके ने मोटर ली और लड़का तथा पतोहू दोनों शाम को हवाखोरी के लिए कनाटप्लेस या और कहीं तमाशा आदि देखने के लिए चल देते थे। और बुढ़िया खाना पकाती और बूढा जब दफ्तर से लौट कर आता, तब लाइन लगा कर राशन आदि ले आता। कुछ लोग ईश्वरचन्द्र से कहते थे—"अरे भई, अब तो आप की हालत सुधरी है, आप कोई नौकर क्यों नहीं रख लेते ?"

ईश्वरचन्द्र शायद यह समझते थे कि जो बात कही जा रही है, वह सही है। पर ऊपर से कह देते थे—"जब तक चल-फिर रहा हूँ, तभी तक जिन्दा हूँ।"

एकाध मसखरा इस पर कह देता—"तो क्या वे लोग नहीं जीते जो नौकर रखते हैं ? आपका तो आराम करने का वक्त आ गया है। आपने लडके को पढा-लिखा दिया। यह तो बुरी बात है कि लडका मोटर लेकर हवाखोरी करे और आप राशन के लिए लाइन लगायें।"

ईश्वरचन्द्र इन बातों को सुनते और घुलकर रह जाते, पर कुछ कहते नहीं थे। इसलिए पहले जहाँ वह लोगों से स्वयं मिलते थे, अब उन्होंने लोगों से मिलना बन्द कर दिया था। चार आँखें होतीं तो वह मुह फेर लेते या दूसरी तरफ चल देते।

यह घटना मेरे सामने की है। एक दिन वह बाजार में कुछ सौदा ले रहे थे और पैसे देने के बाद वह चलने लगे, तो एक मोहल्ले का आदमी रूपचन्द्र, जो उन्हीं की उम्र का था, उनसे बोला—"अरे भाई, कभी अपनी मोटर तो चढ़ाओ ! सुना है, तुमने मोटर ली है।"

ईश्वरचन्द्र ने चलना जारी रखते हुए कहा—"मोटर मेरे लडके की है। मेरी उम्र क्या सैर-सपाटे की है !"

उस आदमी को इस बात पर समझ जाना चाहिए था कि ईश्वरचन्द्र को यह विषय अप्रिय है, पर वह भी छोड़ने वाला नहीं था। उसने उनके पीछे-पीछे चलते हुए कहा—"यह उम्र सैर और आराम की नहीं है तो क्या राशन की दुकान में लाइन लगाने और सौदा लाने की है ?"

मैं भी पीछे-पीछे हो लिया कि आगे क्या बातचीत होती है। पर ईश्वरचन्द्र ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। फिर भी रूपचन्द पीछे-पीछे चलता रहा, क्योंकि उसे भी उसी तरफ जाना था। बोला—"आपने क्या-क्या कष्ट सहकर निरंजन को पढ़ाया, यह क्या मैं नहीं जानता ? सच बताइये आप एक दिन भी मोटर पर चढ़े हैं ?"

प्रश्न बड़ा ही विकट था। ईश्वरचन्द्र ने चाल तेज कर दी। पर वह उत्तर देने से बच नहीं सकते थे। इसलिए कुछ दूर चलने के बाद उन्होंने कहा—"

निरंजन की माँ मोटर में सैर करने जाती है।"

रूपचन्द्र भी बड़ा ही मुँहफट था। बोला—"वह तो इसलिए जाती होगी कि जब साहब और मेम साहब मोटर से उतर कर सैर को जायें, तब वह बच्चा रखायें या मोटर रखायें क्योंकि इन दिनों मोटरों की बड़ी चोरी होती है।"

अब की बार ईश्वरचन्द्र ने कुछ नहीं कहा। तब रूपचन्द्र ने कहा—"आप क्यों नहीं जाते ?"

"तब घर कौन रखायेगा ?"

इस पर रूपचन्द्र ने कहा—"माँ-बाप की अब यह कद्र हुई है कि एक तो बच्चा रखाये और दूसरा घर रखाये। क्या आपकी श्रीमती जी अब भी खाना पकाती है ?"

ईश्वरचन्द्र ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। दोनों अब बिछुड़ने ही वाले थे क्योंकि उनके रास्ते वहीं से अलग होते थे। मैं दोनों को जानता था। रूपचन्द्र भी पता नहीं किस दफ़्तर में काम करता था। शायद वह ईश्वरचन्द्र के दफ्तर में ही काम करता हो। पर वह बहुत पहले ही सेवानिवृत्त हो गये थे। उसके बाद उन्होंने स्वराज्य का फायदा उठाकर पता नहीं किस बात से बहुत पैसा पैदा किया था। एक मकान बनवा लिया था। मोटर भी रख ली थी। इस प्रकार वह ईश्वर-चन्द्र से बिलकुल अलग हो गये थे। पर ईश्वरचन्द्र का लड़का मोटर लेकर उनकी पंक्ति में आ गया था। शायद रूपचन्द्र को इसी का द्वेष था, या पता नहीं क्या था। जहाँ से दोनों के रास्ते अलग होते थे, वहीं दोनों रुक गये और ईश्वरचन्द्र ने कहा—"भाई, बात ऐसी है कि हम लोगों का आदर्श दूसरा था। हमारा आदर्श यह था कि सीधे-सादे जीवन व्यतीत करो और उच्च विचार करो।'

मैं सोच रहा था कि यहीं पर बात खत्म होगी। पर रूपचन्द्र छोड़ने वाला नहीं था। ईश्वरचन्द्र द्वारा पकड़े हुए कम से कम पाँच सेर वाली पोटली की तरफ इशारा करते हुए कहा—"क्या उच्च चिन्तन के लिए यह जरूरी है कि राशन की दुकान पर दो घण्टे तक लाइन लगाई जाये और फिर पाँच सेर का बोझ उठा कर बुढ़ापा बरबाद किया जाये।"

अब की बार ईश्वरचन्द्र ने पतवार रख दी। बोला—"अपनी-अपनी किस्मत ! मैं अपना भाग्य लेकर आया हूँ, आप अपना भाग्य लेकर आये हैं और निरंजन अपना भाग्य लेकर आया है।"

जब भाग्य की बात आ गयी तब सारी बात खत्म हो गई। यह एक ऐसा भारी-भरकम शब्द है जिससे हाथी का मुँह भी बन्द किया जा सकता है। इस-लिए दोनों अलग-अलग हो गये और अपने-अपने रास्ते चले गये। ईश्वरचन्द्र का चेहरा उतरा हुआ था और रूपचन्द्र ने ईश्वरचन्द्र को ऐसे देखा जैसे वह कोई छछूंदर या उससे भी कोई गया-गुजरा बदबू देता हुआ गन्दा जानवर हो।

हमारा जलूस आगे बढ़ता जा रहा था और अब शायद कहा जा सकता था कि हम आधा रास्ता पार कर चुके थे। ईश्वरचन्द्र ने काफी देखा-भोगा। कभी सुख भोगा ही नही। बाद को सुनने में आया था कि उनकी पतोहू कल्पना और लड़के मे अनबन हो गई है। पतोहू ने नौकरी कर ली थी, और लडके की किसी दूसरी युवती के साथ दोस्ती हो गई थी। या ऐसी ही कोई बात थी जिसका पूरा पता नही था।

एक दिन एकाएक सुनने मे आया कि निरंजन ने अलग रहना शुरू कर दिया है। उसकी स्त्री कल्पना उसके साथ नही थी। वह अपने ससुर के साथ ही रह गयी। यह अजीब परिस्थिति थी। इन दिनों ईश्वरचन्द्र पहली बार सख्त बीमार पड़े। शायद वह किसी को अपना मुँह नही दिखाना चाहते थे। कल्पना अपनी नौकरी पर जाती थी और सीधे घर वापस आती थी।

मैने ढूंढ़ा कि क्या निरंजन अर्थी की इस टोली मे है, जिसमे मैं हूँ। सच बात तो यह है कि मैं निरंजन को अच्छी तरह पहचानता नही था। तब मैने चुपके से एक साथी से पूछा—"क्यो भाई, निरजन कहाँ है?"

उस आदमी ने चारो तरफ देखते हुए कहा—"वह रहा निरंजन!"

मुझे कुछ आश्चर्य हुआ कि निरजन अर्थी के पास नही है, बल्कि ऐसे दूर चल रहा है जैसे उसका अर्थी से कुछ लेना-देना नही है। उसने एक बार भी कन्धा नहीं लगाया था।

मैंने एक बार ईश्वरचन्द्र की लाश की तरफ देखा और एक बार निरजन की तरफ। मुझे इस समय एकाएक यह ज्ञान हुआ कि अरे, आज तो ईश्वरचन्द्र की लाश हम सब ढो रहे है। मैंने भी दो-तीन बार कन्धा दिया, पर असली बात तो कुछ और थी। मेरा जैसे तीसरा नेत्र खुल गया था। मैंने देखा और क्षण-भर के अन्दर सारा दृश्य मेरी आँखो के सामने घूम गया जैसे बहुत जल्दी-जल्दी टेलीविजन पर मैने कोई चीज देख ली।

जब ईश्वरचन्द्र नौ बजे किसी तरह रोटी खाकर बस मे झूलते हुए सचि-वालय की तरफ जाते थे, जब वह इसी प्रकार लौटते थे और जब वह राशन की दुकान या अन्य किसी दुकान के सामने लाइन लगाते थे, तब वह अपनी लाश आप ढो रहे होते थे। तो कितनी अच्छी बात मुझे इस समय सूझ गयी! वह यह कि ईश्वरचन्द्र जब जीवित थे, तब वह अपनी लाश आप ढोते थे। उसी को लेकर वह बस मे बैठ जाते थे और पैसे गिनकर देते थे, बशर्ते कि बैठने का मौका मिल जाये। उसी लाश को ढोकर वह दफ्तर की कुर्सी पर रख देते थे और प्रत्येक मास की पहली तारीख को वह गिनकर पैसे लेते थे। फिर उन पैसों को उसी प्रकार अपनी लाश को ढोते हुए दुकानदारों और दूसरे लोगो मे बाँट देते थे—निरंजन की फीस अदा करते थे। ऐसा ही वह वर्षों करते रहे। 40 सालों से ऊपर वह

अपनी लाश ढोते रहे। अब उन्हें यह सौभाग्य मिला कि उनकी लाश को कोई और ढोये।

सचमुच ईश्वरचन्द्र को अपने गुलाम जीवन से छुट्टी मिली और सबसे बड़ी छुट्टी यह रही कि वह अपनी लाश ढोने से छुट्टी पा गये। यदि आत्मा है और आत्मा कहीं से यह तमाशा देख रही है, तो वह हंस रही होगी कि यह अच्छा तमाशा हो रहा है कि अब तक जो अपनी लाश को ढोता रहा, अब दूसरे उसी लाश को ढो रहे हैं। ठीक ही है, इसी को मिट्टी का नाम दिया गया है। सचमुच यह मिट्टी है।

हाँ, हमारे आत्मज्ञान की हद यह रही कि मुझे ऐसा लगा कि ईश्वरचन्द्र ही नहीं, करोड़ों लोग ऐसे हैं जो देखने में जिन्दा हैं पर असल में अपनी लाश ही ढोते रहते हैं। कोई-कोई ही ऐसे हैं जो जीते हैं।

श्मशान आ गया था। बड़े जोरों के साथ लोगों ने कहा—'राम नाम सत्य है।' मैंने भी जोर से कहा—'राम नाम सत्य है', यद्यपि मैं जानता था कि यह भी'''

जीवनदानी

पड़ोस में रहने से जान-पहचान तो हो जाती है। मैं अभी इतना सभ्य नही हुआ कि पड़ोस मे रहूँ और जान-पहचान न हो, पर मित्रता अक्सर नही होती। पर रघू उर्फ रघुनाथ से मेरे दोनों नाते हो गये थे। पड़ोसी के नाते उससे मित्रता भी हो गई थी, इसलिए जब उसके घर से दिन के लगभग तीन बजे उसका बड़ा लड़का सुवीर आया और बोला, "पिताजी सवेरे सात बजे गये थे पर अभी तक खाने के लिए नही आये। आप कुछ पता लगायें।"

मेरा माथा ठनका, क्योंकि दिल्ली मे आये दिन मोटर के नीचे दो-एक आते ही रहते थे। अखबारों में इनकी खबर इसलिए नही छापी जाती थी कि कही जनता मे आतंक न फैले। पर कभी-कभी एकाध खबर जाने कैसे छप जाती थी, शायद इसलिए छप जाती हो कि लोग यह न समझे कि अखबारों में झूठी बातें ही छपती है और सच्ची बात नही छपती।

जो कुछ भी हो, मैंने सुवीर से कहा, "कही काम में अटक गये होंगे। मैं अभी जीवनदानी जी के यहाँ जाता हूँ..."

कहकर मैं कपड़े पहनकर तैयार हो गया। जेब में कुछ रुपये भी रख लिए, पता नही कब क्या काम पड़े। पत्नी से कह दिया, पर उनका ख्याल था कि रघुनाथ के कारण मैं अक्सर रात में देरी से घर आता हूँ, इसलिए जाने क्या गुनगुनाई। उस अस्फुट नाद का स्पष्टीकरण कराना खतरे से खाली नही था, इसलिए मैं यह बहाना करके कि मैंने कुछ सुना ही नही, फिल्मी गीत की एक कड़ी गुनगुनाता हुआ बाहर निकल गया। सुवीर अपने घर चला गया। अलग होते समय मैंने पुचकारने के ढंग से उसकी पीठ ठोक दी।

जीवनदानी जी उर्फ सेठ रणछोड़दास के संबंध में मैं अक्सर रघुनाथ से सुना करता था। एक देशभक्त सेठ के रूप में उनकी ख्याति सुनने मे आती थी। जब जीवनदानी शब्द नही चला था, तब उनके बारे में प्राय: विदेह शब्द सुनने मे आता था।

मैं उनकी हवेली में पहुँच गया। बहुत सुन्दर बंगला था। चारों तरफ बाग

थे और बीच मे संगमरमर की बनी हुई उनकी कुटिया नाम का बंगला था, जिसे उनके नौकर-चाकर कुटिया कहते थे। जब वह विदेह ही ठहरे तो फिर क्या संगमरमर और क्या घास-फूस !

पूछता-पौछता, रुकना-रुकाता मै वहाँ पहुँचा, जहाँ रघुनाथ बैठा करता था, पर अरे वह तो वहाँ पर नही था। एक बार दिल धक से हुआ, तो क्या वह अपनी जवान पत्नी और बच्चो को अनाथ बनाकर जीवनदान कर गया ? इतने मे मेरा ध्यान एक हाल की ओर गया जिसमे से कुछ शोर उठ रहा था। तो क्या सेठजी बीमार हैं या घर मे और कोई मुसीबत आयी है ?

मैं वहा पहुँचा तो देखता क्या हूँ कि एक बहुत बड़ी मेज पर सारे हिंदी और अंग्रेजी के अखबार बिखरे पडे है और लोग उन्हे बहुत ध्यान से देख रहे हैं।

लो वह रहा रघुनाथ। इच्छा तो हुई कि दौड़कर रघुनाथ से लिपट जाऊँ कि कैसी-कैसी बुरी बातें सोच रहा था, पर वहाँ सेठानी जी मौजूद थी और एक योग्य सेनानी जिस तरह से अपनी सेना का सचालन करता है, उसी तरह से सेक्रेटरी, कलर्क तथा चपरासियो की इस विराट सेना का सचालन कर रही थी।

रघुनाथ ने भी थोडी देर मे मुझे देख लिया, पर सेठानी जी की तरफ देखकर उसने मुँह फेर लिया। मैं समझ गया कि इस समय मिलने का मौका नही है। सेठ जी तथा सेठानी जी यो तो दोनो अपने बहुत अच्छे स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थे, पर रघुनाथ के अनुसार अपने घर के अन्दर एक कुम्भकर्ण था तो दूसरी हिडिम्बा। मैं इसे अतिरजन समझता था, पर इस समय सेठानी जी के रग-ढंग को देखकर मुझे कुछ डर-सा लगा।

रघुनाथ ने पहले तो कनखी से और फिर सीधे-सीधे मेरी ओर देखा। मुझसे नही, पर सेठानी जी से बोला, "मेरे मित्र करमचन्द आये हैं, क्यो न इन्हे भी इस काम मे लगा लिया जाय। यह भी जीवनदाती जी के परम भक्तो मे हैं।"

अपने सबंध मे यह वर्णन सुनकर मैं कुछ लज्जित हुआ, क्योकि राजनीति मे पडे लोगो की तरह मै अपनी प्रशसा सुनने का आदी नही था। देखा, बिना कारण मुझे श्रेय मिल रहा है, पर मैं समझ गया कि इसमे कोई राज होगा।

सेठानी जी ने मुझे सिर से पैर तक देखा, फिर शायद यह याद करके कि मैं उनका कर्मचारी नही हूँ, चेहरे पर मधुर हँसी लाती हुई बोली, "आइये करमचन्द जी, आप भी इस पुण्य कार्य मे हाथ बटाइये। सेठजी ने अभी तक भोजन नहीं किया है।"

सारी बातें रहस्यभरी मालूम हुईं। आखिर सेठजी के भोजन से मेरा क्या सबध और ये लोग क्या कर रहे है, मुझे क्या करने को कहा जा रहा है ?

रघुनाथ ने मुझे अपने पास बुला लिया और पहले तो ऊँचे स्वर मे सेठजी की प्रशंसा की और फिर मुझसे लगभग कान मे फुसफुसाकर कहा, "आज हरामजादे

ने सबकी आफत कर रखी है। इनका कौल यह है कि जब तक सुबह उठकर अखबारों में अपना नाम नहीं देख लेते तब तक पानी नहीं पीते। अपने ही कई अखबार चलते हैं, इसमें कोई दिक्कत भी नहीं होती थी। कभी किसी पुस्तकालय का उद्‌घाटन कर रहे हैं, तो कभी भूदान पर व्याख्यान दे रहे हैं, कभी कुछ, कभी कुछ, नाम निकल ही जाता था। पर आज जाने क्या बात हुई, किसी भी अखबार में उनका नाम नहीं दिखाई पड़ा। बस इसी पर सवेरे से महाभारत मचा हुआ है। शोध हो रहा है।"

सेठानी जी का कहना है कि बीस साल में कभी ऐसी अनहोनी बात नहीं हुई, नाम जरूर छपा है, किसी को दिखाई नहीं पड़ा। इसीलिए सब लोग बिना खाये-पिये इसमें जुटे हैं, पर कहीं कोई ऐसी भी खबर नहीं निकली, जिसकी यह व्याख्या की जा सके कि यह खबर उन्हीं के बारे में है।

इसी समय सेठानी जी ने हम लोगों की तरफ देखा तो रघुनाथ इतना चिल्लाकर बोला कि सेठानी जी सुन लें, "जब सेठजी को ही भोजन नहीं नसीब हुआ, तो मुझे क्या भूख-प्यास लगती···"

इतने में सेठानी जी ने मुँह फेर लिया, तो रघुनाथ बोला, "भला यह भी कोई नौकरी है कि कोई टेम-कुटेम नहीं, जब देखो तब हुक्मनामा तैयार है। घर में लोग तो बड़ी चिन्ता में होंगे ? है न ? तभी तुम आये हो।"

मैंने कहा, "हाँ, तभी तो मैं आया। तुमने अब तक कुछ नहीं खाया, बड़ी तकलीफ हो रही होगी।"

इस पर रघुनाथ ने हँसकर कहा, "तुम मुझे इतना अहमद न समझो। अगर इतने अहमद होते तो कब का जीवनदान कर चुके होते। मैं पेटदर्द के बहाने बाहर गया और वहाँ से चार पकोड़ियाँ और एक प्याली चाय पी आया, पर जल्दी-जल्दी खाने की वजह से जीभ और मुँह कई जगह से जल गया।"

पता नहीं क्या बात हुई, एक नौकर ने आकर सेठानी जी से कुछ कहा और सेठानी जी वहाँ से तुरन्त चली गईं। जाते समय सब को छुट्टी देती गईं।

मैंने रघुनाथ से पूछा, "क्या बात है ? छुट्टी कैसे हो गई ?"

रघुनाथ बोला, "यह तो होता ही था। सेठजी के अखबार का सन्ध्याकालीन संस्करण निकल गया होगा और उनका व्रत पूरा हो गया होगा। हम लोगों को तो नाहक हलाल कर रहा था।"

अब हम लोग सेठजी के घर से निकल चुके थे। रघुनाथ बोला, "जब सवेरे जीवनदानी जी को किसी अखबार में अपना नाम नहीं दिखाई पड़ा, तो वह चाय की मेज से उठ खड़े हुए। सेठानी जी अभी वहाँ पधारी नहीं थीं। बात यह है कि एक नये ढंग का लोशन और पेस्ट आया है, जिससे मेकअप करने में कुछ देर होती है। अभी उनका मेकअप पूरा नहीं हुआ था। सेठजी ने रुआँसे होकर सेठानी जी

से सारी बात कही। मुझे उनके ख़ास नौकर ने बताया कि सेठजी बोले—मैं हमेशा गांधीजी को चन्दा देता था और अब तो मैं बिलकुल जीवनदानी हो चुका हूँ, पर ये लोग मेरा इतना भी ख्याल नहीं रखते। चोरी और बदमाशी पर अख़बारों के कई स्तम्भ रंग डाले गये हैं, पर मुझ पर एक भी शब्द नहीं और कल ही मैंने तीन-तीन फंक्शनों में भाषण दिया। इस देश में रहकर जीने से अच्छा यह है कि मैं अनशन करके मर जाऊँ।"

रघुनाथ ने कहा, "सेठानी जी इस पर बहुत नाराज हुईं और फौरन हमारे जो तीन अख़बार निकलते हैं, यानी अंग्रेजी, हिंदी और गुरुमुखी अख़बारों के प्रधान संपादक बुलाये गये। सेठजी तो पर्दे के पीछे रहे, क्योंकि वे तो जीवनदानी हैं, वे अपना प्रचार कार्य आप कैसे करते; पर सेठानी जी ने उन संपादकों को ऐसा डाँटा, ऐसा डाँटा कि इनमें से सभी के पतलून ख़राब हो गये होंगे।

"सेठानी जी ने संपादकों से कहा, 'एक तरफ़ तो यह उदाहरण है कि सब कुछ होते हुए सेठजी जीवनदानी बन गये और दूसरी तरफ़ तुम लोग हो कि सब ऐशें उड़ा रहे हो, पर तीन फंक्शनों में से एक की ख़बर भी नहीं छपी। क्या यह अख़बार सिर्फ़ चोरों और बदमाशों की ख़बरें, लड़की भगाने की बातें आदि छापने के लिये निकाले जाते हैं?'

"सब संपादकों ने रिपोर्टरों पर दोष डाला, पर सेठानी जी शान्त नहीं हुईं और अपने अंग्रेज़ी अख़बार के साठ साला बूढ़े मद्रासी संपादक शंखनादन् से बोलीं, 'तुम अपने को रिपोर्टर नहीं तो क्या समझते हो? यदि रिपोर्टर ने रिपोर्ट नहीं दी तो तुम लोगों का यह फ़र्ज़ था कि यह देखते कि रिपोर्टर ने रिपोर्ट क्यों नहीं दी। क्या तुम लोग यह समझे कि सेठजी भोग-विलास का जीवन बिताते हैं और उन्होंने सारे फंक्शन अटेण्ड करना छोड़ दिया? अगर फंक्शन अटेण्ड नहीं किया तो जीवनदान क्या हुआ? जाँच करने पर पता चला है कि उनमें से एक फंक्शन के लिए अंग्रेज़ी स्पीच तुम्हीं ने लिखी थी, फिर तुमसे भूल कैसे हुई?'

"संपादक लोग बहुत लज्जित हुए और यद्यपि संपादकीय लिखते समय वे अपने को सर्वज्ञ और सर्वोपरि समझते हैं, योजना आयोग को आर्थिक सुझाव देते तथा ध्यानचंद को हाकी खेलना सिखाते हैं, पर सेठानी के सामने उनकी हालत भीगी बिल्ली की तरह हो गयी और वे थर-थर काँपने लगे। देखने वाले का कहना है कि शंखनादन् बिलकुल रो पड़ने वाला था। दूसरे संपादकों का हाल तो और भी बुरा था। ख़ैर, जैसे-तैसे यह तय हुआ कि जो गलती हो गई सो हो गई, अब सन्ध्या समय निकलने वाले छोटे आकार के चार पृष्ठ के अख़बार में इसका प्रायश्चित्त किया जाय।

"जब सेठानी जी इस समझौते पर राजी हो गयीं, तब शंखनादन् ने कहा,

'उनका एक अच्छा-सा फोटो भी छाप देंगे।'

"इस पर सेठानी जी ने कुछ अप्रसन्नता दिखाते हुए कहा, 'वे अपना फोटो इस तरह से प्रकाशित होना पसंद नहीं करेंगे।'

"शंखनादन् ने सिर हिलाते हुए कहा, 'वह तो पसंद नहीं करते, पर जनता तो चाहती है। उनके फोटो छपने से हमारा अखबार ज्यादा बिकेगा।"

"इस पर सेठानी जी ने कहा, 'वे माया-मोह से दूर हो चुके हैं। यदि अखबार की दस-बीस प्रतियाँ ज्यादा बिक ही गयी, तो इससे उन्हे कोई मतलब नही ?' "

रघुनाथ ने कहा, "शंखनादन् ऐसा उल्लू का पट्ठा निकला कि फिर भी बात नहीं समझ पाया। सेठानी जी यह चाहती थी कि सेठजी के साथ उनका भी फोटो छपे। जब शंखनादन् किसी तरह नहीं समझता, तो सेठानी जी ने सेठजी का और अपना एक युगल फोटो शंखनादन् के सामने रखा। तब जाके शंखनादन् समझा कि सेठानी क्या चाह रही हैं। बोला—'यह फोटो तो बहुत ही अच्छा रहेगा। वाह, मैं तो इसी को खोज रहा था।'

"सेठानी जी फिर भी पूर्ण रूप से संतुष्ट नहीं हुई, बोली, 'उस बार तुमने मेरा फोटो छापा था, उसमें मेरी उम्र बहुत ज्यादा मालूम होती थी, कहीं अब की बार फिर वैसा ही न हो जाय। और मेरा फोटो छापोगे ही क्यों ? तनख्वाह तो तुम्हें सेठजी देते है।'

"शंखनादन् इस पर समझ गया और बोला, 'हाँ, हाँ, वह गलती तो हो ही गयी थी, पर यह गलती तो फोटोग्राफर की है। खैर, फोटोग्राफर जो गलती करे, उसे आर्टिस्ट सुधार सकते हैं। आप देखियेगा, अब की कैसा फोटो आता है। आप सुरैया से अच्छी दिखायी पड़ेंगी।'

"यह सब कह-सुनकर शंखनादन् तथा उसके सहकारी चले गये, फिर भी नाम की खोज जारी रही।"

रघुनाथ ने यह सब बताकर कहा, "इसी उल्लूपने मे तीन बज गये। यों रोज सन्ध्याकालीन संस्करण चार बजे निकलता है, पर आज मालूम होता है अभी निकला।"

मैंने रघुनाथ से पूछा, "सेठजी ने भूदान में कितनी जमीन दी ?"

रघुनाथ बोला, "अखबारों मे 170 एकड़ आया था, पर असल में 17 एकड़ था। रिपोर्ट देते समय यह सोचकर सिफर बढा दिया गया था कि कहीं पकड़ा जायेगा तो यह छापे की गलती मानी जायेगी।"

मैंने पूछा, "तो जीवनदानी जी ने यह सिफर खुद बढवाया था ?"

रघुनाथ बोला, "नहीं, वह तो माया-मोह से परे हो चुके हैं, इसलिए जो काम होता है, सब सेठानी जी की तरफ से होता है।"

"तो एक तरह से सेठानी जी शिखण्डी है ?"

रघुनाथ बोला, "नहीं, मिली भगत है।"

"पर यह किया कैसे गया?"

रघुनाथ हँसकर बोला, "मैंने अखबार के लिए रिपोर्ट तैयार की, तो सेठानी जी ने वह रिपोर्ट देखनी चाही। उन्होंने कुछ कहे बिना 17 की जगह 170 कर दिया और फिर बोली, 'तुम लोगों को कुछ तमीज नहीं है। इतने दिन हो गये, पर काम करने का सलीका नहीं आया।' "

मैंने कहा, "दिल्ली में तो 17 एकड़ भी कम नहीं होते।"

रघुनाथ रहस्यजनक रूप से बोला, "कम तो नहीं होते बशर्ते कि उसका अस्तित्व हो।"

मैंने कहा, "क्या माने?"

रघुनाथ बोला, "माने यह कि असल में उन्होंने कुछ भी नहीं किया। जमुना के किनारे कुछ रेतीली जमीन है, जिसकी रेत के कारण कभी किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। उसमें एक भी पेड़-पौधा नहीं है, हाँ मौसम के वक्त कुछ तरबूज जरूर पैदा किये जाते हैं। तरबूजवाला सेठजी को लगान के रूप में कुछ तरबूज दे जाता है। न पटवारी के कागज पर इस जमीन का अस्तित्व है न और कहीं, हाँ सेठानी जी हमेशा यह दावा करती रहीं कि जमुना के दोनों पार सेठजी के बाप-दादों की जमींदारियाँ थीं।"

मैंने पूछा, "भई, फिर भी यह बहुत बड़ी बात है, इतने बड़े सेठ होकर तीन बजे तक भूखे रहे। कुछ भी हो, आदमी प्रण का तो पक्का है। प्रण गलत ही सही।"

रघुनाथ बोला, "अरे भई किस दुनिया में हो? ये लोग तो फल का रस पीने को पानी पीना ही मानते हैं। न जाने सन्तरों के कितने गिलास पी चुके होंगे। सन्तरे के एक गिलास में 200 कैलरी होते हैं।"

सारी बातें सुनकर मैं दंग हो रहा था। मैंने पूछा, "फिर इनका इतना नाम कैसे हुआ? जिस काम में देखो वे जरूर उद्घाटन करने, सभापतित्व करने या व्याख्यान के लिए बुलाये जाते हैं।"

रघुनाथ बोला, "हाँ, वे बेशक बुलाये जाते हैं। बात यह है कि सारी दुनिया भड़ियाघसान है और असली बात यों है कि शंखनादन् अंग्रेजी बढ़िया लिखता है..."

मैंने पूछा, "हिंदी के व्याख्यान तो तुम लिखते हो न!"

रघुनाथ की बाछें खिल गयी, बोला, "अरे मैं तो निमित्त मात्र हूँ। उनके व्याख्यान तो जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं।"

"क्या मतलब? तुम तो बड़ी अजीब बात कहते हो?"

रघुनाथ बोला, "डरो मत। मैं यह कह रहा हूँ कि मैं जहाँ तक हो सके

जवाहरलाल नेहरू के व्याख्यानों को उनके व्याख्यान मे घुसेड देता हूँ। हाँ, उसके साथ कही-कहीं हिन्दू सभ्यता और संस्कृति डाल देता हूँ," कहकर रघुनाथ हँसा। फिर बोला, "सेठजी मेरे लिखे हुए व्याख्यानों को बहुत पसंद करते है। मेरे लिखने के बाद छपते समय संपादकगण उसमे जहाँ-तहाँ पच्चीकारी कर देते हैं। फिर पहले पृष्ठ पर उनका व्याख्यान छपता है, डबल कालम या कभी-कभी पूरे पेज की सुर्खी लगायी जाती है। फक्शन वाले तो इसलिए बुलाते है कि उनके जाने पर अखबार मे उनकी संस्था के विषय मे कुछ छप तो जाता है, और इत्यादि इत्यादि ने भाषण किया की सूची मे संस्था के नेताओं का नाम तो छप ही जाता है। वे बेचारे इतने ही से संतुष्ट हो जाते है।"

अब घर करीब आ चुका था। मैंने पूछा, "सेठजी इतना कष्ट क्यों करते है? मिले हैं, धन है। अपना आनद करें। रोज-रोज की यह मुसीबत क्यो मोल लेते है?"

रघुनाथ बोला, "अरे तुम यह भी नही जानते? वे ससद के सदस्य होकर मत्री बनना चाहते है, इसीलिए उसकी साधना कर रहे है। यों तो ससद के कई सदस्य उन जैसो की पाकेट में हैं, पर स्वयं राज्य करना कुछ और है।"

हम लोग घर के सामने पहुँच गये। मैं अपने घर जाना चाहता था, पर रघुनाथ बोला, "चलो तुम भी चाय पी लो, फिर जाना।"

रघुनाथ की पत्नी ने हम दोनो का बडे तपाक से स्वागत किया। पता नही कैसे यह खबर पहले ही पहुँच चुकी थी कि रघुनाथ सही-सलामत है। इस बीच मे कुछ पकवान भी बन चुका था। मैंने कुछ थोडा-सा जलपान करने के बाद घर जाना चाहा तो रघुनाथ बोला, "तुम कहते थे कि सेठजी मुसीबत क्यो मोल लेते है, सो सचमुच एक बार छपास और ख्याति के मर्ज के कारण उनकी मुसीबत बन गयी थी। सेठजी किसी फंक्शन में बैठे हुए थे। वह शायद राष्ट्रपति द्वारा सनद वितरण का उत्सव था। सेठजी पहली कतार मे बैठे थे। फोटो की रीलें तैयार हो रही थी। सेठजी ने शायद यह समझा कि यहाँ तो राष्ट्रपति की ही रीलें तैयार हो रही है, वह कुछ उदास थे, पर इसी रील मे उनकी भी एक तस्वीर आ गयी, जिसमे वे एक पंजाबी लडकी को बुरी तरह घूर रहे थे और वह लड़की भी उन्हे देखकर मुस्करा रही थी। अगले पखवारें सेठानी जी कोई सिनेमा देखने गयी, तो उसमें यह रील दिखायी गयी। बस फिर क्या था, वह उठकर चली आयी और उन्होंने सेठजी को वह गालियाँ सुनायी और उनसे वे रिश्ते स्थापित किये जो जीवविज्ञान और मनोविज्ञान दोनों दृष्टियों से असंभव थे। उदाहरणस्वरूप उन्होंने सेठजी को साला और ससुर कहा। वह लड़की हमारे एक अखबार में नौकर थी, वह फौरन निकाल दी गयी। यही नही, चालीस वर्ष से कम की जितनी स्त्रियाँ थी, सबको एक महीने का नोटिस दे दिया गया और जब इस पर शोर मचा,

तो सेठजी ने बयान में कहा, 'कम उम्र की स्त्रियाँ दफ्तरों मे गड़बड़ी मचाती हैं और उनकी वजह मे काम मे बाधा पहुँचती है।'

"अब सेठानी बराबर सेठजी पर निगरानी रखती हैं और कोई भी देवी किसी भी नाते उनसे अकेले मे मिलने नही पाती।

हम लोग इसी प्रकार सेठजी के जीवनदान की लीलाओ पर बतकही करते रहे। पर बीच-बीच मे रघुनाथ के लड़के चाचाजी, चाचाजी कहकर हमारा ध्यान बँटा लेते थे। इन लड़कों ने बातचीत का लुत्फ खतम कर दिया। मैं उठा, उधर मेरी पत्नी भी सेठानी से कुछ अच्छी नही थी। इसलिए अधिक देर बैठना उचित नही समझा। मैं बाहर जा ही रहा था कि रघुनाथ के दस वर्षीय लड़के राहुल ने एक अखबार दिखाते हुए कहा, "चाचाजी,यह तो बताइये कि यह कौन-सा ऐक्टर है ?"

मुझे ऐक्टरों की अच्छी पहचान नही थी। मैंने कहा, "मुझे तो दिलीपकुमार और मीनाकुमारी मालूम होते हैं, अपने पिताजी को दिखलाओ।"

रघुनाथ ने अखबार लेते हुए कहा, "अरे यह तो हमारे सेठजी और सेठानी जी हैं।"

मुझे अपने अज्ञान पर इतनी शरम आयी कि मैं जल्दी से बाहर निकल गया। फिर भी मन में यह गुत्थी बनी ही रही कि इस तरह का बनावटी फोटो छापने के कारण शखनादन् की प्रशंसा की जायेगी या भर्त्सना की जायेगी। पर तरबूज का खेत, 17 का 170 बनाना आदि याद आया तो मैं किसी नतीजे पर नही पहुँच सका। जब मैं घर पहुँचा तो पहले से जगतगति को कहीं अधिक समझने लगा था।

तरक्की

इस कहानी के लिए उस स्थान का नाम राजपुर रख लिया जाये। राजपुर एक समृद्ध शहर है और वहाँ के लोग अच्छे खाते-पीते हैं। अच्छे खाते-पीते शब्द का यों ही लौकिक अर्थ में प्रयोग किया गया है। नही तो आजकल अच्छा खाता-पीता कौन है!

जो अपने लिये समझता है कि वह अच्छा खाता-पीता है, वह दूध मे पानी, आटे मे न मालूम क्या-क्या, घी में चरबी या वनस्पति, चावल में कंकड़, मुर्गी के अंडो की जगह कछुए के अंडे और न मालूम क्या-क्या खाता है। खरे पैसे देकर भी खोटा माल पाना यह राजपुर के लिए क्यों सर्वत्र एक साधारण बात है। यह न समझा जाये कि खाने-पीने की चीज़ों में मिलावट करने वाले लोगो के विरुद्ध कोई कानून नही है, या उनके अपकर्मो से लोहा लेने के लिए कोई विभाग नही है। नहीं, ये सब बातें है, सख्त से सख्त कानून है, जिसके अनुसार मिलावट करने वाले का माल जब्त हो सकता है, उस पर जुर्माना हो सकता है, उसे जेल में भेजा जा सकता है। यदि उस व्यवसाय मे लाइसेन्स की जरूरत है, तो सबसे पहले वह जब्त की जा सकती है।

पर ये कानून किताबों में बन्द पडे रहते हैं। इस काम के लिए जो विभाग है, पता नही वह क्या करता रहता है, और राजपुरवासियों का स्वास्थ्य बिगड़ता चला जाता है, बीमारियाँ बढ़ती जा रही हैं, डाक्टरों के पौबारह है, क्योंकि अद्भुत है यह समाज-रचना, जिसमे जो रक्षक है, वह भक्षक बनकर बडे मजे में गुजर कर रहा है। उसके घर मे घी के चिराग जलते हैं, भले ही दूसरों का सत्यानाश होता हो।

इसी राजपुर मे मिस्टर सक्सेना किसी ऊँचे पद पर आये और उनके जिम्मे वहाँ का वह विभाग भी पड़ा, जिसका काम खाने-पीने की चीजों की देखभाल था। इस विभाग मे डाक्टर थे, रासायनिक विश्लेषण करने वाले थे, क्लर्क थे, चपरासी थे, याने सभी कुछ थे, जिनसे विभाग विभाग बनता है। फाइलें इस मेज़ से उस मेज पर चलती रहती थी, इसलिए कोई यह नही कह सकता कि इस विभाग के लोग

हरामखोरी करते थे। बड़े-बड़े जटिल प्रश्न पैदा किये जाते थे। उनपर लम्बे और लच्छेदार मन्तव्य लिखे जाते थे, और टाइपिस्ट उन्हे टाइप करते-करते तथा चपरासी उन्हे इस मेज से उस मेज तक पहुँचाते-पहुँचाते मरे जाते थे। कम से कम इन लोगों का यही कहना था।

सक्सेना अभी युवक मात्र थे। स्वतंत्रता के बाद आई० सी० एस० मे भर्ती हुये थे, आदर्श विचार रखते थे और गत तीन वर्ष तक फाइलों से लडते हुए भी अपना जोश कायम रख सके थे। वे चाहते थे कि भारत जल्दी उन्नति करे। आते ही सक्सेना ने अजीब-अजीब प्रश्न पूछने शुरू किये, याने ऐसे प्रश्न पूछे, जिन्हे किसी ने कभी पूछा नही था। दो-चार प्रश्नों पर ही प्रशासन-कर्मचारी के कान खड़े हो गये। उसने पहले दो-तीन प्रश्नों का तो उत्तर गोलमोल ढंग से दिया। पाँचवे प्रश्न पर उसने ब्रह्मास्त्र चलाया—साहब, ऐसा ही होता है।

सक्सेना के चेहरे पर जरा झुंझलाहट दृष्टिगोचर हुई, बोला—हम ऐसा नही चाहते। क्या आप नही समझते कि हमारे देश को तरक्की करनी है? अब तो हम स्वतंत्र है न?

प्रशासन-कर्मचारी पुराना घाघ था। वह छब्बीस साल से सरकारी नौकर था। उसने सुन तो रखा था कि भारत स्वतंत्र हुआ है, देखा भी था कि इमारतो पर एक नये ढग का झंडा फहरा रहा है, पर यह तो नही सुना था कि और बातो मे भले ही परिवर्तन हो, फाइले फाइले ही रहेगी, ये झडा तो नही है जो बदल जायेंगी। उसने फिर एक बार कहा—हुजूर, जब से महायुद्ध के समय यह विभाग खुला, तब से यह इसी ढंग से चल रहा है। मुझे छब्बीस साल का तथा अन्य कुछ विभागों का भी तजर्बा है, मैंने तो सर्वत्र इसी ढंग से काम होते देखा है।

प्रशासन कर्मचारी ने 'छब्बीस साल' पर बहुत जोर दिया, मानो उसने दूसरे ढग से कहा—अजी जाने भी दो, तीन साल की कुल सर्विस है, तुम्हें क्या मालूम आटा-दाल का भाव? स्वतंत्रता हुई सच है, अग्रेज चले भी गये, नही तो तुम्हारे ऐसों को कौन पूछता?

मिस्टर सक्सेना ने कुछ सोचकर कहा—अच्छा मैं देखूँगा कि क्या सम्भव है।

प्रशासन कर्मचारी ने फाइलों के पहाड की ओर इगित करते हुए कहा—जो चाहे सो देखिये, हमारे यहाँ आपको सब फाइलें अप टू डेट ढंग से रखी हुई मिलेंगी।

सक्सेना बोले—पर मैं फाइलो को देखना नही चाहता, मैं तो दुकानो, होटलो, रेस्टोरेन्टों को अपनी आंखों से देखना चाहता हूँ।

उसी दिन सारी दुकानो, होटलों और रेस्टोरेन्टो मे यह खबर बिजली की तरह फैल गयी कि एक काइयाँ अफसर आया है, है तो वह नौजवान, पर उसका पेट भारी है। हम लोगो ने इस विभाग के लिए जो तीन हजार रुपये मासिक रखे हैं, मालूम होता है यह अकेला ही उतना हडपना चाहता है।

लाला भानुमल ने इस पर कहा—कोई हँसी-खेल थोड़े ही है? हमने मंत्रियों को चुनाव लड़ाया, संसद और विधान सभा में लोगों को भेजा, उनके लिए खर्च किया, सब तरह की हीं कुर्बानियाँ की, यह सब इसलिए थोड़े ही किया कि कल के लौंडे आकर हमें धमकियाँ दें। हम तीन हजार से ज्यादा एक कौडी नहीं देंगे। इसमे से सक्सेना का हिस्सा उतना है, जितना कि उसे सरकार से मिलता है, फिर यह क्या तूफाने-बदतमीजी मचा रखी है?

लाला भानुमल कोई मामूली आदमी नहीं थे। जब कोई मंत्री आता था, तो लाला भानुमल उसके सम्मान में एक पार्टी अवश्य देते थे। यदि यह कहा जाये कि वे इस राज्य के एक स्तम्भ थे, तो अत्युक्ति नहीं होगी। वे राजपुर व्यापारी संघ के सभापति थे, और राज्य व्यापारी सघ के उपसभापतियों में से थे। बात की बात में एक शिष्ट मण्डल बना और सक्सेना से मिला।

लाला भानुमल ने अपने सेक्रेटरी के द्वारा प्रस्तुत व्याख्यान पढते हुए ही कहा—मैं पुराने ढर्रे का व्यक्ति हूँ, मैं तो इसमे विश्वास करता हूँ कि धीरे-धीरे दौडो। व्यापारी समाज के प्राणस्वरूप हैं। यदि व्यापारी नहीं रहेंगे या उन्हें लाभ नहीं होगा, तो समाज की हानि अवश्यम्भावी है। राजपुर के व्यापारी नई परि-स्थिति को भलीभाँति समझते है, वे बराबर प्रगति के साथ रहे, वे चुनावों में देश-सेवकों का साथ देते रहे, पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि व्यापारी उचित लाभ छोड़ दें। यदि वे ऐसा करेंगे, तो फिर जियेंगे कैसे? और यदि वे नहीं जियेंगे, तो समाज कैसे जियेगा?

सक्सेना को यद्यपि अभी नौकरी करते हुए तीन ही साल हुए थे, पर वे व्यापारियों के हथकंडों और उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों से परिचित थे। वे सारी बातों को मानो अनसुनी करते हुए बोले—जनता को इस समय केवल एक ही बात चाहिये। वह यह कि उसे सस्ते दामों पर शुद्ध और पवित्र खाना मिले। यदि वह आटा मोल ले रही है, तो वह इतना ही चाहती है कि उसे आटा मिले न कि और कुछ। यदि वह घी ले रही है, तो वह चाहती है कि घी मिले न कि चर्बी या अन्य कोई घटिया चीज।

इसी ढंग पर सक्सेना ने लम्बा भाषण दिया। सुनकर व्यापारी मण्डल के सदस्य एक-दूसरे से अर्थपूर्ण दृष्टि-विनिमय करते रहे। लाला भानुमल क्रोध के मारे थर-थर काँपते रहे, पर चुप रहे। जब शिष्ट मंडल लौटकर व्यापारी-मंडल के दफ्तर में आया, तो सब लोग एकसाथ सक्सेना को गालियाँ देने लगे। लाला भानु-मल बोले—जनता, जनता जनता! कान के कीड़े निकाल डाले। यदि हम व्यापारी लोग न होते, और गांधीजी को चन्दा न देते, तो जनता क्या कर लेती? अब भी यदि हम चुनावों में मदद न दे, तो चुनाव कैसे जीते जा सकते हैं? सक्सेना देखने में तो तरुण मालूम होता है, पर है बड़ा घाघ। मालूम होता है कि हजार दो हजार

और ले मरेगा।

व्यापारियों की गुप्त सभा हुई, और यद्यपि पहले अकड-फूं की बातें हुईं, पर बूढ़ों की सलाह पर एक हजार रुपया बढ़ाने की बात हुई। दूत दौड़ने लगे, और सक्सेना के कान मे बात पहुँचायी गयी। सक्सेना पहले तो समझे नही कि मामला क्या है, पर जब समझे, तो बहुत नाराज हुए। अब तो सक्सेना दुकान-दुकान का दौरा करने लगे, और होटलो के पिछवाडे जाकर सूँघने लगे। चार-छः दुकानदारों और दो-चार होटल वालो के विरुद्ध मुकदमे दायर कर लिये गये, शहर में तहलका मचा रहा। लाला भानुमल प्रान्त की राजधानी मे दौड़े गये, और अपने यहाँ से जो साहब अभी हाल मे एक उपचुनाव मे चुने गये थे, उनके ज़रिये से उस विभाग के मंत्री से मिले और मिस्टर आई० सक्सेना के अन्धेर खाने के विरुद्ध शिकायत करने लगे। मंत्रीजी बडे घुटे हुए थे, पर बनावटी हँसी हँसकर बोले—शिकायत क्या है ?

लाला भानुमल बोले—जब तक अंग्रेज रहे, तब तक घूस का बाजार गरम रहा। जब से स्वराज्य हुआ, तब मे यह आफत दूर हुई। अब यह सक्सेना आया है, तब से अन्धेर मचा रखा है। रोज दो-चार चालान कर देता है। पाँच हज़ार रुपये माहवार माँगता है।

मन्त्रीजी का माथा ठनका, बोले—अच्छी बात है। जिला मजिस्ट्रेट से मिलकर रँगे हाथों पकडवा दिया जाये। नोट पर चिह्न बनवा दीजिये, फिर उन्ही नोटो को उसकी जेब से बरामद करवा दीजिये।

लाला भानुमल ने देखा कि इस प्रकार कुछ बात नही बनेगी। बोले—साहब, वह बडा चलता पुर्ज़ा है, उसे हम पकड़वा नही सकते। वह अपने विश्वासपात्र गुडो के ज़रिये घूस माँगता है।

तब मन्त्रीजी बोले—जाँच होगी।

जाँच से भी काम नही बनना था, इसलिए लाला भानुमल बोले—यदि आप मुझपर एतबार नही करते, तो इनमे पूछिये—कहकर उन्होंने अपने यहाँ के हाल मे चुने गये विधान सभा के सदस्य की ओर इशारा किया।

मंत्रीजी ने कुछ झुंझलाकर साथ ही हँसते हुए (यह कला एक नई कला है) बोले—आखिर नियम आदि तो हैं ही, कुछ समय लगेगा।

लाला भानुमल निराश होकर राजपुर लौट आये। एक हज़ार की रकम और बढाई गयी और दूत दौडने लगे। रकम बढाने मे जो झेंप थी, उसे लालाजी ने यह कहकर मिटाया—साला एक बार राज़ी तो हो जाये, फिर साले को रंगे हाथों न पकडवा दिया तो मेरा नाम भानुमल नही।—कहकर उन्होंने अपनी मूँछ मरोड ली।

दूत अब की बार भी असफल रहा। तब लालाजी फिर राजधानी दौडे, और

हाल में चुने हुए सदस्य पर बुरी तरह बरस पड़े—आखिर इसी दिन काम आने के लिए हमने आपको चुना, पर मंत्रीजी के सामने तो आप गूँगे हो जाते हैं। ऐसे कैसे काम चलेगा ? आखिर आपको आगे भी चुनकर आना है या यही अन्तिम बार है ?...

अचिंतराम सुनकर ताव में आ गए, और उस दिन उन्होंने विधान-सभा में अपना क्रोध उगल दिया। उस मंत्री के विरुद्ध कोई बात पूछी गयी, तो अचिंतराम ने ढेर के ढेर पूरक प्रश्न पूछ डाले। मंत्रीजी ने बाद को अचिंतराम को बुलाया, तो वह बोला—आप तो कुछ सुनते ही नहीं। एक रिश्वत लेने वाला अफसर हमारे यहाँ मनमानी कर रहा है, और आप सुनते ही नहीं।

मंत्रीजी बोले—मुझे तो जाँच करने पर कुछ और ही पता लगा है। राजपुर के व्यापारी अब तक घूस देकर मनमानी करते रहे, सक्सेना के सामने उनकी दाल नहीं गली। इसीलिए यह हल्ला है। अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ ?

अचिंतराम को सारी बात मालूम थी, पर उसे तो भरे हुए ग्रामोफोन की तरह एक विशेष रिकार्ड बजाना था, बोला—चोर-चोर मौसेरे भाई। जिनसे आपने जाँच कराई, वे भी सक्सेना के भाई-बन्द होंगे।

'मैंने कई जरियों से जाँच कराई।'

'तो आप उसकी बदली क्यों नहीं करा देते ?'

'देखूँगा, क्या कर सकता हूँ।'

सक्सेना को भी इन सारी बातों की भनक लगी, तो वह भी एक दिन मंत्रीजी के पास पहुँचा, और सारी बात समझाकर बोला—मुझे राजपुर के व्यापारियों ने चुनौती दी है कि वे मेरा तबादला कराकर ही मानेंगे।

मंत्रीजी ने रुखाई के साथ कहा कि यह युग जनयुग है, जो भी बात करे जनता के दृष्टिकोण को समक्ष रखकर करे।

सक्सेना ने समझाकर कहा—लाला भानुमल और उनके साथी जनता के दुश्मन हैं, ये कब से जनता के लोग हो गये ? गेहूँ के बदले इमली के बीज और आम की गुठली का आटा, घी के बदले वनस्पति आदि न मालूम क्या-क्या फरेब ये करते हैं। फिर घूस देना चाहते हैं।

मंत्रीजी ने कहा—हम तो आपकी बात कतई समझ नहीं पाते। हम इतना जानते हैं कि हमारी आँखों में सब बराबर हैं, हमें सबकी सेवा करनी है। धन्यवाद।

सक्सेना इतना-सा मुँह लेकर लौट आया, पर उसने दुकानों और होटलों का मुआइना जारी रखा। लाला भानुमल अचिंतराम की नाक में दम करते रहे, और अचिंतराम मंत्रीजी के। अन्त में मंत्रीजी परेशान हो गये और उन्होंने राजपुर से सक्सेना का तबादला कर दिया। सक्सेना हुक्मनामा लेकर सीधा मंत्रीजी के

पास पहुँचा, और बोला—देखिये, व्यापारियों ने चुनौती दी थी और आपने उनकी बात रख ली।

मंत्रीजी अब की बार रुखाई से नहीं प्रेम से मिले, बोले—मालूम होता है तुमने पूरा हुक्मनामा नहीं पढ़ा। तुम्हारा तबादला जरूर हुआ है, पर साथ ही साथ तरक्की हुई है।

'तरक्की ?'—सक्सेना ने पूछा और कुछ न बोल सका।

इस प्रकार जनयुग की आवश्यकताएं पूरी हो गयी।

दुनिया कैसे चल रही है ?

कमला ने अपनी बहन राधा को सिर से पैर तक देखा, फिर बोली—तुम यहाँ क्यों आयी हो ?

राधा ने सिर नीचा कर लिया, फिर बोली—वह मर गये, तो अब मैं कहाँ जाती ? अब एक तुम्ही तो हो ।

कमला का चेहरा कुछ कोमल पड़ा, पर फौरन ही नाराज होती हुई बोली —जब तुम पाँच साल पहले बिलपटन-कम्पनी के उस एजेण्ट के साथ भाग गयी थी तब तुमने किससे पूछा था ? उस समय तो बाबूजी भी मौजूद थे, उन्ही से कुछ पूछा होता या बड़ी बहन के नाते मुझसे ही कुछ पूछा होता, पर उस समय तो तुम बिलकुल स्वतन्त्र थी ।

राधा ने कहा—मैंने कब यह सोचा था कि वह मर जायेंगे । मौत पर तो किसी का वश नहीं है ।

कमला बोली—जब भाग ही गयी हो तो बाकायदा उससे शादी ही कर ली होती, तब तो यह हालत न होती कि उनके मरते ही रिश्तेदारों ने तुम्हें सब कुछ लेकर निकाल बाहर किया । कम से कम अपना स्वार्थ तो सोचा होता ।

राधा बोली—दीदी, तुम मुझे क्या बता रही हो, मैं स्वयं ही इस बात को महसूस कर रही हूँ । पर अब सोचने से क्या होता है ? गलती तो हो ही गयी ।

कमला ने राधा को बैठक में बैठने के लिए कहा और चाय के साथ कुछ मामूली खाने की चीज देती हुई बोली—अभी थोड़ी देर में वह आयेंगे तब अन्तिम निर्णय होगा। मैं अब स्वतन्त्र कहाँ हूँ । मैं तुम्हें मदद करना चाहती हूँ, पर इस कारण उनसे झगड़ा नहीं कर सकती ।

राधा समझ गयी कि उनसे मतलब पति से है ।

राधा ने कहा—मैं चाय पीकर नहा-धो लूँ, इसमे तो कोई बात नहीं है !

कमला ने नहाने का कमरा दिखला दिया और थोड़ी ही देर में राधा नहा-धोकर बढ़िया साड़ी पहन कर बाहर निकल आयी । कमला ने एक बार राधा को देखा तो बचपन की याद आ गयी । स्नेह ने जोर मारा, पर उसने अपने को

रोका, बोली—तुमको इस रूप में देखकर वह न जाने क्या कहें।

—क्यों ?—राधा ने अदा के साथ कहा।

कमला बोली—उन्हें कुछ मालूम तो हो कि तुम्हें उनके मरने पर कुछ शोक है।

राधा बोली—बहन, शोक बहुत हो चुका, अब मैं उस सारे अध्याय को भूल जाना चाहती हूँ।

—पर उन्हें तो याद है।

—मैं सुलट लूँगी, तुम चिन्ता मत करो।

छोटी बहन का यह आत्मविश्वास कमला को पसन्द भी आया और साथ ही खटका भी।

अभी वे बातें कर ही रही थीं कि कमला के पति सरोजभूषण अपने चार साल के बेटे के साथ हल्ला-गुल्ला करते हुए पधारे। राधा ने आगे बढ़कर पैर छुए और फिर बच्चे को गोद में ले लिया। कमला ने परिचय बताया पर वह यह बताना भूल गयी कि राधा उधर का सारा अध्याय समाप्त करके आयी है। सरोजभूषण को तो यह भी पता नहीं था कि राधा का प्रेमी मर चुका है। वह कुछ खोये-खोये से ताकने लगे। तब कमला ने सारी बात बतायी। फिर कहा—यह अब यहीं रहना चाहती है।

सरोजभूषण ने राधा को ध्यान से देखा, पहले तो सहमे, फिर बोले—अच्छी बात है। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। पर अब मेरी राय से चलना पड़ेगा।

कमला को यह आशा नहीं थी कि सरोजभूषण इस प्रकार की शर्त के साथ भी राधा को आश्रय देंगे। उसे कुछ आश्चर्य ही हुआ, पर साथ ही कहीं कोई बात अजीब भी मालूम हुई। कहीं सरोजभूषण राधा की भोलीभाली सूरत और गोरे-चिट्टे रंग पर तो नहीं आ गये ? कमला ने करीब-करीब झिड़क कर राधा से कहा—चलो भीतर चलो।

फिर उसने राधा को उसी दिन समझा दिया—यह न भूलना कि उन्होंने बड़ी उदारता से काम लिया है। वह कामकाजी आदमी हैं। उनसे ज्यादा मिलने-जुलने की कोशिश न करना। तुम्हारे दिल बहलाने के लिए मिट्ठन तो है ही।

राधा कुछ हँसी, पर कमला ने ऐसी चक्की चलायी कि राधा और सरोज-भूषण में करीब-करीब भेंट ही नहीं होती थी या होती थी तो झलक भर की।

इसी प्रकार कई महीने बीत गये। राधा काफी ऊब चुकी थी, क्योंकि पहले के जीवन की तुलना में उसका यह जीवन कुछ भी नहीं था। कहाँ रोज क्लब में जाना, शराबें पीना, अच्छे होटल में डिनर खाना और कहाँ यह नीरस जीवन। हाँ, मिट्ठन जरूर था, पर केवल उतने से जीवन कटना उसे मुश्किल मालूम देता था।

एक दिन सरोजभूषण दफ्तर से कुछ जल्दी आये। आते ही बोले—राधा कहाँ है ?

कमला बोली—क्यों ? घर ही में है।

सरोजभूषण ने सिर खुजलाकर कहा—आज एक पार्टी दे रहा हूँ, उसमें हमारे दफ्तर के कई बड़े अफसर आयेंगे, तुम तो चलो ही साथ-साथ राधा भी चले।

कमला बोली—राधा आयेगी तो मिट्ठन को कौन देखेगा ?

—जब राधा नहीं थी तो ऐसे मौकों पर मिट्ठन को कौन देखता था ?

कमला को यह तर्क अच्छा नहीं लगा। बोली—राधा न होती तो आज पार्टी में कौन तुम्हारे साथ जाती ?

इसके उत्तर में सरोजभूषण ने आवाज नीची कर ली और सारी परिस्थिति समझाई। फिर बोले—तुम समझती नहीं हो कि आजकल दुनिया कैसे चल रही है। राधा का भी दिल बहलेगा और मेरी पार्टी भी सफल होगी। राधा तो बहुत अच्छा गाती भी है···

कमला को बड़ा आश्चर्य हुआ कि गानेवाली बात का इन्हें कैसे पता लगा। बोली—तुम्हें क्या मालूम ?

—वाह, मुझे शादी के समय की बात याद नहीं है ?

कमला को सचमुच यह बात याद नहीं थी और अब याद करने पर भी याद नहीं आयी, बोली—तो आप गोया अपने अफसरों का मन अपनी साली से बहलाना चाहते हैं !

सरोजभूषण ने इस पर अपनी एक बड़ी तरक्की की बात के सम्बन्ध में कहा और फिर कहा—दुनिया कैसे चल रही है, तुम्हें कुछ पता नहीं।

तरक्की के नाम पर कमला को राजी होना पड़ा और राधा को कपड़े पहनने के लिए बोल आई। वह उससे बोली—शरीफों की तरह कपड़े पहनना, कहीं बाजारू ढंग न कर देना। शरीफों में जाना है।

जब अन्त तक राधा कपड़े पहनकर बाहर आयी तो उसे देखकर सरोजभूषण के मुँह से एकाएक वाह निकल गयी, बोल उठे—अब तो पार्टी सफल होगी।

पर कमला ने देखा कि राधा ने ढेर-सी लिपस्टिक लगा रखी है और उसने क्या-क्या पोता-पाता है। वह भी मामूली ढंग से पुती हुई थी, पर राधा के [illegible] उसकी क्या तुलना ! वह तो राधा की बाँदी मालूम होती थी। [illegible] कमला ने राधा से कहीं अधिक कीमती साड़ी पहन रखी थी, पर राधा के पहनने में ही ऐसी ऐसी बात थी कि वह कुछ और ही मालूम होती थी, जैसे दोनों की [illegible] और हो।

पार्टी बहुत सफल रही। चारों अफसर अकेले आये थे, [illegible]

विवाहित थे। चारों सरोजभूषण और कमला का अस्तित्व भूल गये और सब राधा के मनुहार मे लगे रहे।

सरोजभूषण इस बात से जितने ही खुश हो रहे थे, कमला उतनी ही नाराज़ हो रही थी। एक बार कमला ने मौका पाकर सरोज से कहा भी—यह क्या बदतमीजी मचा रखी है, चलो खतम करो।

सरोजभूषण ने कहा—अभी तो पार्टी शुरू हुई है। यदि तुम्हें नागवार है, तो तुम सिरदर्द का बहाना करके टैक्सी लेकर चली जाओ।

पर कमला अत्यन्त रुष्ट होने पर भी वहाँ से गयी नही। उसने मौका पाकर एक बार आँखों-आँखो मे राधा को डाँटा भी, पर राधा ने इसका उत्तर एक शेर कहकर दिया जिस पर चारो निमन्त्रित ऐसे झूम-झूमकर दाद देने लगे जैसे वे किसी मुशायरे मे बैठे हो। सरोजभूषण ने भी दाद दी। कमला ने थोड़ी देर मे मौका लगाकर सरोजभूषण से कहा—ये तो बिलकुल आवारा हैं।

इस पर सरोजभूषण ने कहा—अब मेरा काम शर्तिया बनेगा।

राधा ने गालिब की एक गजल गायी—

गो हाथ मे जुम्बिश नही आँखों मे तो दम है,
रहने दो अभी सागरो मीना मेरे आगे।

इस पर कल्लन साहब ने कहा—किसी नये शायर की एक सुनाइये।

तब जिगर की गजल हुई, जिसमे मय और मयखाने का जिक्र था।

साकी की हर निगाह पे बल खाके पी गया।
लहरों से खेलता हुआ, लहरा के पी गया॥
बेकैफियों के कैफ से घबरा के पी गया।
तौबा को तोड ताड के, थर्रा के पी गया॥
आजुर्दगी-ए-खातिर-साकी को देखकर।
मुझको ये शर्म आयी कि शर्मा के पी गया॥
ऐ रहमते-तमाम मेरी हर खता मुआफ।
मैं इन्तहाये-शौक मे घबरा के पी गया॥

कल्लन साहब बोले—इस तरह काम नही चलेगा। खयाली मय से काम नही चलेगा, क्यों प्यारे!—कहकर उन्होंने सरोजभूषण की पीठ पर एक जोर की धौल जमाई।

असल में कल्लन के ही हाथ में वह तरक्की थी। फिर क्या था! सरोजभूषण ने शराब का आर्डर दिया। कमला को बहुत बुरा मालूम हुआ। पर वह क्या करती? चुप रही। सिवा कमला के सबने पी, यहाँ तक कि राधा ने भी। इस पर कमला बहुत नाराज हुई, पर वहाँ तो कमला की तरफ कोई देख भी नही रहा था। महफिल अपनी गति से चल रही थी। दो पेग चढाने के बाद कल्लन

साहब ने कहा कि जाम का मजा तो तब है जब साकी भर के पिलाये···

सरोजभूषण ने राधा को इशारा किया और राधा ने चार पेग भरे, फिर उसने एक एक करके तीन पेग दूसरे अफसरों को दिये। फिर चौथे पेग से एक घूंट पीकर कल्लन साहब को दिया। इस पर कल्लन साहब बहुत खुश हुए और अपने साथियों से बोले—देखा, मैंने कहा था न साकी, उसी का यह इनाम मिला। तुम लोगों का दिन तो दफ्न गया होगा।

इसी तरह पार्टी चलती रही। राधा ने सिर्फ दो पेग लिये थे, बाकी वह सबको पिलाती रही। दो घंटे में यह नौबत आयी कि कल्लन साहब कालीन पर औंधे हो गये और दूसरों का भी बुरा हाल हो गया। कमला और राधा चली गयी और सरोजभूषण एक बड़ी टैक्सी लेकर सबको घर पहुँचा आये।

उस रात को तो कोई बातचीत नहीं हुई, पर कमला ने राधा से फिर भी यह कह दिया कि उसका यहाँ रहना नहीं हो सकता। राधा समझती थी कि कमला महज बक रही है, उसे निकालना उसके वश का नहीं है।

अगले दिन कमला ने सरोजभूषण से बहुत झगडा किया और उसे नीच आदि बहुत-सी गालियाँ दी। बोली—तुम्हें अपनी साली को बेचकर तरक्की कराने में शर्म नहीं आती ? आखिर कहीं तो रुकना चाहिए।

पर सरोजभूषण ने इस बात की परवाह नहीं की, बोले—तुम्हें तो दुनिया का हालचाल कुछ मालूम ही नहीं है। अरे इसमें कौन-सी इज्जत गयी ? जो कुछ हुआ सो यह हुआ कि राधा ने उनको अपना जूठा खिला दिया। इसमें अगर इतने बड़े अफसरों की इज्जत नहीं गयी तो यहाँ तो कुछ भी नहीं गया।

अगले दिन कल्लन साहब दफ्तर में आये ही नहीं, पर शाम को वह स्वयं मोटर लेकर सरोजभूषण के घर पहुँचे। आते ही बोले—तबियत खराब थी, दफ्तर नहीं गया। पर तुम्हारी फाइल मँगाकर सब काम ठीक कर दिया। अब इसी पर एक पार्टी और हो जाये। पर अब की गेलार्ड में हो···

कहकर वह चारों तरफ देखने लगे। पर वहाँ कोई नहीं था। यों ऐसे मौकों पर कमला आ जाया करती थी, पर आज वह गुस्सा दिखाने के लिए नहीं आयी।

दफ्तर की बातें होती रही। इसके बाद बोले—तुम्हारी साली साहिबा बड़ी कल्चर्ड हैं।

सरोजभूषण ने मुस्कराकर कहा—जी हाँ, एक आई० ए० एस० साहब उनके पीछे पड़े है।

कल्लन साहब का मुँह कड़ुवा हो गया। बोले—अरे इन आई० ए० एसों में क्या रखा है ? मेरे मातहत दो आई० ए० एस० है।

सरोजभूषण हँसा, बोला—अरे कहाँ आप और कहाँ ये पुस्तक-कीट जिन्हे बोलने का सलीका भी नहीं।

कल्लन साहब चाय पीकर चले गये। हाँ, चाय के समय राधा जरूर आ गयी। इस समय वह बिलकुल सादे कपड़ों में थी, पर कल्लन साहब बोले—अरे, वाह! क्या रुचि पायी है आपने!

—बस सब आप लोगों की कृपा है; और हाँ कुछ दिन एक मित्र के साथ लन्दन में रही थी, उसी का तुफैल समझिये।

कल्लन साहब थोड़ी देर में चले गये। सरोजभूषण की वांछित तरक्की तो हो गयी, पर कल्लन साहब जब-तब आ टपकते। इस पर एक दिन कमला नाराज होकर बोली—यह क्या कोई चकला है? तरक्की हो गयी, छोड़ो काफी हुआ। ऐसी बात अच्छी नहीं होती और राधा को दूर करो। वह अब गृहस्थी में रहने लायक नहीं रह गयी।

सरोजभूषण ने कहा—मैं इतना स्वार्थी थोड़े ही हूँ। उसने मेरा काम बनाया। अब मैं उसका काम बनाऊँगा।

कमला का माथा ठनका। बोली—उसका क्या काम?

—उसका यह काम कि कल्लन साहब से उसकी शादी हो जाये। जब से उस मूर्ख ने सुना है कि कोई आई० ए० एस० राधा के पीछे है, तब से यह कह रहा है कि मैं उससे शादी करना चाहता हूँ। यों तो है दुआह, पर कोई लड़का-बच्चा नहीं है, पैसा भी बहुत है। फिर क्या बात है?

कमला कुछ दबी पर बोली—कहीं उसे मालूम हो गया कि वह इसके पहले एक व्यक्ति की रखैल थी, तो क्या होगा? फिर वहीं लौट के आयेगी न, और तुम्हारी नौकरी पर भी बनेगी।

—इसीलिए तो देर कर रहा हूँ। मैंने कल्लन से कहा—मेरी साली बिलकुल स्वतन्त्र तबियत की तितली-सी है। वह घर में नहीं बैठ सकती। जाने कितनों से उसका लव अफेयर चल रहा है, पर वह किसी को पीठ पर हाथ नहीं रखने देती, एक के साथ तो लन्दन भी हो आयी।

—फिर भी वह शादी को तैयार है?

—हाँ, मैं जितना समझाता हूँ, उसकी ज्वाला उतनी ही बढ़ती जाती है। दुनिया ऐसे ही चल रही है। यदि उसने अन्त तक शादी नहीं की तो क्या जाता है? राधा को मैं घर से निकलने नहीं दूँगा। फिर जो हो।

दैनन्दिन

रिज पर पुलिस विभाग की एक जीप खड़ी थी। उसमे सिर्फ एक सिपाही कान में बेतार का रिसीवर लगाकर बैठा था। बाकी सब सिपाही उतरकर पास ही एक कम्बल बिछाकर ताश खेल रहे थे। चार सिपाही खेलने में लगे थे और बाकी एक सिपाही बैठे-बैठे खेल देख रहा था। ऐसा यह रोज ही करते थे, यहाँ तक कि रिज पर टहलने के लिए आनेवाले लोगों की दृष्टि मे यह एक सुपरिचित दृश्य हो चुका था, इतना सुपरिचित कि लोग उस पर टीका-टिप्पणी करना भी छोड़ चुके थे।

ताश का खेल खूब जम रहा था। जो पक्ष अब तक जीत रहा था, उसके ताश दो बाजियों से खराब आ रहे थे। फिर भी कोशिश यह थी कि इक्कों और बादशाहो की कमी हुनर से पूरी की जाये। इतने में जीप पर से शिउबरनसिंह ने कुछ कहा। ताश खेलने वाले अनिच्छा से ताश छोड़कर उठ खड़े हुए। जल्दी से कम्बल बटोरा गया और जीप स्टार्ट कर दी गयी। अभी अन्तिम सिपाही जीप पर चढ ही रहा था, उसका एक पैर अभी शून्य मे लटक ही रहा था कि जीप धचके के साथ चल पडी और तेजी से पहाडी पर से उतरने लगी।

शिउबरनसिंह ने चोगे पर हाथ रखकर कहा—चलो श्मशान की तरफ।

तब गाड़ी राजपुर रोड पहुँच चुकी थी। शिउबरनसिंह ने कहा—कोई अर्थी जा रही है, उसे रोकने के लिए हिदायत आयी है।

सिपाहियों में सबसे अधिक उम्र सरदार शार्दूलसिंह की थी। उसने अपनी खिचडी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—अर्थी तो कई जा रही होगी, हम किसको रोकें?—कहकर उसने भुनभुनाकर कुछ कहा जो साथियो के भी पल्ले नही पडा। जीप बहुत तेजी पर थी।

जीप कश्मीरी गेट पार करके पुरानी दिल्ली के श्मशान निगमबोध घाट की सडक पर दौडने लगी। ड्राइवर ने ब्रेक पर हाथ रखते हुए पूछा—किधर चलें?

पर शिउबरनसिंह ने कोई उत्तर नही दिया, क्योंकि उसे कण्ट्रोल-रूम से कोई स्पष्ट हिदायत नही मिली थी। उसने कहा—श्मशान के हाते के बाहर लगाओ, अब जो भी अर्थी आयेगी, उसे रोकेंगे। तब तक शायद कुछ हिदायत आये…

शार्दूलसिंह ने कहा—यह कैसे हो सकता है कि सब अर्थियों को रोका जाये ? नये-नये अफसर लगे हैं, यह भी नहीं बताया कि किस मुहल्ले से लाश आ रही है, क्या नाम है। सब अर्थियों को रोकेंगे, भला ऐसा कहीं हो सकता है? जब इस पर पार्लियामेंट में सवाल होगा तो मुझे झोंक देंगे। बिलकुल गलत है।

जीप श्मशान के हाते के बाहर एक किनारे से धचके के साथ खड़ी हो गयी थी। शिउबरनसिंह सन्देश की प्रतीक्षा कर रहा था, पर कोई सन्देश नहीं आया। खैरियत यह हुई कि इस बीच कहीं से कोई मुर्दा आता नहीं दिखायी पड़ा। नहीं तो मुसीबत बनती।

शार्दूलसिंह ने कहा—कहीं ऐसा तो नहीं कि लाश मुसलमानों या ईसाइयों की हो ? हम लोग यहां इन्तजार करते रहें और बदमाश लोग उसे दफना कर चल दें।

शिउबरनसिंह के कोष में मुख्यतः दो शब्द थे : पब्लिक और बदमाश। जो लोग बदमाश नहीं थे, वे पब्लिक में आ जाते थे। बाकी किसी का अस्तित्व नहीं था। उसकी बात सुनकर सिपाही रामसिंह ने कहा—अगर बदमाश ईसाई या मुसलमान हैं, तब तो कोई डर नहीं है, क्योंकि कब्र से लाश निकाली जा सकती है और उसकी डाक्टरी जांच हो सकती है; पर यहां एक बार जला दिया, तो फिर डाक्टर का बाप भी कुछ नहीं कर सकता। तब तो बस एक ही सहारा रह जाता है कि कोई मुखबिर बने। कोई बना तो बना, नहीं तो मुकदमा टांय-टांय फिस्स। दौड़-धूप, धर-पकड़, अदालत-बयान बेकार।

एक सिपाही ने कहा—हमारे ऋषि-मुनि बड़े चालाक थे। उन्होंने लाश जलाने की प्रथा चालू करके ज्यादा मुकदमेबाजी का मौका ही नहीं रखा।

इसी तरह सिपाही आपस में बात में बात मिलाते रहे। वे सभी दुखी थे कि ताश की बाजी छुड़वाकर इस झगड़े में फंसा दिया, कह दिया कि अर्थी रोको, पर कैसी अर्थी, किसकी अर्थी, नाम-पता कुछ नहीं बताया। अर्थी रोकने का मामला मामूली भी नहीं है, एक तो मुर्दा छूना पड़ेगा और कहीं हाथापाई की नौबत आई तो पब्लिक पता नहीं किसका साथ दे। ऐसे मौकों पर और देशों का पता नहीं, पर इस देश में अक्सर पब्लिक बदमाशों का साथ देती है।

शिउबरनसिंह हैडक्वार्टर से पूछ रहा था, पर उधर से कोई उत्तर नहीं मिला था। बस, यही हिदायत मिल रही थी कि कोई भी मुर्दा जाने न पाये, अभी तफ-सील भेजी जायेगी।

शार्दूलसिंह ने कहा—पहले न तो वायरलेस था और न जीपें थीं, फिर भी हम लोग बदमाशों को पकड़ लेते थे। एक बार ऐसा हुआ कि खबर मिली कि दो भाइयों ने जहर देकर चाचा को मार दिया है। जब तक पहुंचे-पहुंचे तब तक लाश जा चुकी थी। दौड़ते-भागते श्मशान पहुंचे भी तो वहां लाश चिता पर चढ़ चुकी थी, बल्कि घंटा दो घंटा हो चुका था। अब क्या हो ? हम लोगों ने समझा कि

चलो झगड़ा खतम हुआ, पर दरोगा मंजरअली भी एक ही खुर्राट था। उसने चिता में से लाश निकलवाई, तो सिर्फ पेट वाला हिस्सा अभी बचा था। बस उसी को लेकर डाक्टर के पास पहुँचा। डाक्टरी जाँच से पता लगा कि संखिया है। दोनों भतीजों को फाँसी की सजा हुई और बड़ी बहू को कालेपानी की सजा हुई। छोटी बहू मायके गई हुई थी इसलिए बच गई। पर फैसले के दिन वह मौजूद थी। उसने जब देखा कि उसके मर्द को फाँसी की सजा हुई है, तो वह चिल्ला-चिल्लाकर हम लोगों से कहने लगी—मैं मायके नहीं गई थी, मैं वहीं थी, मुझे भी फाँसी की सजा दो।

शिउवरनसिंह अब भी बराबर अपने यन्त्र से जूझ रहा था कि कोई स्पष्ट हिदायत आये, पर उधर से शायद कोई स्पष्ट या अस्पष्ट हिदायत नहीं आ रही थी। थाने में रिपोर्ट आते ही वायरलेस आ गया था। अभी जाँच जारी थी।

शार्दूलसिंह ने अपनी कहानी जारी रखते हुए कहा—उसका रोना-पीटना सुनकर हम लोगों को बड़ी दया आयी, पर हम कर ही क्या सकते थे। साथ के एक सिपाही ने इतना ही कहा—अभी तो अपील होगी, तुम इतनी मायूस क्यों हो रही हो, शायद ईश्वर की इच्छा हो तो ये बच ही जाएँ।

तब उस स्त्री ने रो-रोकर कहा—मैंने बहुत समझाया था कि तुम लोग यह काम न करो। चाचाजी सारा धन तो तुम लोगों के लिए ही छोड़ देंगे। पर ये नहीं माने, इन्हें जल्दी जो थी और यह हमारी जेठानी, यही सब बुराइयों की जड़ है। यही दोनों भाइयों को बहकाती रही।

रिश्तेदार आदि जो लोग मौजूद थे, वे छोटी बहू से कहने लगे—तुम जो बातें कह रही हो, उनमें इनकी अपील को नुकसान पहुँचेगा। ये छूटनेवाले भी होंगे तो न छूटेंगे।

इस पर उस बहू ने कहा—मेरे पति का कोई दोष नहीं है, बस यही है कि यह अपने भाई-भौजाई को बहुत मानते हैं। इनमें खुद सोचने का माद्दा नहीं है। मेरे समझाने पर भी नहीं माने, तब मैं मायके चली गयी।—कहकर वह जमीन पर गिरकर बिलखने और बुरी तरह रोने लगी यहां तक कि बहुत बड़ी भीड़ जमा हो गई।

लोगों का क्या है। ढेर सारे तमाशबीन इकट्ठे हो गये। वह औरत रंग-रूप से बहुत अच्छी थी, इसलिए और भी भीड़ जमा हो गयी। हमारे हैड ने जब देखा कि भीड़ बढ़ रही है तो हम लोग मुजरिमों को लेकर आगे बढ़े। जेल और अदालत पास-पास ही थी, इसलिए हम पैदल ही मुजरिमों को लिए जा रहे थे। दोनों भाइयों को मर्द जेल में और भौजाई को बगलवाली औरतों की जेल में दाखिल करना था।

भीड़ भी हमारे साथ-साथ चली और वह औरत भी। वह औरत कह रही

थी—मेरे पति को तो फजूल में फांसी हो रही है। फांसी तो होनी चाहिए जेठानी को।

न तो दोनों भाइयों में से कोई कुछ बोल रहा था, न भौजाई ही कुछ बोल रही थी। वे जल्दी-जल्दी चल रहे थे, ताकि यह झमेला खतम हो, पर भीड़ जल्दी नहीं होने दे रही थी और न हम लोग जल्दी में थे।

रामसिंह ने एकाएक शार्दूलसिंह से पूछा—तब तुम्हारी उम्र कितनी थी ?

शार्दूलसिंह शरमा गया, बोला—उन्नीस रही होगी। हम अभी-अभी भर्ती हुए थे। तुम जो समझ रहे हो वह बात नहीं है, पर हमने बुरी निगाह से देखा भी हो तो कोई बात नहीं, क्योंकि उसके मर्द को तो फांसी होनेवाली थी।

रामसिंह उपन्यास आदि पढ़ता था और बी० ए० पास करने के बावजूद कोई नौकरी न मिलने के कारण सिपाहीगिरी में भर्ती हुआ था, बोला—चाचा, शायद सारी भीड़ तुम्हारी ही तरह सोच रही थी।

शार्दूलसिंह को यह मन्तव्य पसन्द नहीं आया। शायद उसके पल्ले भी नहीं पड़ा, बोला—गल तो सुनता नहीं और बेकार की बातें करता है।

अन्य सिपाहियों ने शार्दूलसिंह से कहा—तुम अपनी बात कहो जी, इसे बकने दो।

शार्दूलसिंह इस तरह की चुहलबाजियों का अभ्यस्त था। उसने इस तरह से अपने को झाड़ लिया जैसे कुत्ता नहलाये जाने के बाद पानी झाड़ लेता है, फिर बोला—जब हम लोग फांसीवालों और उस औरत को अपनी-अपनी जगह कर आए, तब भी वह स्त्री जेल के सामने एक पेड़ के नीचे बैठी हुई थी। बड़ी कठिनाई से उसके माँ-बाप उसे ले गये। वह यही कह रही थी—मेरा पति तो निर्दोष है। सारी बदमाशी जेठानी की है। उसी चुड़ैल के कारण उसके पति और देवर की फांसी हो रही है।

हम लोगों ने समझाया—अभी फांसी किसी को नहीं हो रही है। यह तो अभी एक अदालत है, जाने कितनी ऐसी अदालतें अभी बाकी हैं, फिर मर्सी पिटीशन है, कुछ न कुछ होगा। तुम घर जाओ और अच्छा-सा वकील कर लो। ईश्वर ने चाहा तो···

शार्दूलसिंह इतना कहकर चुप हो गया। इस पर सब श्रोता बड़े निराश हुए। रामसिंह ने कहा—चाचा, यह तो कोई बात नहीं हुई।

शार्दूलसिंह इसी मन्तव्य की प्रतीक्षा कर रहा था, जैसे अड़ियल टट्टू एड़ लगने की प्रतीक्षा करता है। क्रोध में आकर बोला—मेरी खुशी है, मैं आगे नहीं सुनाऊँगा। इतनी अच्छी बाजी खराब हो गयी···

लोग जानते थे कि सरदारजी सुनायेंगे, और अवश्य सुनायेंगे, बस थोड़ी खुशामद की जरूरत है, सो लोगों ने उसमें कसर नहीं रखी। एक ने रामसिंह को एक

धौल भी जमा दी। नतीजा यह हुआ कि अड़ियल टट्टू फिर चल निकला, बोला—वह इतनी अच्छी थी कि मैं उसका घर देख आया। पर ऐसे तो बहुत-से घर देखे थे। उसे छोड़ो। असली बात यों है कि अपील लड़ी गयी और पता नहीं काटजू साहब या सप्रू साहब या कोई बंगाली मुकर्जी साहब कौन वकील बने। उन्होंने जज से यह कहा—माई लार्ड, सारी बातें साबित हैं, सबूत में कोई कसर नहीं है, पर यह किसी गवाह ने तो कहा ही नहीं कि पेट का जो हिस्सा चिता से बरामद किया गया था, वह किसका था?

बताते हैं, इस पर जज साहब ने चश्मा पोंछते हुए कहा—मुजरिमों के चाचा का ही होगा और किसका होगा, जब लाश उसकी थी।

तब काटजू साहब ने कहा—यह कहाँ साबित है? उस दिन जिनकी लाशें जलाई गयी, उनकी तसदीकशुदा, फेहरिस्त मैंने मँगायी है और उसमें चाचा का नाम नहीं है।

जज साहब फेहरिस्त देखने लगे, इस पर सरकारी वकील ने बड़ा झगड़ा मचाया कि इस मौके पर नयी शहादत नहीं पेश की जा सकती। ऐसा करना कानून के खिलाफ है।

इस पर काटजू साहब और सरकारी वकील मुकर्जी साहब में बड़ी झपट हुई। बात की बात में मोटी-मोटी किताबों का ढेर लगा दिया गया। आखिर सेहरा काटजू साहब के सिर पर ही बँधा और सब कैदी साफ छूट गये।

जब यह साबित ही नहीं हुआ कि किसकी लाश थी, तो सजा कैसे होती? मुझे यह सब पता लग गया, पर न जाने क्यों खुशी नहीं हुई। यह तो साफ था कि इन लोगों ने ही चाचा को जहर देकर मार डाला था और नाम बदलकर लाश जलाई थी, श्मशान में बाहरी किसी आदमी को साथ नहीं ले गये थे। पर काटजू साहब ने भरी अदालत में दिन को ऐसे रात कर दिया कि हम लोग हाथ मलते रह गये। मंजरअली मुकदमे का इंचार्ज भी था, उसको इतना सदमा लगा कि वह छुट्टी पर चला गया। हम लोग उससे खुश नहीं थे, इसलिए इस नाते तो हमें खुशी ही हुई। अब तो वह पाकिस्तान में है।

शार्दूलसिंह चुप हो गया। सब लोग इसी घटना पर सोच रहे थे। तो क्या इतनी लम्बी कहानी सिर्फ यह बताने के लिए कही गयी कि मंजरअली पाकिस्तान चला गया? कहीं सरदार सठिया तो नहीं गया है। शिउबरनसिंह पहले की तरह कान में वायरलेस का यन्त्र लगाये हुए बैठा था। कड़ाके की धूप थी पर जाड़े का मौसम होने के कारण वह अच्छी लग रही थी; भूख के समय कुड़कुड़ी सिकी हुई डबलरोटी की तरह जिस पर मक्खन की गलती हुई परत हो।

शिउबरनसिंह ने कुछ नहीं कहा और न इस बीच कोई अर्थी ही आयी। शार्दूलसिंह ने शरारत-भरी खिचड़ी दाढ़ी से बारी-बारी से सबको देखा और फिर

कहा—बादशाहो ! असली बात तो अभी बतायी ही नही ।—कहकर वह चुप हो गया। लोग सोचने लगे कि न जाने असली बात क्या है। शायद कोई प्रेम-कहानी हो, शायद यह कहे कि छोटी बहू से मेरा इश्क लड़ गया। कौन जाने ? तब शार्दूलसिंह मुस्कराकर, जैसे शिक्षक अपने अल्पज्ञ छात्रों को समझाता है, बोला—इसके बाद कुछ दिन निकल गये। तब मालूम हुआ कि वह जो औरत रो रही थी, मानो छोटी बहू, मर गयी है। पता नही यह कैसे मालूम हुआ, किस जरिये से मुझ तक पहुचा, पर इतना पता है कि जब यह खबर हम लोगो को मिली तो सबने यही कहा कि उसे तीनों ने मिलकर मार डाला होगा, या अकेली जेठानी ने ही मार डाला हो, कौन जाने। बहुत देर मे पता लगा मंजरअली बदला लेना चाहता था पर कोई सबूत नही था। अब की बार उसने जाँच की तो श्मशान और दूसरे रजिस्टरो मे सब जगह सही नाम था, पर शक नही मिटा। किया क्या जा सकता था ? कहते है खुदा के यहाँ देर है अन्धेर नही, पर इस मामले मे तो देर मे अन्धेर ही हुआ।'' पक्की बात है। कसम खाकर कह सकता हूँ ''

शिउचरनसिंह यन्त्र से कुछ बाते कर रहा था, उसने कान से यन्त्र हटाते हुए कहा—हम लोगो को हिदायत हुई है कि हम अपनी पहले की जगह पर चले जाएँ, अर्थी नही आ रही है। खबर ही गलत थी। कौन जाने यह महज प्रैक्टिस हो'''

जीप फिर से चलने लगी और थोड़ी ही देर मे पहाड़ी पर पहुँच गयी। फिर कम्बल बिछा और ताश चलने लगा, जैसे इस बीच कुछ हुआ ही नही था।

दो भाई

जब रतनलाल मिठाई वाले ने नाम पूछा, तो अल्मोड़ा के गाँव से आये हुए किशुन ने अपना नाम न जाने क्यों बदल कर कहा—रामसिंह।

कभी का रतन हलवाई अब अपने को हलवाई कहलाना पसन्द नहीं करता था। वह तथा उसका भाई मदन अपने नामों के साथ लाल जोड़ने के साथ धीरे-धीरे अपनी पुश्तैनी मिठाई और नमकीन की दुकान को एक आधुनिक रेस्टोरेन्ट में बदल रहा था। बहुत कुछ काया पलट हो चुकी थी। पहले दुकान का जो गोदाम हुआ करता था, जिसमें घी, आटा, मैदा, मसाला जमा रहता था, उसी को साफ करके चार मेजें लगा दी गयी थीं। उनके साथ-साथ पंखे और कुर्सियाँ भी आयीं।

इतना सब कर लेने पर भी अभी तक ग्राहक को बिल नहीं दिया जाता था, बल्कि जब वह निकलने लगता था तो चिल्लाकर कह दिया जाता था—दो रुपये साढ़े पन्द्रह आने!—और रतनलाल या मदनलाल जो भी होता था पैसा वसूल करके बाकी दे देता था। पर कई ग्राहक मेज पर ही पैसा देना पसन्द करते थे, दुकान से निकलते समय नहीं, तब अधमैले कपड़े पहने हुए कड़ाही माँजने [illegible] फालतू समय में मेज पर सौदा पहुँचाने वाले लड़के एक तश्तरी से आते [illegible] उसमें बिल नहीं होता था। उसमें वे नोट ले लेते थे और बाकी [illegible] देते थे, और टकटकी बाँध कर देखते थे कि ग्राहक कुछ [illegible] वह पाँच नये पैसे भी छोड़ देता, तो लड़का बहुत खुश [illegible] सम्पत्ति मिली हो।

तो इसी दुकान में किशुन नौकरी ढूँढने [illegible] है रामसिंह, बाप का नाम हरिहरसिंह।

अपना नाम बदलते समय उसने [illegible] सिंह लगाते हुए उसे कुछ अटपटा लगा। [illegible] कहा—घर गरमछीना, जिला अलमोड़ा।— [illegible] का तेल लगाये हुए तोंदियल रतनलाल हलवाई की ओर [illegible] देखा।

रतनलाल ने अविश्वास के साथ उसको देखा, जैसे वह जो कुछ कह रहा हो, सब झूठ हो, पर उसका हृदय-पुष्ट शरीर झूठा नहीं था, तगड़े हाथ-पैर झूठे नहीं थे, बाकी बातों से रतन को कोई मतलब नहीं था। चोर हो सकता था, पर चोरी का मौका कहाँ था ? रोकड तो अपने पास रहता है, यहां तक कि बेटों को भी वह कभी कैशबाक्स नहीं देता था, फिर भी उसे सन्देह था कि वे जब-तब आँख ओझल होते ही दो-चार रुपये मार लेते हैं, जिसकी कसर वह इन्कमटैक्स वालों से निकालता था। बोला—जाओ, कड़ाही माँजो, लग जाओ, ईमानदारी से काम करना। समझे ?···

रामसिंह की समझ में नहीं आया कि कड़ाही माँजने में किस ईमानदारी की जरूरत है ? यदि उसे रोकड वाला बक्स दिया जाता तो कोई बात भी थी, पर वह बहुत खुश हुआ। दो दिन से चने-चबैने के अतिरिक्त कुछ खाया नहीं था। बोला—हुजूर, तलब कितना होगा ?

रतनलाल ने एक गाहक को बाकी पैसे थमाते हुए कहा—देखा आपने, काम तो दिखाया नहीं, और कहता है तलब कितना होगा।

गाहक ने पैसे गिनते हुए जमाने को गालियाँ दीं। बोला—अब इन्हीं लोगों का राज है···

रतनलाल और गाहक दोनों सम्मिलित रूप से हँसे, यद्यपि अभी थोड़ी देर पहले गाहक मिठाइयों के भाव बढ़ने पर उलाहना दे रहा था और रतन घी महगा हो जाने की बात कह रहा था, यद्यपि उसके किसी मिठाई में घी नहीं पड़ता था, सब शुद्ध वनस्पति का बना होता था, पर पुश्तैनी साइनबोर्ड पर बड़े-बड़े हरफों में लिखा था—असली देसी घी का मिष्टान्न।

तलब बताया नहीं गया था और रतन का प्रधान कड़ाही माँजने वाला बलदेव, जो अब कड़ाही नहीं माँजता था, रामसिंह को ले जाकर कड़ाही माँजने और तश्तरी धोने में लगा चुका था। जब रामसिंह ने एक के बाद एक कई कड़ाहियाँ चमचमा कर माँज डालीं, तब बलदेव ने कहा—ले, बीड़ी पी ले।···

रामसिंह ने बीड़ी कभी नहीं पी थी, क्योंकि अभी वह अपने गाँव से सीधे आया था। वहाँ कुछ गने-गिने सम्पन्न लोग ही बीड़ी-तम्बाकू पीते-खाते थे, बाकी लोगों के तो रोटी के लाले पड़े रहते थे, बीड़ी-तम्बाकू क्या पीते। बाकी उसने सुन रखा था कि जमींदार लोग और दूसरे बड़े लोग शराब भी पीते हैं। पर सुना ही था, देखा नहीं था।

उसने बीड़ी ले ली पर उसे सुलगाने में उसने दियासलाई की तीन तीलियाँ खराब कर डालीं। तब बलदेव ने कहा—तू बिलकुल अनाड़ी है, धीरे-धीरे सीख जायेगा।

धीरे-धीरे सीख जायेगा, इन शब्दों मे रामसिंह को सहानुभूति का स्नेहमय स्वर सुनायी पड़ा। हाँ, तो धीरे-धीरे तो सब सीखना ही था। गाँव मे तो कुछ होता ही नही। जब से वह शहर में आया था, तब से उसकी उच्चाकाक्षा थी कि बिजली की बत्ती अपने हाथ से जलायेगा। और भी एक उच्चाकांक्षा थी, नहीं-नही, वह बहुत बडी उच्चाकाक्षा थी, उसे वह अपने से भी छिपाना चाहता था कि वह साइकिल पर चढ़ेगा और टिं-टिं करके घटी बजायेगा जैसे उसके गाँव के महाजन का लड़का बजाता था।

अभी नौकरी किये हुए छः महीने नही हुए थे कि सारी उच्चाकाक्षाएँ पूरी हो गयी। दुकान की दो साइकिले थी, जिनमे से एक पर उसने मालिकों और बल्देवा (मुँह पर बल्देवजी, और पीठे पीछे बल्देवा) की आँख बचाकर साइकिल सीखी थी। कई बार गिर भी पडा था, पर विशेष चोट नही आयी थी। साइकिल उसने केवल काल्पनिक उच्चाकांक्षा के लिए नही, वल्कि तलब बढाने के लिये सीखी थी।

जब वह दो-चार बार साइकिल मे चीनी और मैदे के बोरे और वनस्पति के लेबिल हटाये हुए टीन ले आया, तो उसका तलब दो रुपये बढा दिया गया और बल्देव से लेकर दुकान के सब नौकरों ने उससे कहा कि 'पाल्टी' होनी चाहिए। रामसिंह जानता था कि दुकान मे कभी-कभी 'पाल्टी' होती है। नये मेजपोश डाले जाते है और फुटकर गाहको को भीतर नही जाने दिया जाता या एकाध मेज बची होती है तो उसी में बैठाया जाता है। बाकी रिजर्व होती है।

पर अपनी 'पाल्टी' कैसी होगी? नमकीन मिठाई के कीडे मिठाई तो खायेंगे नही। बल्देव ने कहा—एक बोतल लाओ। रात को दुकान बन्द होने के बाद अद्धा मुझे दे देना।

उसने साफ नही किया, पर मतलब यह था कि आधी मे मै और आधा मे तुम सब लोग। रामसिंह ने इस बीच घर मे दो-तीन बार मनीआर्डर भी भेजे थे। अपने लिए एक बुशशर्ट सिलवाया था तथा हनुमान जी की एक तस्वीर भी खरीदी थी, जिसके सम्बन्ध मे उसको विश्वास था कि वह तलब बढाने मे मदद देगी।

पर उसने 'पाल्टी' देने की बात कभी सोची नही थी। खर्च तो था ही, पर साथ ही गौरव, जिससे खर्च अखरता नही था। बल्देवा को तो अद्धा देना ही था, क्योंकि उसकी एक बात पर रतनलाल और उसके छोटे भाई मदनलाल उसे खड़े-खडे निकाल सकते थे।

बस कह भर दे कि लड्डू खा लिया या नमकीन चुरा लिया, तो फौरन पत्ता कट जाता। यह केवल भय नही, बल्कि कई दफे सामने हो चुका था। पुराने साथी खड़े-खड़े निकाल दिये गये।

सो बल्देवा को तो अद्धा, नही तो पौवा तो देना ही था। हाँ, नकद रुपये

देकर छुट्टी हो सकती थी। पर अपने साथी कड़ाही माँजने वालों और मेज पर मिठाई और नमकीन पहुँचाने वालों ने भी कहा—और सब चीजें तो हम खाते-पीते रहते है, शराब हो जाये। बहुत मजा रहेगा।

लोगों न यह भी कहा कि बल्देवा को तो अलग कर दो। उसकी उपस्थिति किसी भी मजे को किरकिरा बना देने के लिए काफी है। सो उसे पैसे दे दिये गये और ग्यारह बजे रात को एक बड़े मे पाकड के नीचे अंधेरे मे देशी छानी गयी। पूरे महीने की पगार फुंक गयी, पर बहुत मजा आया, बहुत मजा आया। पहले तो बारी-बारी मे सब गाने रहे, फिर एक साथ सब मिलकर गाने लगे।

किसी ने कहा—बिरजू बेसुरा अलाप रहा है।—इस पर बिरजू ने यह प्रश्न किया कि कहने वाले के बाप ने कभी अच्छा गाना नही सुना, इसलिए यह भ्रम हो रहा है, तब दोनों तरफ से बाप और स्वाभाविक रूप से बाप के साथ-साथ माँ, आदि के सम्बन्ध मे प्रश्न, उलाहना, अभियोग शुरू हो गया। बोतल लेकर एक दूसरे पर दौड़े, यहाँ तक कि राउंडवाला सिपाही आ गया और उसने सीटी बजा दी।

पर तब तक यार लोग रतन और मदन की दुकान के अन्दर खुर्राटे भर रहे थे। केवल दो खाली बोतलें और कुछ कुल्हड़ सिपाहीजी के हाथ लगे। टार्च से देखा, तो एक बोतल के पेंदे मे कुछ रहता था, सिपाहीजी ने बोतल जूठा है, जान-कर भी, महज यह देखने के लिए कि शराब ही है या और कुछ है, उसे पी डाला और गालियाँ देते हुए चला गया। साथ मे बोतलें लेता गया कि कुछ नही तो दस-दस नये पैसे तो मिलेंगे ही।

ऐसी 'पार्टियाँ' जब-तब होती रही और रामसिंह उनमे रस लेता रहा। सब बारी-बारी से बिना कारण पार्टी देते थे। नतीजा यह हुआ कि न किसी के घर मे मनीआर्डर गया, न बुशर्ट खरीदे गये, यहाँ तक कि बिरजू ने घड़ी खरीदने के इरादे से जो रुपये जमा किये थे, वे भी निकल गये। पहले तो पता ही नही लगा कि रुपये गये, जब पता लगा तो चारा नही था।

रामसिंह के बाप का पत्र आता रहा, खेती-पाती नही हुई, क्योंकि वर्षा ज्यादा हुई, लगान चुकाना है, तुम्हारी मां बीमार है। पर उसने उत्तर नहीं दिया। भेजना तो वह चाहता था पाच रुपये, पर कुछ भेज नही सका। बीड़ी-सिगरेट और जब-तब ताड़ी और देशी से ही पैसा नही बच पाता था।

एक दिन रात दस बजे जब दुकान लगभग बन्द हो चुकी थी तो बीडी का बन्डल लेने के लिए रामसिंह पास ही की एक दूकान पर खड़ा था कि उसने बड़े मालिक रतन को देखा, झेप गया। जल्दी से कतरा कर दुकान लौटने की कोशिश की पर बड़े मालिक ने इशारा किया—इधर आओ।

कहकर वह आगे बढ गये, तो रामसिंह पीछे-पीछे चला। रामसिंह का दिल

धुकुर-धुकुर कर रहा था, पता नही क्या होने वाला है। पर थोड़ी दूर जाने के बाद जब एक अंधेरी गली आयी तो उसके मोड पर रतन रुक गया, बोला—सुन, तू मेरी तरफ से गवाही देगा?—कहकर उसने रामसिंह की आखो मे झांका।

रामसिंह समझ नही पाया कि मामला क्या है। खैर, उसे इतना तो भरोसा हो गया कि नौकरी नही जा रही है, न कोई चोरी ही पकड़ी गई है। इन दिनो वह खर्च पूरा करने के लिए जब-तब छोटी-मोटी चोरी कर लेता था। सभी करते थे। कभी आँख बचाकर चार लड्डू तमोली को दे आये एक बडल बीडी ले ली। बोला—हजूर, कैसी गवाही? हम तो आपके नौकर है।

रतनलाल कुछ देर सोचता रहा, फिर एकाएक बोला—मदन के खिलाफ। मैं उससे अलग होना चाहता हू, वह शराब पीता है, रण्डीबाजी करता है, दुकान के पैसे चुराता है। पहले हर शाम को बिक्री चार सौ की रहती थी, अब कभी तीन सौ की होती है, कभी ढाई सौ ही रह जाता है, माल उतना ही खर्च हो रहा है। एक दिन मैंने बैठ कर देखा, बिक्री पहले से ज्यादा है। मशहूर दुकान है। बिक्री तो बढनी ही थी।

रामसिंह यह तो जानता था कि बिक्री घटी नही है, पर भीतर-भीतर मदन बाबू ऐसा करते हैं, यह उसे मालूम नही था।

मन मे अपनी चोरियों का समर्थन मिला। बोला—हजूर, मुझे कुछ नही मालूम।

—मालूम तो बल्देव को सब कुछ है, पर वह साला मदन से मिल गया है। दोनों मिलकर चोरी करते है। सुना है कि बल्देव उसे रण्डी मुण्डी के यहाँ ले जाता है।

रामसिंह के लिए ये सारी बातें नई थी। यद्यपि इनकी भनक उसके कानों तक कुछ न कुछ पहुँचती थी, बोला—हजूर, मैं छोटा आदमी, मै यह सब क्या जानूं बड़े आदमियों की बातें!

थोडी देर बात करने के बाद रतन समझ गया कि इससे कुछ नही बनने का। तब वह वकील के पास गया और सुनायी पड़ा कि मुकदमा चल रहा है। कुछ दिनों तक न बड़ा भाई दुकान मे आता, न छोटा भाई। बल्देवा का राज हो गया।

यह भी सुनने में आया कि दुकान बन्द कर दी जाएगी। दिल धक से हुआ रामसिंह का। पर दुकान बंद नही हुई। थोड़े दिनों मे दुकान के बीचोबीच एक ईंट की एक दीवार बन गई। नौकर बँट गये। बल्देवा मदन के हिस्से मे रहा और रामसिंह रतन के हिस्से मे रहा।

अब रतनलाल मदनलाल 'एन्ड सन्स' के बजाय दोनों की दुकाने अलग-अलग हो गईं। फुटकर बिक्री रह गई। भीतर जो रेस्टोरेंट बना था, वह बन्द हो गया, क्योंकि दीवार ने जो जगह घेरी, उससे मेजो के लिए जगह नही बची। रतनलाल

की दुकान तरक्की करने लगी और मदनलाल की दुकान धीरे-धीरे बैठ गई। सुना कि कुछ बातचीत हो रही है—फिर से भाइयों के एक होने की। पर रतनलाल ने दो शर्तें रखीं—शराब छोड़नी पड़ेगी और बल्देवा को निकालना पड़ेगा।

पर बल्देवा भला अपनी मौत के परवाने पर क्यों दस्तखत करता। उसने भाइयों में सन्धि होने नहीं दी और मदनलाल को पहले से ज्यादा शराब पिलाता रहा, जिससे उसकी आँखें न खुल जायें। उसने मदन से कहा—पूँजी कम हो गई, इसलिए दुकान पनप नहीं रही है।

तब मदन ने बल्देवा को बीबी के जेवर लेकर दिए, बल्देवा ने उन्हें अपने लाकर में बन्द करवा दिया और चोरी से बचाये हुए पैसों में से हजार-दो हजार निकाल कर दुकान चलाने की कोशिश करने लगा, पर रतनलाल के बढ़िया माल के सामने उसकी एक नहीं चली।

एक दिन बल्देव को जितना भी रुपया मिला, उसे लेकर बम्बई भाग गया। मदन की दुकान बन्द हो गई। जब दो महीने ताले पड़े रहे तब एक दिन रामसिंह ने देखा कि दीवार टूट रही है। रतनलाल ने दुकान कौड़ियों के मोल खरीद ली थी। फिर रेस्टोरेन्ट जारी हो गया। अब की मेजों पर काँच लग गए, कुर्सियों पर गद्दे लगे। बड़े ठाठ से काम शुरू हुआ।

जब-तब गाहक रतनलाल से मदनलाल के विषय में बात करते, तो वह यही कह देता कि शराब ने उसका नाश कर दिया। पर यही रतनलाल अपने नौकरों को कभी शराब पीने से रोकता नहीं था। बस, इन पर चौकसी रखता था कि चूरा-चूरा जो दिया जाता है, उसके अलावा दुकान में कोई चोरी न हो सके। उसका बड़ा लड़का कामता भी अब दुकान में बैठने लगा था। काँच वाली मेज और गद्देदार कुर्सी और इधर रेडियो लगाने के विचार उसी के दिमाग से आए थे।

एक दिन रामसिंह देर से उठा। धूप चढ़ गई थी। कामता उसे बहुत गालियाँ दे रहा था—साले, दो कौड़ी के आदमी और चल देते हैं शराब पीने। कुछ सोचते नहीं हैं। कड़ाही नहीं मज पाई। नवाब के नाती बन गए हो। उठ'''

उसने और भी बहुत-सी गालियाँ दीं, इतने में रतनलाल आ गया। उसने भी रामसिंह से कहा—अबे, सोच-समझ कर नहीं पीता?

बस इतना ही। कामता से धीरे-धीरे कहा—ये शराब पीएँ, तभी अच्छा है। शराब पीएँगे तो मोहताज बने रहेंगे। न अलग दुकान खोलने की बात सोच पाएँगे और न यूनियन बनाएँगे। बेटा, इनके शराब पीने में ही हमें फायदा है।

रामसिंह ने कड़ाही माँजते-माँजते ये बातें सुनीं, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। दूसरे लोग शराब पीएँ और हमेशा गुलाम बने रहें, यही रतनलाल चाहता था। मदनलाल शराबी न होता तो आज यह पूरी दुकान का मालिक कैसे होता? मदनलाल तो अब घंटेवाले के यहाँ एक कारीगर मात्र है। पाँच रुपये रोज पाता

है। यहाँ तो जाने कितनी आमदनी थी।

उस रात को बिरजू की तरफ से एक 'पाल्टी' थी, पर रामसिंह उसमे नही गया। लोगों को सवेरे का किस्सा मालूम था। बिरजू ने कहा—बस, तू कामता की बातों मे आ गया! उसकी ऐसी की तैसी, हम जिस दिन चाहे साले का दिवाला करा दें। यह तो अपनी भलमनसाहत है कि कुछ नही करते।

तब रामसिंह ने वे बातें सुनाई, जो रतनलाल ने कामता से कही थी। सुनकर बिरजू बोला—पैसे रखने के लिए थोडे ही होते है, होते है उडाने के लिए। हम लोग चालीस-चालीस, पचास-पचास रुपल्ली के नौकर है, पर हमने ज्यादा मौज उड़ाई है। सन्दूक या बैंक में रुपये बन्द रखने से मजा थोडे ही आता है। चल, बेवकूफी न कर। वही बातें भी करेंगे। रतनलाल का दिवाला न निकलवा दिया तो अपनी मूँछ पेशाव से मुंड़ा दूंगा।

इसलिए रामसिंह 'पाल्टी' मे गया। उस दिन फिर सीटी बजी। यद्यपि कोई झगडा नही हुआ। जो गीत वे गा रहे थे, वह भी कोई बुरा नही था। रामसिंह ने 'जन-गण-मन' शुरू किया, तो सब उसी को गाने लगे और गाते-गाते न जाने क्या इच्छा हुई, सब लोग पेड़ पर चढने लगे। इतने में सीटी बज गई और सब कूद-कूदकर भाग गये।

आज की पार्टी के पहले ही तय हुआ था कि बिरजू के नेतृत्व मे दुकान से चोरियाँ होगी, पर अगले दिन सबेरे ही पता नही कैसे क्या हुआ, बिरजू और उसके जिले वाला लाखन, दोनों दुकान खुलते समय ही निकाल दिये गये और उनसे कहा गया कि अगर वे दिल्ली छोड़कर नही गये, तो उन्हे 109 में बन्द करवा दिया जाएगा। हर त्यौहार में थाने मे मिठाई जाती है, इसलिए बिरजू जानता था कि मालिक को ऐसा कराने मे कोई दिक्कत नहीं पड़ेगी।

बिरजू और उसके साथी के निकाले जाने के बाद दो-तीन दिनों तक दुकान में डर छाया रहा। पहली बार पुलिस का डर दिखाया गया था। अब नौकरो की समझ में आया कि पुलिस वालों से रतनलाल इतनी रफ्तजब्त क्यो रखता है। अदना से अदना सिपाही आता है तो उसकी बडी आवभगत होती थी। उसे आदर के साथ बैठाया जाता था और बिल मांगने पर नौकर लोग कहते थे कि हुक्म नही है और मालिक के पास जाने पर वह मुस्करा देता था। उल्टे जो कोई सामने होता, उससे कह दिया जाता—पान लेकर सिपाही जी को दे।

तीन-चार दिनों के बाद नौकरों ने आपस में थोड़ी बातचीत शुरू की। बिरजू के संबंध मे पता लग चुका था कि वह बम्बई चला गया है। जाते समय वह कुछ ऐसा कह गया था कि बल्देवा की दुकान मे नौकर हो जाएगा। न यहां बैठकर खाता हूं, न वहां बैठकर खाऊंगा, फिर किसी साले का क्या एहसान?

यह खबर भी कई दिन बाद रामसिंह को लगी। सच तो है, डरना किसलिए?

अब तो रामसिंह को बहुत काम आ गए थे। वह कड़ाही माँजने के बजाय मिठाई बनाने के काम में जब-तब लगा दिया जाता था। गाहकों को मिठाई भी तौलकर देता था। डरने की कोई बात नहीं थी। जब बिरजू को फिर नौकरी मिल सकती है, तो उसे भी मिल सकती है।

पर कई दिनों तक कोई पार्टी नहीं हुई। रामसिंह अब समझ चुका था कि असली शब्द पार्टी है, न कि 'पाल्टी', जैसा कि वह पहले कहा करता था। चोरी तो खराब बात है, पर शराब या बीड़ी-सिगरेट में कोई हर्ज नहीं। हाँ, वह जो बात रतनलाल ने कामता से कही थी, वह जरूर खटकती रहती थी। उसने कहा था—ये शराब पीयें, तभी अच्छा है। शराब पीयेंगे तो मोहताज बने रहेंगे, न अलग दुकान खोलने की सोच पाएंगे, न यूनियन बनाएंगे। बेटा, इनके शराब पीने में ही हमारा फायदा है।

पर बिरजू ने जो बात कही थी, वह भी तो ठीक है कि सन्दूक या बैंक में रुपये जुड़ने से क्या फायदा है?

पिताजी के पत्र बराबर आते रहते थे, पर महीनों क्या, सालों से उसने कोई मनिआर्डर नहीं भेजा था। कभी-कभी अपने गाँव की याद बहुत सताती थी, पर यहाँ तो हर समय जल्दी मची रहती थी। इसलिए ज्यादा सोचने और घुलने का मौका नहीं मिलता था।

फिर भी एक-एक चिट्ठी आती थी और लगता था कि कहीं पर कुछ चुभ रहा है। पुरानी कोई चोट उभर रही है पर काम इतना बढ़ गया था कि घंटों तक बीड़ी पीने की नौबत नहीं आती थी। रतनलाल को भी इधर आदत हो गयी थी कि जब देखो तब चिल्लाता रहता था—रामसिंह, चासनी तैयार है? देखो, लड्डू कितने बचे हैं? कल फलाना त्यौहार है, किसी को याद नहीं? मैं भूल गया तो सब लोग भूल गये?

ऐसे में पिताजी की चिट्ठी न जाने कहाँ खो जाती थी। डाकिया ज्योंही चिट्ठी दे जाता था, त्योंही रतनलाल हड़बड़ा कर कहता था—अबे उसे उतना पढ़ क्या रहा है? उसमें यही लिखा होगा—रुपये भेज दे। सो तू ऐसा नालायक है कि सारे पैसे नशे-पत्ते में फूंक देता है। भेजेगा क्या?

सचमुच पत्रों में यही लिखा होता था—गाय मर गयी है, रुपया भेजो, लगान देना है, रुपया भेजो; तुम्हारी शादी के लिए रुपये जोड़ने हैं, रुपया भेजो; बहन की शादी की बातचीत चल रही है, रुपये भेजो। टेक थी, रुपया भेजो, गीत चाहे कुछ भी हो। वह अपने मन को समझा लेता था कि मैं अकेला हूँ। न कोई मुझे चाहता है, न मैं किसी को चाहता हूँ। सब पैसे चाहते हैं, पैसे के यार हैं। और वह बीड़ी सुलगा लेता था।

एक दिन एक खबर मिली, जिससे सब नौकरों में बड़ी सनसनी फैल गयी।

वह यह कि मदनलाल ने शराब पीकर अपने दुकानदार पर हमला कर दिया, इससे वह हवालात में बन्द हो गया।

यों मदनलाल कोई अच्छा आदमी नही था और जब वह यहाँ था, तो वह नौकरों को बहुत सताता था, पर इस बीच जाने किस प्रक्रिया से वह सब नौकरों की आँखो मे शहीद की मर्यादा पा चुका था। इसी बदमाश रतनलाल ने उसे बरबाद कर दिया, नही तो वह मजे में गाव-तकिया लगाये गद्दी पर कैश-वाक्स के सामने बैठा होता। रात के समय मदनलाल गिरफ्तार हुआ था, सवेरे रतनलाल दुकान नही आया। मालूम हुआ कि थाने-पुलिस मे दौड रहा है।

रामसिंह ने साथियो से कहा—आखिर भाई है, कब तक मदद न करेगा?

पर दूसरों ने कहा—भली चलायी भाई की। इसी ने तो उसे वरबाद किया, नही तो दुकान मे पूरा हिस्सा था। अपनी नाक कटती है, इसलिए साला दौडा हुआ गया है।

रतनलाल ने उसी दिन अपने भाई की जमानत करा दी। मदनलाल पर यह जुर्म लगाया गया था कि वह शराब पीकर कैश-बाक्स की तरफ लपका था, पर रतनलाल ने वकीलो के जरिये कानून की मोटी किताबों के सहारे साबित कर दिया कि छ: महीने से पगार नही दी, इसलिए कहा-सुनी हो गयी। शराब मदनलाल नही बल्कि घन्टेवाला दुकानदार पीये हुए था। मदनलाल ने नही मारा, बल्कि दुकानदार ने मारा।

नौकरो मे न तो कोई अदालत जाता था, न और कही, फिर भी रत्ती-रत्ती बात का पता लग जाता था। सबने कहा कि रतनलाल अपने लिए दौड-धूप कर रहा है, न कि भाई के लिए। कुछ भी हो मदनलाल छूट गया। उसे छ: महीने की तनख्वाह मिली। लोग तो यहाँ तक उड़ाने लगे कि मदनलाल अब इस दुकान मे भी आ जायेगा, पर रतनलाल ने अपने भाई को छुड़ाने के बाद उसमे कोई दिलचस्पी नही ली। चिल्ला कर एक बडे गाहक से बोला—मेरा काम था—हवालात से छुड़ा देना, सो मैंने छुड़ा दिया। अब वह मेरी बात माने तो मैं उसकी और मदद भी कर सकता हूँ।

गाहक ने यो ही कौतूहलवश पूछा—कौन-सी बात?

रतनलाल बोला—यही कि शराब पीना छोड़ दे।

पर गाहक बोला—मात्रा के अन्दर थोड़ी शराब पीने में कोई हर्ज नही है। बहुत-से लोग पीते हैं···

रामसिंह आदि बड़े ध्यान से इस बातचीत को सुन रहे थे। वे जानते थे कि बाबू रामसरनदास खुद शराब पीते हैं। पास ही मे जो विलायती शराब की दुकान है, उसमें से वह या उनका नौकर कागज में लिपटी एक बोतल ले जाते हैं। बाबू रामसरनदास ने कहा—थोड़ी शराब पीने मे कोई हर्ज नही है!

पर रतनलाल बोला—यह ऐसी बुरी चीज है कि मात्रा कौन ठीक रख सकता है। पहले मदन भी थोड़ी-थोड़ी पीता था, फिर धीरे-धीरे ज्यादा पीने लगा। यह ऐसी चीज है कि बैठकर अकेले मे पी नही जाती। चार यार-दोस्त हों। कुछ कव्वाली चली। फिर आप जानते ही हैं…

बाबू रामसरन अपनी मिठाइयाँ लेकर चले गये। बात वही रह गयी। सुना गया कि रतनलाल ने मदन से कहा—तुम बैठे-बिठाये मुझसे डेढ़-सौ रुपये महीने ले लिया करो, जो तुम्हें वहाँ मिलता था, पर रुपये मैं तुम्हें नही दूंगा, बहू को दूंगा।

मदन इस पर राजी हो गया और लोग मुकदमे की बात भूल गये। कोई कहने लगा, रतनलाल अच्छा आदमी है, कोई बोला, साला बेईमान है।

बिरजू के चले जाने के बाद फिर पार्टी करने की किसी को हिम्मत नही हुई थी। केवल हिम्मत की बात नही थी। एक-दूसरे पर शक हो गया था कि हममें एक मुखबिर जरूर है, नही तो बिरजू ने जो बात कही थी वह मालिक के कानों तक कैसे पहुँच गयी? पर बिरजू को गये हुए दो महीने हो चुके थे। रामसिंह का सब कर्ज उतर गया था, यद्यपि इस बीच उसने बीड़ी की जगह चारमीनार पीना शुरू कर दिया था।

एक बार उसने सोचा था कि कुछ मनिआर्डर घर भेज भी दे, इतने मे किसी ने कहा—पार्टी होनी चाहिए।

अब पार्टी का रूप बदल गया था। एक आदमी खर्च नही देता था, बल्कि सब चन्दा करके शराब और चाट ले आते थे। रात को काम खत्म होने के बाद सब लोग उसी प्रसिद्ध पाकड़ के नीचे जुटे और पीना-पिलाना चलता रहा। उसी दिन रामसिंह के घर से एक चिट्ठी आयी थी जो उसकी जेब में पड़ी थी। पिताजी ने लिखा था—बैल मर गया है, नया बैल लेना है। यदि सौ रुपये नहीं भेजोगे तो काम नही चलने का।

न जाने कैसे चिट्ठी जेब मे रह गयी थी, और वह अखर रही थी।

पार्टी खत्म हुई, तो रामसिंह गम्भीर था। वह जाकर दुकान मे एक बेंच पर सो गया, जैसा कि वह रोज सोता था। जब नींद खुली तो देखा, अरे बाप रे, सामने पुलिस खड़ी है। वह घबड़ाकर उठ खड़ा हुआ। वह याद करने लगा कि कहीं शराब के नशे में उसने किसी को मारा-पीटा तो नही?

एक सिपाही रुखाई से बोला—मदन कहाँ है?

उस समय तक रतनलाल दुकान में आ चुका था। उसने कहा—मदन यहाँ नही है, पर बात क्या है?

सब नौकर दुकान साफ करने और दूसरे कामों मे लग गये थे। रतनलाल ने दारोगाजी को कुर्सी पर बैठाया, चाय-मिठाई मँगाई, तो पता लगा कि रात को

रतनलाल ने मदनलाल की बहू के पास डेढ़-सौ रुपये भेजे थे। मदनलाल ने पत्नी से रुपये माँगे, तो उसने नहीं दिये, इस पर उसने उसे गले में अंगोछा डालकर मार डाला और रुपये तथा गहने लेकर चम्पत हो गया।

अपना-अपना काम करते हुए सब नौकरों ने सारी बात सुन ली, या यों कहा जाय कि किसी ने कुछ सुना, किसी ने कुछ, फिर सब लोगों ने उसे जोड़कर पूरी कहानी बनायी। शराब की दुकान में कर्ज बढ़ गया था, इसलिए दुकानदार ने मदनलाल को शराब देने से इन्कार कर दिया था।

मदनलाल ने अपनी बीबी सरला से कहा कि सौ रुपये दे दो, पचास रख लो घर के लिए। पर बीबी ने एक भी रुपया देने से इन्कार किया। वह बड़े घर की बेटी थी। यों ही काफी दुखी थी, बड़ी मुसीबत में गुजर हो रही थी। बाप के सामने हाथ पसारना नहीं चाहती थी।

ऊपर जो बातचीत हुई, वह तो सबने सुनी, पर इसके बाद रतनलाल और दारोगाजी में क्या बातचीत हुई यह कोई नहीं सुन पाया। बाद को पता चला कि जाने क्या कलाबाजी की गयी—यह साबित कर दिया गया कि सरला ने अपने गले में स्वयं फाँसी लगा ली।

मदनलाल शहर छोड़कर पहले ही लापता हो गया था। उसकी एक पाँच साल की बेटी थी। उसे रतनलाल ने अपने पास रख लिया और बेटी की तरह पालने लगा।

रामसिंह और दूसरे नौकरों को इस बीच बिरजू की खबर मिली कि वह बल्देवा का मुख्य कारीगर बन गया है। यह इतनी अच्छी खबर थी कि लोगों ने कहा कि इस पर पार्टी जरूर होनी चाहिए। रामसिंह बोला—पार्टी हो बेशक, पर शराब नहीं पीएँगे।

सब लोग इस पर राजी हो गये।

जब सब इकट्ठे हुए, तो रामसिंह ने चौंककर देखा कि बोतलें हैं और सारी तैयारियाँ वही है। रामसिंह कुछ कह भी नहीं पाया था कि उसे कई साथियों ने पकड़ लिया और उसका मुँह खोलकर उसे जबर्दस्ती शराब पिलायी गयी। जब उसने एक घूँट पी लिया, तो मजा आ गया। फिर वह खुद ही पीने लगा।

उस दिन उसने बहुत ज्यादा शराब पी, यहाँ तक कि उसे याद ही नहीं रहा कि कब, कैसे वह दुकान पहुँचा।

बस, सवेरे जब आँख खुली, तो उसने देखा कि रतनलाल सामने खड़ा है और उसे ठंडे पानी से नहलाया जा रहा है। वह जल्दी से उठ खड़ा हुआ। रतनलाल उसे गालियाँ दे रहा था—साले, दो-दो कौड़ी के आदमी और शराब पीते हैं। पीकर फिर ठिकाना नहीं रहता कि क्या करें। दुकान की बदनामी होती है ही हिसाब कर लो और निकल जाओ। मुझे ऐसा नौकर नहीं चाहिए।

जब दूसरे नौकरों ने देखा कि मामला यहाँ तक पहुँच गया है, तब उन लोगों ने कुछ-कुछ बात बता दी कि किस तरह वह पीना नहीं चाहता था और उसे, जबर्दस्ती पिला दी गयी। रतनलाल सब कुछ सुनकर चुप हो गया।

उसी दिन रात को जाते समय पिश्ते की बरफी का एक थाल घर पहुँचा देने के बहाने वह रामसिंह को साथ में ले गया। उससे उसने रात की पूरी बात सुनी, अन्त में रामसिंह बोला—मैं अब नौकरी करना नहीं चाहता। एक-न-एक दिन तो आप निकाल ही दोगे, फिर मैं ही क्यों न चला जाऊँ।

रतनलाल ने पूछा—कहाँ जाओगे ?

रामसिंह बोला—घर।

कहने को तो उसने कह दिया, पर वह जानता था कि घर के दरवाजे उसके लिए बन्द हैं। उसने बरसों से कुछ पैसा नहीं भेजा था और इधर तो घर की चिट्ठियाँ फाड़कर फेंक देता था, बोला—घर जाऊँगा।

पर मन-ही-मन सोच रहा था, बम्बई जाऊँगा। वहाँ भी तो बिरजू था, जो शराब पिलाये बिना नहीं छोड़ेगा। यों बम्बई में शराब बन्द है, पर उसने सुना था कि बल्देवा और बिरजू को शराब मिल जाती है। रतनलाल ने रामसिंह को ध्यान से देखा, फिर बोला—घर में कभी रुपया नहीं भेजा, घर क्या जाओगे। वहाँ जाओगे तो मार पड़ेगी।

रामसिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया, तब रतनलाल ने कहा—देखो, मैं अकेला काम सँभाल नहीं पाता। मुझे बल्देवा की तरह एक आदमी चाहिए, जो मेरी दुकान देखे। तुम मेरा काम देखो। कल ही तुम दुकान से दो-सौ रुपये उधार लेकर घर चले जाओ। मिठाइयों का एक डिब्बा भी बँधवा दूँगा।

रामसिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ, बोला—सेठजी, आप मुझे उधार देंगे ?

—क्यों नहीं दूँगा ?

अगले दिन रामसिंह अपने साथियों को बिना बताये दुकान से रुपये लेकर घर चला गया। वहाँ पिता बहुत नाराज रहे। पर उसने नकद डेढ़ सौ रुपये और मिठाई का डिब्बा सामने रखा और कहा—कुछ ऐसा कारण हो गया था कि मैं कुछ भेज नहीं सका था, अब हर महीने पचास रुपये भेजूँगा। मेरी पगार पचहत्तर रुपये हो गयी।

तो पिताजी का सारा गुस्सा काफूर हो गया।

इतने दिनों बाद गाँव में आकर उसका जी खूब लगा, पर छुट्टी सात दिन की थी, वह लौटने की तैयारी करने लगा। माँ ने कहा—जाने के पहले परमहंस जी का दर्शन कर जाओ। वह बहुत ही पहुँचे हुए साधु हैं। मैंने निराश होकर उन्हीं को सवा पाँच आने चढ़ाया था कि तुम आ गये।

माँ की बात मानकर रामसिंह परमहंस का दर्शन करने गया, तो देखते ही

पहचान गया कि और कोई नहीं, मदनलाल है, जिसने डर के मारे दाढ़ी-जटा बढ़ा ली है। मदनलाल भी उसे पहचान गया। तब रामसिंह ने माँ से और दूसरे भक्तों से कहा—आप लोग जरा हट जाइये, मुझे साधुजी से जरूरी बात करनी है।

मौका पाते ही रामसिंह ने बता दिया—आपके विरुद्ध कोई वारंट नहीं है। सेठजी ने सब कुछ ठीक कर दिया। आप चाहे तो लौट सकते है।

तब मदनलाल ने कहा—अब तक मैं भगोड़ा था, पर अब मैं सचमुच साधु हो गया। मै जीवन से ऊब गया हूँ।

रामसिंह बोला—पर इस तरह भीख माँग कर खाने से क्या फायदा। चलिये, वहाँ लौट चलिये। बस, एक पक्का इरादा कर लीजिए कि शराब कभी नही पीनी है।

मदनलाल बोला—शराब तो मेरा बड़ा भाई भी पीता है, पर रात के समय छिप कर, थोड़ी-सी।

रामसिंह बोला—आप वैसा नही कर सकते तो आपको शराब नही पीनी चाहिए। मै तो समझता हूँ कि किसी के लिए भी शराब अच्छी नहीं है। हजार में एक आदमी दवा की तरह शराब पी सकता है, बाकी शराब नहीं पीते, बल्कि शराब उन्हें पीती है।

मदनलाल को भीख माँग कर या ढोंग रचकर पेट चलाना पसन्द नही था। उसने कहा—ढोंग नही रचूँगा, तो लोग पैसे भी तो नही देंगे।

रामसिंह ने कहा—आप चलिये, दुकान मे आप बैठा करिये। थोड़े दिन में सेठजी आपके हाथ में सब कुछ छोड़ देंगे। मैं आपके नीचे काम करूँगा।

मदनलाल बहुत दुखी था कि उसने अपनी बीवी की हत्या कर डाली, पर जो हुआ, सो हुआ। बेटी की याद उसे सताती थी।

वह उसी गाड़ी से दिल्ली लौट आया, जिससे रामसिंह लौटा।

चारों तरफ के गाँव मे मशहूर हो गया कि किशुन दिल्ली का बड़ा आदमी हो गया है और वह साधु बाबा को अपने साथ ले गया, जिससे कि और तरक्की करे।

जब रतनलाल ने देखा कि मदन सुधर गया है, तो उसने मदन को कनाट प्लेस में एक दुकान खोल दी, पर रामसिंह को उसने अपने साथ रखा। उसने रामसिंह को आशा दिलायी है कि फर्म का नाम 'रतनलाल रामसिंह' कर दूँगा।

न्याय की गति

जब दुखहरण हवालात मे बन्द कर दिया गया, तब उसे होश आया और मालूम हुआ कि उसने क्या किया है। अब तक तो वह जैसे नशे में था, सब कुछ आवेश में करता गया था। वह दो पहर के समय एकाएक किसी काम से घर आया, तो उसने देखा कि उसके खपरैल वाले घर का दरवाजा भीतर से बन्द है। समझा, कि उसकी स्त्री सुमित्रा भीतर सो रही होगी। उसने बाहर से दरवाजे पर धक्का दिया, पर वह नही खुला। फिर समझा, कि गहरी नींद मे होगी, सो उसने दरवाजे को भड़भड़ाया। जब फिर भी दरवाजा नही खुला, तब उसे शक हुआ कि कही सुमित्रा ने आत्महत्या तो नही कर ली। शहर की यह बीमारी गाँव मे भी काफी फैल चुकी थी। पर सुमित्रा को आत्महत्या करने का कोई कारण तो था नही। इस प्रकार वह सोचता गया, और दरवाजा पीटता गया। अंत मे जब उसने देखा, कि ऐसे काम नही चलेगा, तो दरवाजे पर बहुत जोर का धक्का मारा। दरवाजा झनझना कर गिर पड़ा।

उसने सामने जो दृश्य देखा, उसे देखकर एक बार तो उसे अपनी आँखो पर विश्वास ही नही हुआ। सुमित्रा एक कोने मे खड़ी थर-थर काँप रही थी। उसके कपड़े-लत्ते अस्त-व्यस्त थे, आँखें लाल हो रही थी, और चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थी। दुखहरण कुछ समझ नही पाया, कि मामला क्या है। इतने मे उसी कमरे के दूसरे कोने से उसका पड़ोसी रामचरण तीर की तरह निकला, और बिना कुछ कहे-सुने खुले दरवाजे से निकल गया। एक सेकेण्ड के सौवें हिस्से मे ही वह काड हो गया। पर इससे भी फुर्ती से जो कांड हुआ, वह यह था, कि दुखहरण ने दीवार पर टँगे हुए फर्से को उतार लिया, और लपक कर रामचरण के पीछे दौड़ा।

फिर उसके बाद क्या हुआ? यह याद करने पर ही उसे याद आया। एक वार में ही उसने रामचरण को गिरा दिया, और दूसरे वार में तो वह खतम ही हो गया। अब वह अपनी स्त्री को मारने के लिए चला। पर तब तक गाँव वाले इकट्ठे हो गये थे। फिर वह जहाँ सुमित्रा को छोड़ गया था, वह वहाँ मिली भी नही। लोगों ने उसे पकड लिया, उसका फर्सा छीन लिया गया, और थोड़ी ही देर

में वह थाने में बंद कर दिया गया। वहीं पर उसे सारी बातें एक-एक कर के पहले बिना तरतीब के और बाद में तरतीब से याद आईं। हल और बैल तो खेत मे ही छूट गये। वह तो एक रस्सी लेने घर आया था। हल एक जगह से कमजोर हो गया था, सो उसे वहां बांधना था। और जरा देर मे यह सारा कांड हो गया। उसके मन में हल बैल के लिए चिंता होने लगी, पर...नही, अब कोई चिंता नही रही। जब कुछ भी नही रहा, तो वह हल, बैल की चिंता क्यों करे ? एक बार उसने सोचा, कि सुमित्रा कहां गयी ? पर फिर सोचा कि अब सुमित्रा ने उसे इस प्रकार धोखा दिया, तो अब उसे किसी से मतलब नही।

पुलिस तथा अदालत के सामने दुखहरण ने सारी बातें स्वीकार कर ली। छोटी अदालत ने उसे सेशन के सुपुर्द कर दिया। अब मुकद्दमा सेशन में गया, तो वह मिस्टर सेठ नामक एक अधेड़ उम्र के जज के सामने पेश किया गया। न मालूम क्या बात हुई कि शुरू से ही जज साहब ने अभियुक्त के प्रति बहुत विरोधी रुख धारण कर लिया। दुखहरण को सरकार की तरफ से एक वकील मिले, जो अपना काम बहुत सच्चाई के साथ कर रहे थे। वे बार-बार जज साहब के सामने इसी बात को रखते थे, कि अभियुक्त ने जो कुछ किया, वह बहुत भारी उत्तेजना के वशीभूत होकर किया। वकील का यह कहना केवल भावना के प्रति एक निवेदन मात्र ही नही था, कानून की दृष्टि से भी यह एक उचित कारण था। पर जज मिस्टर सेठ इस बात को जब भी सुनते, तो झुंझला जाते।

मुकद्दमे के आरम्भ में ही मिस्टर सेठ ने एक दिन सफाई के वकील को डाँट दिया। बोले—यह क्या आप बार-बार 'उत्तेजनावश, उत्तेजनावश' कहते हैं ?

सफाई के वकील ने कहा—हुजूर, सुमित्रा उसकी ब्याही हुई स्त्री थी। जब उसने उसे रामचरण के साथ ऐसी आपत्तिजनक अवस्था में देखा, तो...

बीच में ही बात काटकर, मिस्टर सेठ बोले—तो क्या हुआ ? इससे उसे यह हक थोड़े ही हो गया, कि वह उसे मार डाले ? अब मनुष्य गुफा मे रहने वाले नही रहे, अपने पूर्वजों से आगे बढ़ चुके है। कहकर वे हँस पड़े।

उनके मन में इस समय अपने वर्तमान जीवन की कुछ बातें घूम गईं। बहुत दिनों से वह अपने एक मित्र श्री लाल की स्त्री से फँसे हुए थे। यह नही, कि वह अपनी स्त्री को प्यार नही करते थे। पर वह पाँच बच्चों की माँ थी। घर के काम-काज तथा रिश्तेदारी आदि से ही उसे फुर्सत नही मिलती थी। और लड़कों, लड़कियों के लिये वर, वधू खोजने का काम भी था। सो सेठ साहब क्लब जाया करते थे, और वहीं पर उन्होंने इस अनमोल रत्न श्रीमती लाल को, ढूंढ निकाला था। और श्रीमती लाल के साथ उन्होंने अपने को भी ढूंढ निकाला था। समझे थे कि बूढ़े हो चुके हैं। पर यौवन फिर फूल देने लगा।

अदालत में जब भी रामचरण की बात सामने आती थी, तो वह अपनी

सोचे बिना नहीं रहते थे। वह दुखहरण जैसे व्यक्तियों से सचमुच घृणा करते थे। एक दिन उन्होंने अभियुक्त को कह भी दिया—"देखो जी, अगर तुमने यह देखा, कि तुम्हारी बीवी ने तुम्हें धोखा दिया, तो तुम उससे अलग हो जाते, या दूसरी शादी कर लेते। पर यह क्या अहमकपन था, कि फरसा लेकर उसके प्रेमी को खत्म कर दिया ?—कहकर उन्होंने मुँह बना लिया। सचमुच सभ्यता के इस युग में ऐसे लोग बड़े मिसफिट हैं !

जज साहब यों तो अदालत में अभियुक्त से बोल रहे थे, पर वास्तव में यह उपदेश वे अपनी चहेती के पति श्री लाल को दे रहे थे, जिससे उन्हें कुछ-न-कुछ डर तो बना ही रहता था। जज साहब इतने मूर्ख नहीं थे, कि श्री लाल के घर जाएँ, जैसा रामचरण ने किया था। वह तो अपनी प्रेयसी को किसी एकान्त स्थान पर अत्यन्त गुप्त रूप से, ताकि कोई इस प्रकार का खतरा पेश न आये, बुला लेते थे। अभी-अभी यह महिला स्वास्थ्य-सुधार के बहाने नैनीताल पहुँची थी। उसके पति उसके साथ न जा सके थे। पर जज साहब छुट्टी लेकर गये थे, और पास ही के बँगले में टिक गये थे। वह भी स्वास्थ्य सुधारने के बहाने गये थे। और उनके घर के लोग समझते थे, कि वह किसी सरकारी काम से बाहर कमीशन पर गये हैं। पर मान लीजिये, कि उनकी प्रेयसी का पति कहीं नैनीताल पहुँच जाता, तो कितनी असुविधा होती। और यही नहीं, कहीं फरसा लेकर पहुँचता, तो ? नहीं, यह तो अकल्पनीय है।

इसी कारण जब सुमित्रा गवाही देने आयी, तो जज साहब ने भरसक यही प्रयत्न किया, कि वह यही कहे कि कोई उत्तेजना उत्पन्न करने वाली परिस्थिति नहीं थी। उनका इशारा पाकर, इस्तगासे का वकील भी यही प्रमाणित करने की चेष्टा कर रहा था कि उत्तेजना की कोई बात नहीं थी, सुमित्रा और रामचरण बाहर खड़े बात कर रहे थे, और दुखहरण ने उन पर ख्वामख्वाह हमला कर दिया। सुमित्रा के लिए भी इस प्रकार की गवाही देना आसान था। सफाई पक्ष के वकील ने फिर भी कुछ काम बना ही लिया। पर जज साहब अंत तक इसका विरोध करते रहे। दुखहरण तो सारी कार्रवाई के प्रति उदासीन-सा हो रहा था; पर जब सुमित्रा ने भरी अदालत में यह कहा, कि वह खड़ी होकर रामचरण से बात कर रही थी, और दुखहरण ने आकर रामचरण पर पीछे से फरसे से हमला कर दिया, तो उससे रहा नहीं गया। वह एकाएक चिल्ला कर, बोल पड़ा—धर्म से बोल, कि जो कुछ तू कह रही है, वह सच है ?

उसकी डाँट सुन कर, सुमित्रा कुछ घबरा-सी गयी। पर फौरन सरकारी वकील ने उसे संभालते हुए कहा—तुम इसकी मत सुनो। मेरे सवालों का जवाब दो।

फिर उसने अदालत से कहा, कि गवाह को अभियुक्त की धमकियों से बचाया

जाय। इस पर जज साहब ने कठघरे की तरफ से संतरियों को इशारा किया, और उन लोगों ने दुखहरण को जबरदस्ती पकड़ कर बेंच पर बैठा दिया। जज साहब ने रुखाई के साथ कहा—दुखहरण, तुम अगर गवाह को छेड़ोगे, तो तुम्हे हथकड़ी पहना दी जायेगी। तुम्हारे वकील मौजूद हैं। जो कुछ कहना हो, उन्ही से कहो।

इस प्रकार न्याय का यह नाटक आगे बढ़ता गया। दो महीनों तक मुकद्दमा चलता रहा। जज साहब ऐसे समाज-विरोधी व्यक्ति को फाँसी देना चाहते थे, पर यह जानते थे, कि ऊँची अदालत मे फाँसी की सजा नही रह सकती, इसी कारण उन्होंने दुखहरण को काले पानी की सजा दी।

इसके बाद दुखहरण एक सेन्ट्रल जेल मे भेजा गया, क्योंकि बड़ी मियाद के कैदियों को जिला जेलो मे रखने का नियम नही है। वहाँ पर उसने एक दूसरी ही दुनिया पायी। जेलर एक एंग्लो-इण्डियन था। वह इतना दुष्ट था, कि उसके नाम से सारे कैदी थर-थर काँपते थे। न जाने कितने कैदियों को उसने पीट-पीट कर मार डाला था। मार कर वह डाक्टर से मिल कर यह लिखवा दिया करता था, कि कैदी न्यूमोनिया या किसी अन्य भयानक रोग से मर गया। कोई पैसे वाला आदमी यदि जेल मे फँस कर आ जाता था, तो वह छल, बल, कौशल से उसकी सारी जायदाद दुह लेता था। जेल मे उसके कुछ एजेंट लगे हुए थे, जो उसे बताते रहते थे, कि किसके साथ क्या करने से पैसे वसूल होंगे। इन बातो के अलावा वह बड़ा दुश्चरित्र भी था। सेन्ट्रल जेल से लगी हुई स्त्रियों की जेल भी थी। वहाँ तो उसकी दाल नहीं गल पाती थी, पर वहाँ काम करने वाली स्त्री-वार्डरों तथा अन्य स्त्रियों के साथ वह हमेशा जबर्दस्ती किया करता था। अपने यहाँ के दो-एक भारतीय वार्डरों की स्त्रियों से भी उसकी साँठ-गाँठ थी। उसके लिए इन स्त्रियों से दोस्ती करना बहुत आसान इस कारण था, कि वही वार्डरों की ड्यूटी लिखा करता था। ऐसे वार्डरो की ड्यूटी वह हमेशा रात तो डाला करता था, जिससे कि उसकी दुष्टता में कोई बाधा न पहुँच सके।

हाँ, तो इसी जेलर के सामने दुखहरण पेश किया गया। जेलर का नाम मिस्टर मूडी था। मूडी ने दुखहरण की तरफ देखा भी नही। पर जब उसने उसका वारट पढ़ा, तो हँस पड़ा, और दुखहरण को इस प्रकार देखने लगा, मानो वह कोई अजीब किस्म का जन्तु हो। उसे तो ऐसे व्यक्ति बहुत हास्यजनक मालूम होते थे। वह ठहरा कर हसा।—हा-हा-हा-हा! टुम बड़ा बहाडूर है!

पास खड़े तजर्बेकार लोग समझ गये, कि अब दुखहरण की खैरियत नही।

दुखहरण बोला—हुजूर, नही... जिला जेल मे रहते-रहते दुखहरण ने यह सीखा था, कि हर एक को हुजूर कहना चाहिये।

मूडी फिर हँसा। बोला—टुमारी बीवी बहुट खूबसूरट है?

दुखहरण कुछ नहीं बोला। वह सिर नीचा किये, जमीन की तरफ देख रहा

था। इतने मे मूडी ने पता नही कुछ इशारा किया या क्या हुआ, कि आठ-दस आदमी डंडे लेकर, उस पर पिल पड़े। वह गिर गया, और थोड़ी ही देर मे बेहोश हो गया। तब उसे उठा कर अस्पताल भेज दिया गया। मूडी ने अपनी हिन्दी मे अपने मुसाहिबों से जो कुछ कहा, उसका सारांश यह है—"यही लोग दुनिया को तबाह किये हुए हैं। जब तुम्हारी बीबी तुम से राजी नही है, तो उसको जाने दो। उसके पीछे किसी की जान क्यों लेते हो ?" फिर बिगड़ कर, अँग्रेजी में बोला—ये जज भी साले नम्बर एक के गधे होते हैं। ऐसे असभ्य आदमी को फाँसी देकर छुट्टी करते। यह नही, इसकी बीस साल की सजा करके, यहाँ भेज दिया। इसीलिए तो हमें अपने हाथो से सजा देनी पड़ती है। —कह-कर, वह मूँछों पर ताव देता हुआ वहाँ से चला गया।

खैर, दुखहरण के भाग्य मे जीना बदा था। वह अच्छा हो गया, और उसे चक्की दी गयी।

इसी प्रकार बीच-बीच मे उस पर मार पड़ती। पर वह मरने से इनकार करता गया। सब दुखों को सह कर भी वह जीवित रहा।

कायदे के अनुसार हाईकोर्ट मे उसके मुकद्दमे की अपील जेल की तरफ से की गयी। यह अपील जस्टिस डुग्गल नामक जज के सामने गयी। जस्टिस डुग्गल ने अपील को बड़े ध्यान से सुना। वह बहुत बुद्धिमान जज समझे जाते थे, और चीफ जस्टिस यग के प्रिय पात्रों मे से थे। जब देखो, तभी चीफ जस्टिस की उनके यहाँ दावत रहती थी। दुष्ट लोग यह कहते थे, कि उनकी स्त्री लेडी डुग्गल चीफ जस्टिस से फँसी हुई थी, और इसी कारण चीफ जस्टिस के यहाँ उनकी दावत रहा करती थी। नाचो मे अकसर चीफ जस्टिस और लेडी डुग्गल एक साथ नाचा करते थे। इन दिनों यह अफवाह बहुत बढ गयी थी। यहाँ तक कि यह बात जस्टिस डुग्गल के कानो तक भी पहुँच चुकी थी, और उन्हे भी कुछ बातों से शक होने लगा था। इधर वह चीफ जस्टिस की एक दावत में यह कह कर नही गये थे, कि उनकी तबियत ठीक नही है। वह यह उम्मीद करते थे, कि लेडी डुग्गल भी उस दावत मे न जायेंगी। पर वह एक सहेली से मिलने का बहाना करके चली गयी। जस्टिस डुग्गल उस दिन से और भी परेशानी मे रहने लगे। वह कुछ समझ नहीं पा रहे थे, कि क्या करें ? कभी-कभी वे आत्महत्या की बात सोचते थे, तो कभी पेंशन लेने की बात।

इतने में यह मुकद्दमा उनके सामने आया। इस्तगासे की दलीलो को सुनने के बाद जस्टिस डुग्गल ने कहा—मैं अभी कुछ नही कहूँगा। पर मुझे ऐसा मालूम होता है, कि विद्वान सेशन जज ने कानून के अर्थ का अनर्थ कर डाला। जब तक परिवार-प्रथा कायम है, तब तक पति को यह आशा करने का पूर्ण अधिकार है, कि उसकी स्त्री उसके प्रति सच्ची रहे। दुखहरण की तरफ से जो प्रबल उत्तेजना का

कारण पेश किया गया है, उसे मैं अवज्ञा की दृष्टि से नही देख सकता। और रामचरण के प्रति तो किसी को कोई सहानुभूति हो ही नही सकती।

तीन दिनों तक मुकद्दमे की सुनवाई होती रही। अंत में जस्टिस डुग्गल ने दुखहरण के ऊपर से 302, यानी हत्या का दफा उठा कर, उस पर 304, यानी आकस्मिक नर-घात का दफा लगा दिया, और उसकी सजा घटा कर बीस साल से दो साल कर दी। अपने फैसले में जस्टिस डुग्गल ने सेशन जज की इस कारण कड़ी आलोचना की कि उन्होंने उत्तेजना की बात पर ध्यान ही नही दिया, जो सारे मुकद्दमे का केन्द्र-बिन्दु था।

दुखहरण इस समय तक डेढ़ साल कैद काट ही चुका था। सब कैदियों की तरह उसे दो-तीन महीनों की छूट मिली, और वह जल्दी ही छूट गया। दुखहरण यह समझ ही नही पाया, कि क्यों उसे पहले बीस साल की सजा हुई, क्यों उसे जेलर बराबर मारता था और क्यों हाईकोर्ट ने उसकी सजा घटा दी। और कैसे समझ पाता बेचारा ये बातें? बड़ों की बड़ी बातें।

पहलगाम से पत्र

पहलगाम
12 मई, 1963

प्रिय रजनी दीदी,

तुमने मुझे इसलिए बधाई दी है कि जब सब लोग लू की लपटों में झुलस रहे है, तब मै कश्मीर की घाटियो मे चैन की बंशी बजा रही हूँ। चैन की बंशी— ये शब्द तुम्हारे है।

सचमुच जब प्रतिवर्ष मैं अपने परिवार के साथ किसी-न-किसी हिल स्टेशन मे इन दिनो होती हूँ, तो मुझे भी ऐसा अनुभव होता था कि मैं बड़ी सौभाग्य-शालिनी हूँ, पर इस बार कुछ ऐसा हो गया, जिसे मैं ठीक-ठीक समझ नही पा रही हूँ कि मुझे दिल्ली छोडकर आना बहुत बुरा लगा। तुमने लिखा है कि एक ही बार तुम्हे कश्मीर आने का मौका मिला और वह तुम्हारे लिए एक स्वप्न लोक बन गया है। ठीक है, कश्मीर बहुत सुन्दर है। बहुत-से लेखकों ने इसके सौन्दर्य-वर्णन मे कलम तोड़ दी है। अभी एक लेखक ने डल झील के बारे मे लिखा है कि वह पहाडों की बाहों मे सोती है और आँखें आसमान से लडाती है। पहले होता तो मुझे यह वर्णन बहुत भोडा लगता, पर कुछ ऐसा हो गया है कि अब मुझमें सहिष्णुता बहुत बढ गयी है और जिस मात्रा मे सहिष्णुता बढी है, उसी मात्रा मे जिज्ञासा बढ़ी है।

बाहों में सोती है, मुझे यह कल्पना अब भी अच्छी नही लगती क्योंकि बच्चे ही माँ की बाहों में सोते हैं, सात-आठ साल या अधिक-से-अधिक दस साल पहले तक मैं भी माँ की बाहों मे सोती थी, पर लेखक ने पहाड की बाहो मे सोने की जो बात लिखी है, वह कुछ और है, ऐसा मुझे सन्देह होता है। मैंने बताया न कि जिज्ञासा मेरी बढ गई है इसीलिए पहाड़ की बाहो के बाहों शब्द मे मैं गलबहियाँ और उससे भी आगे छोड़ो मोरी बहियाँ आदि रेडियो और सिनेमा मे होने वाले गीतों की तरफ गयी। मैंने इन शब्दो पर उनके अर्थों पर विचार किया तो पूरी बात समझ में नही आयी, पर मुझे एक ऐसे संसार का आभास मिल रहा है जो

पहलगाम
19 मई, 1963

प्रिय रजनी दीदी,

तुम्हारा पत्र मिला, बड़ी निराशा हुई। तुम्हारी सारी बातें कल्पनात्मक लगी, फिर भी मैंने बार-बार तुम्हारा पत्र पढ़ा। तुमने मुझे बिल्कुल गलत समझा है। तुम कहती हो कि इतनी चीजें मैंने पढ़ीं, उनमें से उस लेखक की वे पंक्तियाँ ही याद क्यों रहीं कि डल झील पहाड़ों की बाहों में सोती है। इसका कारण केवल अभिव्यक्ति की सुन्दरता है। डल झील का यह वर्णन मुझे बहुत सुन्दर लगा, इसलिए याद हो गया। हाँ, यह बात सही है कि वह आसमान से आँखें लड़ाती है, इस पर मैंने ध्यान नहीं दिया। तुम कहती हो कि वह दूसरा सोपान होगा, तब मैं उस पर ध्यान दूँगी, जब उस पर पहुँचूँगी।

तुमने मुझे बहुत गलत समझा। मेरी शून्यता की भावना के सम्बन्ध में तुमने यह लिखा है कि अब मेरे जीवन में किसी के पदार्पण की आवश्यकता है, जिससे वह शून्यता भरेगी। तुम्हारी अपव्याख्या तो उस समय बिल्कुल पराकाष्ठा में पहुँच गयी जब तुमने यह लिख डाला कि मृत्यु भी अब मुझे श्याम के रूप में दिखाई देती है, तुम कहती हो मेरे लिए सारा संसार ही श्याममय होता जा रहा है, इस प्रकार तुमने मुझे उन साधारण लड़कियों में रख दिया है जो सस्ते गीत और साहित्य पढ़ कर बारह वर्ष की उम्र से ही अपने को अजीब रूप में कल्पित करने लगती हैं। मेरे माँ-बाप ने मुझे जो शिक्षा दी है, उसमें इस प्रकार की बाजारू बातें सम्भव नहीं हैं। मैंने तो यों ही लिख दिया कि मेरा जीवन कुछ शून्य लगता है, असल में ऐसी कोई बात नहीं है। तुम्हें तो मुझे इस बात के लिए बधाई देनी चाहिए थी कि मैं अच्छे खाते-पीते घराने में पैदा होकर भी अब यह जरूरी नहीं समझती कि गर्मियों में समतल से भागकर पहाड़ी स्थानों में आश्रय लिया जाय। उल्टा तुमने इसका अर्थ यह लगाया कि मुझे किसी युवक से प्रेम हो गया है, उसी के कारण मैं गर्मियों में भी दिल्ली रहना चाहती हूँ। तुमसे मेरा कुछ छिपा नहीं है। फिर क्यों ऐसी बेवकूफी की बात लिख दी? बुरा न मानना, मैं तुमसे नाराज नहीं हूँ, केवल दुखी इस बात पर हूँ कि तुमने मुझे बहुत साधारण लड़की समझ लिया।

पत्रोत्तर शीघ्र देना। हाँ, यदि तुम यह समझो कि तुमसे बिछुड़ने का मुझे बहुत कष्ट है तो वह बात सही है।

तुम्हारी,
—पुष्पा।

पहलगाम
29 मई, 1963

प्रिय रजनी दीदी,

तुम्हारा पत्र मिला और बहुत क्रोध आया। तुमने विद्यापति का जो पद लिखा है, उसे मैंने बार-बार पढ़ा—

सखि, कि पुछसि अनुभव मोय।
से हो पिरित अनुराग बखानिये
तिल तिल नूतन होय ॥2॥
जनम अवधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपति भेल।
सेहो मधु बोल स्रवनहि सूनल
स्रुति पथ परस न भेल ॥4॥
कत मधु जामिनि रभस गमाओल
न बूझल कइसन केल।
लाख लाख जुग हिय हिय राखल
तइयो हिय झुडल न गेल ॥6॥
कत बिदगध जन रस अनुमोदई
अनुभव काहू न पेख।
विद्यापति कह प्राण जुड़ाएत
लाखे न मिलल एक ॥8॥

मैंने विद्यापति की रचनाएँ पहले भी थोड़ी-बहुत पढ़ी हैं, पर मुझे यह तिल-तिल नूतन होना, नयन न तिरपति होना समझ में नहीं आता और न यह समझ में आता है कि लाख-लाख जुग हिय-हिय राखल तइयो हिय झुड़ल न गेल। यह बात सही है कि राजीव इधर दिल्ली में हमारे घर बहुत आता रहा है, पर क्या तुम्हें पता नहीं है कि वह हमारा किसी तरह का भाई लगता है। उसके आने से और मेरी शून्यता से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं बिल्कुल उसे प्यार नहीं करती। मैं किसी से प्यार नहीं करती। वह भी मेरे निकट टीपू की तरह ही है। वे लोग शिमला गये, इसीलिए मैं अबकी बार पिताजी को शिमला चलने के लिए कह रही थी, यह भी तुम्हारा अनुमान गलत है। तुम बिल्कुल गधी हो। तुमने ऐसी बात पत्र में कैसे लिख दी, यह मेरी समझ में नहीं आता। मैंने इस पत्र को भी (कई बार पढ़ने के बाद) उसी लिट्टर के हवाले कर दिया जहाँ मैं रोज नियम से विटामिन की गोलियाँ डालती हूँ। मैं कभी तुम्हे पत्र नहीं लिखूँगी, गोकि अभी कम-से-कम सवा महीने यहाँ रहना पड़ेगा।

तुम्हारी,
—पुष्पा।

पहलगाम
14 जून, 1963

दीदी,

मैं केवल भद्रता के नाते तुम्हारे पत्र का उत्तर दे रही हूँ। मुझे तुम्हारी यह शरारत बिलकुल पसन्द नहीं आई कि तुमने पत्र के साथ राजीव का फोटो भेज दिया। मैंने गुस्से मे फौरन ही फोटो के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। मैं यह महसूस करती हूँ कि मैंने यह बुरा किया, क्योंकि उस बेचारे का क्या कसूर है सिवा इसके कि तुम उसे जानती हो और वह एक बेवकूफ नवयुवक है जिसने तुम्हें भाभी-भाभी करके सिर पर चढा रखा है। यदि उसको मालूम होता कि तुम पीठ पीछे उसके निर्दोष आने-जाने की इस प्रकार अपव्याख्या करोगी, तो वह कभी तुमसे नही मिलता।

तुम्हारे सुझाव पर मैंने अपने दिल को बहुत गहराई के साथ टटोला। मैं एक पहाड़ पर जाने वाली लाठी हाथ मे लेकर पुराने शिकारगाह की तरफ निकल गयी। टीपू को भी साथ नही लिया और जगह-ब-जगह पाइन के वृक्षों के नीचे बैठकर उनके सूखे पत्तो को सूँघती हुई सोचती रही कि क्या सचमुच ऐसी कोई बात है? पर नही। राजीव से मेरा कोई सम्बन्ध नही। वह तो मुझे उसी प्रकार लगता है जैसे टीपू। मैंने अपने को पूछा कि क्या वह मेरी हृदय की शून्यता की गहराइयों को भर सकता है? तो मैंने पाया कि वह तो किसी लायक नही है। वह जरूर (यहाँ मैं सच्ची बात लिखूँगी) उस संसार की कुछ झलक देता है, जहाँ से शायद कोई हवा आए और वह मेरी बाँसुरी को मुखरित कर दे। पर वह स्वयं कुछ भी नही। वह तो बच्चा है। हाँ, उसका आना-जाना मुझे अच्छा लगता है, पर इसका कोई अर्थ नही है। मैंने भी कुछ उपन्यास और काव्य आदि पढ़े है, मैं उसे कतई एक जीवन-सगी के रूप में नही चाहती। सच तो यह है कि जीवन-सगी पाने के सम्बन्ध में मुझमे कोई व्याकुलता नही है, बल्कि इससे भी आगे बढ कर लिखूँ तो मुझे यह लगता है कि जीवन-सगी प्राप्त करने की धारणा ही गलत है, जिसका मेरे निकट कम-से-कम कोई अर्थ नही है। ऐसा लगता है कि समाज के कल्याण के लिए इस झूठ का जानबूझकर प्रचार किया गया है कि हर एक को एक जीवन-सगी या जीवन-सगिनी चाहिए। पर प्रकृति भी मुझे पूरी शान्ति नही देती।

परसाल की याद है या उससे पहले सालों को लो, मैं पहाड़ो मे आकर किस प्रकार खो जाती थी कुछ-कुछ वैसा आनन्द आता है, जैसे मुझे याद पड़ता है कि जब मै बच्ची थी तो पिताजी की गोद मे यही आनन्द आता था। पहाड़ो को मैं पिता के ही विराट रूप की शक्ल मे लेती जा रही हूँ पर अब पहाड़ो की गोद भी मुझे आनन्द नही देती। मुझे याद है कि परसाल भी हम लोग यहाँ आये थे और अन्त

की ओर हृदय में कुछ शून्यता का अनुभव होने लगा था। जब-जब ऐसा अनुभव होता तो मैं पाइन के नीचे पड़ी हुई सूखी पत्तियों को भींच कर सूँघ लेती थी, उससे मेरा सब दुख दूर हो जाता था। पर अब की बार वह टोटका भी बेकार हो गया। पिताजी से मैं बहुत दूर हो गई हूँ। माँ मुझे समझती नहीं है और तुम इस प्रकार आस्तीन की साँपिन निकल गयी कि व्यर्थ में मुझ पर लांछन लगा रही हो। शायद इस प्रकार पीडन करके तुम्हें सुख मिलता हो, जैसे नये-नये कालेज में आये हुए छात्रों का रैगिंग होता है। यह तुमने कैसे लिख दिया कि दिल्ली मेरी कल्पना में जून के महीने में भी इसलिए अच्छी लग रही है कि राजीव से इसका सम्बन्ध है। पर राजीव तो शिमला में है। इस प्रकार यह प्रमाणित हो गया कि तुम कलमुँही हो, बेईमान हो, तुम्हारी दुम कट चुकी है, इसलिए तुम चाहती हो कि सबकी दुम तुम्हारी तरह कट जाए। इसीलिए तुमने विद्यापति का वह पद लिख कर भेजा जो मुझे बिल्कुल अस्वाभाविक लगता है।

विद्यापति मेरे भावों की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ है। इसके बजाय उर्दू कवि मजाज के कुछ शेर मेरे देखने में आये हैं जो मेरी भावनाओं को कहीं ज्यादा स्पष्ट करते हैं। मैंने नोटबुक में उन्हें नोट कर रखा है। वे इस प्रकार है—

दिल में एक शोला भड़क उट्ठा है, आखिर क्या करूँ?
मेरा पैमाना छलक उट्ठा है, आखिर क्या करूँ?
जख्म सीने का महक उट्ठा है, आखिर क्या करूँ?
ऐ गमे दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ?

जी में आता है ये मुर्दा चाँद-तारे नोच लूँ,
इस किनारे नोच लूँ और उस किनारे नोच लूँ,
एक-दो का जिक्र क्या, सारे के सारे नोच लूँ,
ऐ गमे दिल क्या करूँ ऐ वहशते दिल क्या करूँ?

लेके एक चंगेज के हाथों से खंजर तोड़ दूँ,
ताज पर उसके जो दमकता है जो पत्थर तोड़ दूँ,
कोई तोड़े या न तोड़े मैं ही बढ़ कर तोड़ दूँ,
ए गमे दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ?

झिलमिलाते कुमकुमों की राह में जंजीर-सी,
रात के हाथों में दिल की मोहनी तस्वीर-सी,
मेरे सीने पर मगर दहकी हुई शमशीर-सी,
ऐ गमे दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ?

मुझे अफसोस है कि तुम्हारे बहकावे में आकर मैंने राजीव का फोटो फाड़ दिया। तुम निश्चित जानो कि अब मैं राजीव को अपने पास फटकने नहीं दूँगी और अब अन्तिम बात तुम्हें बताती हूँ, जिससे तुम्हारी पुतलियों पर पड़ा हुआ

जाला शायद मिट जाए, कि माँ ने मुझे बताया है कि राजीव की सगाई किसी आई० सी० एस० की बेटी से तय हो चुकी है और माँ कह रही थी कि श्रीनगर के एम्पोरियम से उसके लिए कोई अच्छा-सा उपहार लेना है।

मुझे इस खबर से कोई ग़म नहीं है, बल्कि खुशी है कि तुम्हारे ऐसों का मुँह तो काला होगा। मैं भी एम्पोरियम से अपनी तरफ से कोई एक बहुत नफ़ीस चीज खरीदूंगी जिसे मैं राजीव को उपहार के रूप में दे सकूँ। अब तो झगड़ा न करोगी?

तुम्हारी,
—पुष्पा।

प्रज्ञाचक्षु

जिस दिन किसी को फाँसी लगनी होती थी, जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर मजुमदार उस दिन शराब पीकर आते है, यह सभी जानते थे। यो जेलर रामलाल न तो कोई धर्मात्मा व्यक्ति था और न उसे शराब से कोई परहेज था, बशर्ते कि तनख्वाह के रुपयो से शराब न खरीदनी पड़े, फिर भी उसे मेजर मजुमदार का इस प्रकार शराब पीकर आना खटकता था। यों मेजर मजुमदार कभी शराब पीकर दफ्तर नही आते थे, पर फाँसी के दिन वह अवश्य शराब पीकर आते थे और बहुत अधिक पीकर आते थे। उनका चेहरा लाल सुर्ख होता था, पैर लडखड़ाते थे, इतने लड-खड़ाते थे कि औपचारिक रूप से आया हुआ मजिस्ट्रेट भी इसे लख लेता था।

साल मे तीन-चार फाँसियाँ इस जेल में लग ही जाती थी। फिर भी मेजर उनके आदी नही हो पाये थे। इन दिनों कुछ संख्या बढ़ती ही गयी है।

खैर, रामलाल को बढ़ती हुई सख्या से कोई परेशानी नही थी। कौन जाने जज लोग इस प्रकार सरकार के परिवार नियोजन वाले कार्यक्रम को सफल बनाना चाहते हों। रामलाल तो हमेशा सवेरे उठकर जेल खुलवाता था यानी बैरकें खुलवाता था, पर फाँसी के दिन कुछ मशक्कत ज्यादा पड़ती थी क्योकि कई मजिस्ट्रेट बड़े काइयाँ होते हैं। जो बात उनके देखने की नही है, वह भी देख लेते हैं। मन को पूर्ण तरीके से जागरूक रखना पड़ता है, ऐसे में यह ह्विस्की की महक बहुत भौडी लगती थी, पर वह कह कुछ नही सकता था। अब तो खैर अँग्रेज चले गये। उसने तो वह जमाना देखा है, जब ऊपर के सभी अफसर अंग्रेज होते थे और वे और किसी दिन पीयें या न पीयें, फाँसी के दिन बद कर पीते थे। एक बार एक अंग्रेज सुपरिन्टेन्डेन्ट फाँसी दिलाने के बाद शराब के नशे में फाटक की तरफ जाने के बजाय दुवाडा चक्कर यानी दुवाडे कैदियों के हाते मे पहुँच गया था। वहाँ एक मनचले कैदी ने उस पर तसला चला दिया था।···

पर अपने मेजर मजुमदार ऐसी कोई बात नही करते थे। पीकर लड़खड़ाते हुए आते थे और आकर एक सीधे-सादे बालक की तरह निर्दिष्ट कुर्सी पर बैठ जाते थे। जब सब कारंवाई हो जाती थी और जल्लाद फाँसी वाले असामी का

मुँह टोपी से ढककर उसके गले में फंदा डालकर, सिगनल पर उसके पैर के नीचे से तख्ता खींच लेता था, तब मेजर मजुमदार उठकर चल देते थे। मजिस्ट्रेट जाते तो नहीं थे, पर कहीं थोड़ी आड़ में चले जाते थे, क्योंकि मरने की रिपोर्ट मिलने तक रहना कुछ मजिस्ट्रेट अपना कर्तव्य समझते थे।

आज भी मेजर मजुमदार ने वैसा ही किया। उनको इस बात की जरा भी चिन्ता नहीं रहती थी कि किसे फाँसी हो रही है, क्यों हो रही है? रामलाल को भी फिक्र नहीं रहती थी, पर यह मामला ही कुछ ऐसा अडंगिमा था। वह व्यक्ति जिसे फाँसी लगी, अन्धा था और अन्धेपन के बावजूद उसने हत्या की थी। रामलाल पच्चीस साल से जेल में नौकर था। एक क्लर्क के रूप में वह जेल-सेवा में आया था और होते-होते जेलर हो गया था। स्वराज्य होने से उसे इतना लाभ हुआ था कि एकदम से कई तरक्कियाँ एकसाथ हुई थीं, पर उसने भी किसी अन्धे को फाँसी होते नहीं देखा था। बहुत अजीब बात थी।

वह कैदियों के पहले के जीवन में विशेष दिलचस्पी नहीं लेता था। कभी वह न तो किसी का वारन्ट निकालकर पढ़ता था और न उससे कुछ पूछताछ करता था। पर इस फाँसी वाले असामी में उसने काफी दिलचस्पी ली थी। उसका ऐसा ख्याल था कि यह व्यक्ति निर्दोष है, किसी गलती के कारण फँस गया है। फँस तो बहुत-से जाते हैं। एक तजर्बेकार जेल अधिकारी के नाते उसका यह अनुमान था कि जेल आने वालों में कम से कम बीस प्रतिशत लोग निर्दोष होते हैं। निर्दोष जेल में इस कारण आते है कि असली दोषी को बचाने में कोई न कोई दिलचस्पी रखता है। पुलिस या जज या दोनों। स्वराज्य के बाद भी।

इसलिए अन्धे के निर्दोष होने में भी कोई खास बात नहीं थी, पर उसे भी ऐसा लगता था कि बेशक किसी को फँसा देते, पर एक अन्धे को तो न फँसाते। विशेषकर यह आदमी पढ़ा-लिखा, अच्छे घराने का तेजस्वी व्यक्ति लगता था। वह आठ दीर्घ महीने तक फाँसी-घर की कोठरी में बन्द रहा, क्योंकि इसका मुकदमा सुप्रीम कोर्ट तक लड़ा गया था। कोई ऐसा कानूनी नुक्ता निकल आया था। फिर भी वह नहीं बचा। अजीब बात है कि यह व्यक्ति बचना भी नहीं चाहता था।

मेजर मुजमदार चले गये। मजिस्ट्रेट भी चला गया। लाश एक काले कम्बल से ढककर पीछे के दरवाजे से बाहर निकाल दी गई। पर अभी कोई रिश्तेदार उसे लेने नहीं आया था। एक पक्का और एक नम्बरदार लाश के पहरे पर तैनात कर दिये गये।

रामलाल को सवेरे से अब जरा साँस मिली। वह घर गया और कपड़े बदल नहा कर (पता नहीं ऐसे अवसर पर वह हमेशा नहाता क्यों था) चाय पीने ही लगा था (यद्यपि चाय में कोई स्वाद नहीं आ रहा था) कि खबर आयी कि फाँसी

वाले के रिश्तेदार आ गये है। उसे जाकर तसदीक करना था कि वे सचमुच रिश्तेदार है कि कोई और हैं, महज एक औपचारिक कारंवाई, फिर भी उसे जाना तो था ही। चलो, एक मुसीबत से वचे, नही तो लाश को जलाने की व्यवस्था करनी पड़ती।

रामलाल ने जल्दी से चाय पी ली। हमेशा की तरह उसकी पत्नी ने कहा था कि तुम्हारी आँखे लाल है। नहाने पर भी लाली नही गयी थी। फाँसी ऐसा ही भयानक काण्ड होता है। एक जीते-जागते आदमी को पकड कर रस्सी मे टाँग देते हैं। आँखें लाल तो होंगी हो। चाय पीने पर शायद लाली कुछ कम हुई हो, उसने उठते हुए आईने की तरफ जल्दी से देखा और स्मरण हो आया कि जो व्यक्ति काला कम्वल ओढ़े हुए जेल की अन्तिम दीवार के पास पहरे मे पडा है, वह फिर कभी आईना नही देखेगा। पर अरे, कैसी गलती कर रहा हूँ, वह तो अन्धा था। पर आज फाँसी पर चढते समय उसने बिलकुल अन्धों की तरह व्यवहार नहीं किया। बिना सहारे दो सन्तरियों के बीच अन्य फाँसी वालों की तरह चल रहा था। सिर ऊँचा किये सीना ताने, जैसे क्रान्तिकारी फाँसी वाले या एकाध डाकू ही करते थे, बाकी तो सब ऐसे लगते थे कि फाँसी चढ़ने के पहले ही मर चुके हैं। जान तो उनकी पहले ही निकल चुकी होती थी, पर जैसे जेट रुक जाने पर भी उसके पंखे बहुत देर तक घूमते रहते है, उसी तरह आदमी मर चुकता है, निरा शरीर फाँसी खा लेता है। एक व्यक्ति तो फाँसी के ऐन पहले मर ही गया था, सीढियो पर। उससे स्थिति बहुत जटिल बन गई, और कई रिपोर्टें लिखनी पडतीं, कई व्यक्तियों को जवाब-देही करनी पडती, इसलिए यही तय हुआ था कि मरे हुए व्यक्ति को फाँसी दे दी जाये ताकि ज्यादा रिपोर्टों का झंझट न पड़े। मजिस्ट्रेट कुछ ज्यादा समझदार था, इस कारण काम बिगड नही पाया।

रामलाल के मन में ये सारी बाते कौंध गई और वह अपनी आदत के अनुसार एक छड़ी लेकर जेल के फाटक की तरफ चल पड़ा। उसने फाँसी वाले रिश्तेदारों से आँख बिना मिलाये कहा कि आप बैठिये, मैं अभी तैयारी करता हूँ। पुलिस जेल भेजती है, जज फाँसी की सजा सुनाता है, जल्लाद फाँसी देता है, पर जेलर को, जिसे फाँसी से कोई वास्ता नही है, फाँसी दिये हुए व्यक्ति के रिश्तेदारों का सामना करना पड़ता है। अजीब पद्धति है।

वह जल्दी से फाँसी वाले के रिश्तेदारों को पीछे छोडकर फाटक में घुस गया और जाकर अपनी कुर्सी पर बैठा तो एक जमादार ने लाकर उसे कुछ कागज दिये। उसने देखा यह कोई जेल का फार्म नही था, न कोई रजिस्टर था। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसे समय यह बेकार के कागज क्यो दे रहा है? वह जमादार को डाँटने ही जा रहा था कि जमादार ने कहा—ये कागज आज के फाँसी वाले के कमरे से मिले हैं।

—कैसे कागज ?—जेलर ने पूछा। यद्यपि कागज उसके सामने थे।

जमादार ने कहा—हुजूर, मैं फाँसी के बाद कमरे की सफाई कराने गया, तो एक जगह से फर्श जरा उखड़ा हुआ मालूम दिया। मैंने उसे हिलाया तो एक पूरा चपड़ा निकल आया, उसमें से ये कागज और एक पेन्सिल मिली है।—कह कर उसने एक पेन्सिल भी निकाल कर दी।

रामलाल ने लगभग चीख कर कहा—इसमें तो बहुत कुछ लिखा है, पर वह तो अन्धा था।

उसी समय जेल का डॉक्टर खोसला भी आ गया जो कपड़े बदल कर आया था। जेलर उससे बहुत दोस्ती मानता था, बल्कि रखता था, क्योंकि कई बार डॉक्टर के जरिये से उसके बहुत-से काम बनते थे। जब किसी कैदी को वह घूस लेकर कड़ी मशक्कत से बचाना चाहता था तो डॉक्टर से कोई न कोई रोग, कुछ नहीं तो दिल का दौरा लिखा देता था। यों मेजर मजुमदार डॉक्टर की बेईमानी पकड़ सकते थे, पर वह तो दस्तखत करने की एक मशीन मात्र थे, जैसा कि सभी ऊँचे अफसर हुआ करते हैं।

रामलाल ने खोसला को वह कागज दिखलाया तो खोसला एक साँस में सारा कागज पढ़ गया। यह तो परियों की कहानी की तरह अविश्वसनीय था। तो वह व्यक्ति अन्धा ही नहीं था? कितनी भीषण बात है और यह भयंकर काण्ड उसने केवल कौतुक से किया था। अजीब खोपड़ी थी।

उस कागज में जो कुछ लिखा था, उसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

मैं अपना रहस्य अपने ही साथ लेकर मरना चाहता था, क्योंकि रहस्य खुले तो और न खुले तो कुछ आता-जाता नहीं। मुझे जीने की इच्छा नहीं है। मैं यह समझ चुका हूँ कि मनुष्य जाति ने अब तक जितने दर्शनशास्त्रों को जन्म दिया है, वे सब निस्सार और खोखले हैं, उनमें कुछ दम नहीं है। मौत के डर को कम करने के लिए धर्मों और दर्शनों की उत्पत्ति हुई है। अपने चारों तरफ जो कुछ हो रहा है, उससे जी चुराकर अन्धे बने रहने के लिए गार्हस्थ्य धर्म और सतीत्व आदि की कल्पना की गयी है। लूट-खसोट और बेईमानी पर पर्दा डालने के लिए कानून और न्याय का ढकोसला बना है।

जब मेरे गुरु प्रज्ञाचक्षु शुद्धानन्द ने मुझसे कहा कि मैं तो जान-बूझकर अन्धा हो गया हूँ, क्योंकि मुझमें मरने की हिम्मत नहीं है, तो मैं दंग रह गया था। वह बोले। असल में सारा जगत-व्यापार देख कर आत्महत्या कर लेनी चाहिए, पर वह मैं नहीं कर सकता इसलिए मैंने उसके बाद ही जो कार्य हो सकता था, उसे कर डाला।

मैंने गुरुजी के ये वाक्य जब सुने, तो समझा कि शायद इसमें कोई अत्युक्ति

है, पर न जाने क्यों मैंने सोचा कौतुक किया जाए, इसलिए मैंने घर लौटकर कहा कि मुझे एकाएक कम दिखाई दे रहा है। श्रीमती ने कहा कि मृदु हेमरेज होगा, डर की बात नहीं, इलाज कराओ।

मैं गाड़ी पर चढ़कर इलाज कराने के बहाने गया। कहना न होगा मैं घूम-घामकर एक मोटा काला चश्मा खरीदकर कुछ शीशियाँ हाथ मे लिए लौट आया। पर मेरी हालत दिन-व-दिन खराव होती गयी और एक दिन मैंने यह कहा कि मैं एकदम अन्धा हो गया। इस पर कोई उतना क्षुब्ध नही हुआ जितना कि मैं आशा करता था। सबने इसे ऐसे मान लिया जैसे यह होना ही था। मुझे धक्का लगा जब मेरी पत्नी ने यह कहा—खैर, जब सब विशेषज्ञ कह रहे हैं कि अब ज्योति लौटने की नही, तो समझना चाहिए कि कुछ नही हो सकता, पर हमें लोगो मे यह नही कहना चाहिए कि सब आशा नष्ट हो गयी है। मैं अन्धे व्यक्ति की पत्नी कहलाना पसन्द नही करूँगी।

मैंने मोटे-काले चश्मे के जरिए पत्नी को देखा, तो उसके चेहरे पर घृणा और परेशानी के चिह्न थे। यह परेशानी मेरे लिए नहीं, बल्कि अपने लिए थी।

मुझे एक कमरा दिया गया। मैंने जानबूझकर अपना पुस्तकालय चुना, क्यों कि वहाँ कभी कोई पहुँचता नही था। घर के लोग समझते थे कि मैंने घर का एक कमरा नाहक बेकार चीजो से भर रखा है। मैं अक्सर पुस्तकालय मे दरवाजा बन्द करके बैठता था। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह तय हुआ कि ड्राइवर मुझे रिज में घुमाने ले जाएगा। वहाँ वह हाथ पकड़कर मुझे टहलायेगा। मुझे पता था कि ऐसे कई अन्धे हाथ पकड़ कर वहाँ रोज टहलाने लाये जाते है। मोटा-काला चश्मा हर समय मेरी आँखो पर पड़ा होता था।

अब मुझे एक दूसरा ही मजा आ रहा था। कुछ दिनों के बाद यह ध्यान आया कि मैं शायद अपना यह रहस्य अपने पुराने नौकर शुभकरन पर प्रकट कर सकता हूँ। वह मेरा बड़ा ही विश्वस्त नौकर था। उस पर मुझे पूर्ण विश्वास था। मैंने उसे बुलाया कि कम-से-कम उसके जरिये से सारी बातें मालूम [illegible] रहें।

जब वह आया तो मेरी लोहे की अलमारी खुली हुई थी। उसमें कुछ जरूरी कागजात और थोड़े-बहुत रुपये-पैसे रहते थे। अंधा हो जाने के कारण रुपये-पैसे के सारे कारोबार अब मेरी पत्नी ही करती थी, फिर भी कुछ फुटकर रुपये अलमारी मे रह गये थे।

मैं कुर्सी पर बैठा हुआ था। मैंने देखा कि शुभकरन ने बड़े ही [illegible] अलमारी की तरफ लोभातुर दृष्टि से देखा। शुभकरन का यह [illegible] है। यह शायद मनुष्य स्वभाव है। मैं अपने [illegible] था। मैंने कहा—शुभकरन···

उसने अलमारी पर दृष्टि टिका कर कहा—का बाबू, एकदम सुझाई नाही पड़त ?

मैंने कहा—यही तो बताना चाहता था।

मै बताने ही वाला था कि असल मे मैं क्या हूँ, इतने मे ही मैंने देखा कि शुभकरन खडा हो गया और उसने जल्दी से अलमारी के सामने ही खुला रखा हुआ दस रुपये का एक नोट उठा लिया और फिर उसी तरह खडा हो गया। बोला—का कोई इलाज नही होइ सकत है ?

तबियत तो आई कि जूते लगाकर अभी इस तेईस साल पुराने नौकर को बाहर निकाल दूं, पर हमे तो स्वामी शुद्धानन्द की बातो का तजर्बा करना था। खैरियत है कि मैंने उसे अपना रहस्य नही बताया था। पहले ही मालूम हो गया कि वह क्या है। वह जाते समय चाहता था कि और भी कुछ ले जाये, पर सामने शायद चुराने लायक और कुछ नही था।

मेरी दिनचर्या ही यह बन गयी कि सवेरे हाथ पकड कर टहलने जाना और रात को चोरी से पुस्तक आदि पढना, यद्यपि अब मुझे हजरत उमर की तरह विश्वास हो चुका था कि सारे पुस्तकालयो को जला देना चाहिए। पुस्तको मे केवल ढोंग और ढकोसले की बातें लिखी हुई है, सिवा उन पुस्तकों के जिनमे यह लिखा है कि ससार मिथ्या है। हजरत उमर तो कुछ किताबो को सुरक्षित रखना चाहते थे, पर मै एक तरफ से वेद, अजील, कुरान, पुराण—सब जलाना चाहता था, बल्कि वे ही पुस्तके सबसे पहले जलाने काबिल थी। इन्ही पुस्तको की शिक्षा के कारण मनुष्य ढोंगी बना है। नही तो वह पशु है, खुल कर पशु रहता।

किस्सा कोताह यो कि अब मैं टटोल कर सारे घर में घूमने लगा था। जब सब लोग अखबार पढ लेते, तो मैं उसे चुरा कर ले आता और बाथरूम मे बैठकर पढ़ता। इसलिए नही कि अखबारों मे कोई खास बात होती है, बल्कि इसलिए कि जब जीना है तो समय काटना बहुत बडी समस्या है, विशेषकर मेरी वर्तमान अवस्था मे, जबकि मै अन्धा था और मेरे घरवाले यह नही चाहते थे कि मैं आने-जाने वालों से मिलूँ और इस प्रकार लोग अन्धे की बीवी, अन्धे के लड़के इत्यादि कहलाये। मुझे लोग अन्तराल मे ही गुप्त रखना चाहते थे। पर स्वामीजी की कृपा से अब मेरे दिव्य चक्षु खुल गये थे, अब मैं बहुत ध्यान से सारी बातों का निरीक्षण किया करता था।

कई नये लोग हमारे घर मे आने-जाने लगे थे। खैर, यह तो होता ही रहता है। जीवन की नदी कही ठहरती नही, वह तो चलती जाती है, चलती जाती है, पीछे की ओर मुड कर नही देखती। जो मर जाते है, किंचित रोने-धोने के बाद लोग उन्हे मरा हुआ मान लेते हैं और जीवन-नदी सरकती हुई चलती जाती है।

एक दिन की बात है मैं दीवार पकड कर चलते-चलते बैठक मे पहुंचा तो

देखा कि पत्नी बैठी हुई है, बीच में चाय है और एक अधेड़ सामने बैठा है, जो मुझे देखकर कुछ सिमट गया। मैंने देखा, दोनों कुछ उत्तेजित है।

मैंने कहा—कोई है?

पत्नी कुछ नाराज होकर बोली—मैं हूँ। चाय पी रही हूँ। सवेरे से मौका नही लगा।

मैंने कहा—पीओ। मैं तो पी चुका हूँ।—कहकर मैं दरवाजे मे खड़े-खड़े प्रतीक्षा करने लगा कि पत्नी मुझे किसी कुर्सी पर बैठाये तो मै बैठूँ। वह उठी और मुझे अपने पास बैठा लिया और साथ ही उस व्यक्ति से हाथ का इशारा कर दिया—तुम चले जाओ।

वह व्यक्ति चोर की तरह दबे पाँव चला गया।

यह सब मैंने देखा और स्वामी शुद्धानन्द की बात याद आई। एक शुभकरन नही, यहाँ तो कई शुभकरन थे और उससे भी गए-गुजरे और खतरनाक। उस दिन से मैं चौकन्ना हो गया। अब मैं जब-तब इसी तरह एकाएक प्रकट होने लगा। कभी नौकरों के यहाँ पहुँच जाता तो कभी पत्नी के यहाँ। कभी साक्षात् प्रकट होता और कभी अन्तराल मे रहकर बातें सुनता। पर कोई खास बात नही मिली। जो व्यक्ति पत्नी के साथ बात कर रहा था और दबे पाँव चला गया था, वह कौन है, इसका मुझे पता नही लगा। पता नही वह धूमकेतु की तरह आकाश के किस कोने से उस दिन आ धमका था, अपनी झाड़ूनुमा पूँछ के साथ। और पता नही अब वह कहाँ अन्तरिक्ष के किस कोने में समा गया। मैंने शुभकरन से भी पूछा और मोटे चश्मे के अन्दर से उसके चेहरे पर टकटकी बाँध कर देखता रहा। मुझे विश्वास था कि वह सच कभी नही बोलेगा। स्वामी शुद्धानन्द को धन्यवाद। मै यह समझ चुका था कि लोग सच तो अपवाद के तौर पर ही बोलते है। पर न तो उसने कुछ बताया और न उसके चेहरे मे कुछ प्रकट हुआ।

मेरे इस खेल के खेलते हुए कई महीने निकल चुके थे। मेरा बनावटी इलाज जारी था। एक दिन मेरी पत्नी मुझसे आकर बोली—मेरे भाई के साथ एक चक्षु-विशेषज्ञ आये है। अभी-अभी विलायत से लौटे है। वह तुम्हारी आँखों को देखेगे···

सुनते ही मै एकदम नाराज हो गया। उबल पड़ा, बोला—इसके माने यह हुए कि विलायत से जो आए वही विशेषज्ञ है? इतने पुराने-पुराने डॉक्टर मुझे देख रहे है, वे कुछ भी नही है?—कहकर मै वहाँ से दीवारों के सहारे-सहारे टटोलता हुआ अपने कमरे मे चला गया और वहाँ मैंने दरवाजा बन्द कर लिया। मेरा दिल धड़क रहा था और मेरा मन कह रहा था कि अब कुछ होने ही वाला है। शुभकरन के बार-बार बुलाने पर भी मैने दरवाजा नही खोला और मैंने कहा—यदि कसी ने आँख जँचवाने की बात अब कही तो मैं सिर कूट लूंगा।—कहकर

मैंने जंगला खोल कर एक भारी गुलदान शुभकरन की ओर फेंक मारा। मैं उसे सचमुच मारना चाहता था, पर उसे लगा नही। उस दिन वह मर जाता, तो मुझे इतने दिन प्रतीक्षा नही करनी पड़ती और न वे बातें देखनी पड़ती, जो मुझे बाद को देखनी और करनी पड़ी।

मैंने भनक सुनी कि बड़ी लड़की सरोज की शादी की बातचीत चल रही है। कोई मुझे कुछ नही पूछता था। बस मेरे साथ अब घर का इतना ही सम्बन्ध रह गया था कि मेरे सामने चेक भरा कर लाते और कह देते—इस जगह पर दस्तखत करो।—मुझसे कई बार कहा गया था कि अपना सारा एकाउण्ट ही मैं पत्नी के नाम कर दूँ, पर मैंने यह कहकर इन्कार किया था कि मैं अवश्य अच्छा हो जाऊँगा। इलाज हो रहा है।

इतना मैं कहूँगा कि एक मामले में मेरी आशंका सच्ची साबित नही हुई। मैं सोचता था कि दो सौ कहकर मुझसे हजार रुपये पर दस्तखत करा लिए जायेंगे, सो कभी नही कराया गया। चोर की तरह दबे पाँव भागने वाले उस व्यक्ति का भी फिर पता नही लगा, इसलिए मैं सन्देह में पड़ गया कि क्या एक दिन एकाएक कहूँ कि मुझे दिखाई दे रहा है।

इतने मे यह घटना हुई जिसके कारण मेरे जीवन मे वह मोड़ आया और अब मैं यहाँ हूँ। बैठक में एक युवक (यह वह व्यक्ति नही था) बात कर रहा था। पहले भी इस युवक को मैंने देखा था। यह विलायत से लौटे हुए उस डॉक्टर का किसी प्रकार का भाई था। यह उच्च शिक्षा के लिए कोई स्कालरशिप पाकर कही पोलैण्ड या हालैण्ड या कही जा रहा था। उसके माँ-बाप चाहते थे कि विदेश यात्रा से पहले वह शादी कर ले। कोई इसमे बुरी बात नही थी और भावी दामाद से बात करने मे कोई हर्ज भी नही था। मैं जैसे चुपचाप आया था, वैसे चुपचाप लौट रहा था कि सुनाई पड़ा, पत्नी कह रही है—पर सरोज बहुत ही खामख्याल तबीयत की लड़की है। अपने बाप पर गई है, इसलिए तुम जो चाहते हो कि वह वहाँ जाकर तुम्हारा खाना पकाये, इसमें शायद तुम्हे निराशा होगी। आजकल की लड़कियाँ दूसरे ही ढंग की होती है। वे अपने व्यक्तित्व को पति के व्यक्तित्व में समो देना नही चाहती। बल्कि यदि पति का व्यक्तित्व तगड़ा होता है, तो जबर्दस्ती अपना व्यक्तित्व उभार कर सामने लाना चाहती हैं।

सुनकर मैं यह समझ न सका कि यह एक चेतावनी मात्र है ताकि दोनों का जीवन सुखमय बने या और कुछ है। बात यह है कि मुझे सरोज बहुत प्रिय थी और हमेशा, जब तक मैं अँधियारा था, जब-तब पत्नी की तानेबाजी का शिकार होना पड़ता था कि मैं उसे बिगाड़ रहा हूँ और झगड़े होते थे। वह युवक बोला—मैं सब जानता हूँ। परिस्थिति सब कुछ करा लेती है।

पत्नी चाय बनाती हुई बोली—सरोज को यह ख्याल है कि वह एक श्रेष्ठ

कलाकार है, बात यह है कि उसके पिता तथा पिता के दोस्तों ने उसके बचकाने चित्रों की बराबर प्रशंसा की है, इसलिए एम० ए० पास करने के बाद वह बराबर इन्हीं झगड़ों में घूमा करती है। अपने बाप के पास भी बहुत कम बैठती है। तुमने तो उसके बनाए चित्र देखे हैं।

उस युवक ने कुछ कहा, जो मुझे सुनाई नहीं पड़ा। तब मैं फिर पास आ गया, तो मैंने देखा कि पत्नी दोनों प्यालों में चाय बना चुकी थी। और एक प्याली चाय आगे बढ़ाकर उस युवक को देने लगी तो वह युवक बोला—प्यालियाँ शायद बदल गयी हैं।···

भावी सास बोली—बदल गयी तो बदल गयी—कह कर उसने उस युवक के चेहरे पर आँखें गड़ा कर कहा—मैंने जानबूझकर बदल दिया है, तुम्हें कोई आपत्ति है? क्या मैं सरोज से खूबसूरत नहीं हूँ। लोग तो यही कहते हैं कि मैं उसकी बड़ी बहन हूँ न कि माँ।

सुनकर मुझे ऐसा लगा कि पैरों के नीचे से धरती खिसक गयी। फिर भी मैं धैर्य धारण किए रहा। दोनों चुपचाप चाय पीने लगे। वह युवक माथा नीचे किये हुए था और उसकी भावी सास, जो सचमुच उस दिन गजब का प्रसाधन किये हुए थी, उसे बिल्कुल आँखों से निगल रही थी। दो-तीन घूंट चाय पीने के बाद भावी सास खड़ी हो गयी और अपनी प्याली लेकर आकर उस दीवान पर बैठ गयी, जिस पर वह युवक बैठा था। बिल्कुल उससे सटकर, आक्रमणात्मक ढंग से।

इसके बाद जो हुआ सो हुआ। मेरे हाथ में एक लम्बा-सा पीतल का गुलदान आ गया और मैंने पहले एक तो पत्नी को मारा। उसके अन्तिम शब्द यही थे—तो क्या तुम अंधे नहीं हो?

युवक भाग कर, इस आशा से कि मैं उसे देख नहीं पाऊँगा, कोने में छिप गया, पर मैंने यमराज की तरह उसके सिर पर उसी गुलदान का वार किया, जिससे वह वहीं धराशायी हो गया, फिर शायद मैंने और भी वार किये, पर मुझे मालूम नहीं। इतना सब हुआ, पर मेरा काला चश्मा नहीं टूटा।

मुकदमे में मैंने कुछ नहीं कहा, न और कोई कहने वाला था, पर पुलिस वालों ने महज कल्पना से जो कुछ किया सो किया। कल मुझे फाँसी होगी, पर मुझे कोई अफसोस नहीं है। स्वामी शुद्धानन्द ने ठीक ही कहा था कि मरने की हिम्मत सबमें नहीं होती, इसलिए हे जल्लाद, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। मैं यह क्यों लिख रहा हूँ, यह मैं नहीं जानता, क्योंकि इससे किसी को लाभ नहीं होगा। कोई मेरे कहने पर आत्महत्या तो कर नहीं लेगा और न स्वामीजी की तरह शुतुर्मुर्गी वृत्ति का अवलम्बन कर आँखें ही खराब कर लेगा।

डॉक्टर और जेलर दोनों यह पढ़कर भौंचक्के थे। जेलर तो खैर जेल का ही

कीडा था, पर डाक्टर को भी इस गद में कई माल हो गये थे, पर ऐसा अजीब मामला न देखने में आया था, न सुनने में। जेलर ने देखा कि सामने लाश पर कब्जा करने की दरख्वास्त पडी है। उसने जल्दी से उस पर दस्तखत किया फिर एक जमादार से कहा—जाकर जल्दी से मेजर मजुमदार के भी दस्तखत करा लो।'''कहकर फिर कुछ सोचने के वाद वोला—अच्छा रहने दो, वाद को कराना, जब वह आयेंगे।

उसने डॉक्टर की ओर मुड़कर कहा—चलो, लाश की आँखें तो जाँच लो। देखा जाए कहाँ तक सही है।

दोनो उठकर लाश के पास गये। लाश कम्बल से ढकी पड़ी थी। पहरे वाले तनकर खडे हो गये। डाक्टर ने कम्बल उठाया फिर आँखें देखी। देर तक दोनों आँखो को देखकर बोला—अरे, यह तो सचमुच अन्धा है।—कहकर उसने एका-एक कम्बल ढक दिया।

जेलर ने कहा—अच्छी तरह देख लो।

—अच्छी तरह देख लिया। वज्र अन्धा है। विलायत का डॉक्टर क्या, स्वयं परमात्मा भी इसकी पुतलियाँ वदले विना इसे नही ठीक कर सकता।

—फिर ? यह किसने लिखा ?

डॉक्टर इसका कोई उत्तर नही दे सका, बोला—अन्धा आदमी भी लिख सकता है, पर वह लिखावट अन्धे की नहीं है।

जेलर लाश को सौंपने का हुक्म देते हुए फाँसी की उस कोठरी में गया, जहाँ रात को वह फाँसी वाला बन्द था। जो जमादार पत्र लाया था, उससे पूछा—किस जगह से चपडा उखडा हुआ है, मुझे तो दिखाई नही देता ?

जमादार ने एक कोने मे जाते हुए कहा—हुजूर, यही चपडा उखडा था, पर यह तो विलकुल जुडा हुआ है, यहाँ तक कि कोई निशान भी नही है।

जेलर और डॉक्टर एक-दूसरे का मुँह देखते रहे।

फाँसी

जेल की बैरक के अन्दर फाँसी के विषय में ही बातचीत हो रही थी क्योंकि कल इस जेल में एक कैदी को फाँसी होने वाली थी। हमेशा जब फाँसी होने को होती थी तब इस प्रकार की बातचीत चलती थी।

उस दिन भी बड़ी रात तक फाँसी पर बातचीत होती रही। राजनीतिक कैदियों की बैरक थी इसलिए फाँसी की पद्धति के औचित्य तथा अनौचित्य के सम्बन्ध में भी बातचीत हो रही थी। रामानन्द का बड़ा पक्का विचार था कि किसी भी हालत में फाँसी नहीं होनी चाहिए क्योंकि इससे कुछ लाभ नहीं होता। उसका कहना था कि जिन देशों में फाँसी नहीं होती, उन देशों में कत्ल या खून के मामले अधिक नहीं होते। वह यह भी कहता था कि जिन देशों में फाँसी की प्रथा बन्द कर दी गई है, उनमें आँकड़ों से यह साबित है कि फाँसी से किसी को नसीहत नहीं होती थी, और अब उन देशों में फाँसी बन्द हो गई तो अपराध नहीं बढ़े।

लालचन्द का मत था कि फाँसी होनी चाहिए। वह इसके समर्थन में कहा करता था—देशद्रोहियों को फाँसी अवश्य होनी चाहिए विशेषकर उन लोगों को जो दूसरे देशों से मिलकर अपने देश को तबाह करने का षड्यन्त्र करते हैं।

जब लोग उस दिन इस प्रकार बातचीत करते-करते ऊब गये और सोने की तैयारी करने लगे इतने में जेलर के आने की रिपोर्ट लगी। जेल की भाषा में रिपोर्ट लगने का अर्थ है खबर लगना। एक गुमटी वाला दूसरे गुमटी वाले को आवाज देता है और इस प्रकार से एक मिनट के अन्दर सैकड़ों एकड़ तक फैली हुई जेल में खबर हो जाती है कि अमुक अफसर आ रहा है। कैदी फौरन सावधान हो जाते हैं और तिकड़म की चीजें छिपा लेते हैं।

यह रिपोर्ट लगी कि नायब साहब आ रहे हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक था क्योंकि अभी फाँसी की कुछ तैयारियाँ बाकी थी।

फौरन ही दूसरी रिपोर्ट लगी कि नायब साहब फाँसी-घर में गये। फाँसी-घर उस अहाते का नाम था जिसमें फाँसी वाले कैदी बन्द रहते हैं। जेल के दूसरे

हिस्सों के मुकाबले में उस अहाते में तेज रोशनी रहती है, इतनी तेज कि कोई कीड़ा भी हिले तो फौरन दिखाई पड़ जाये। इसके अतिरिक्त हर फाँसी वाले पर एक पुराने जमादार की ड्यूटी रहती है, जो किसी भी हालत में बैठता नहीं है।

राजनीतिक कैदियों की बैरक के बूढ़े नम्बरदार तफसीसिंह ने कहा—फाँसी वाले से आखिरी ख्वाहिश पूछने आये होंगे।

लालचन्द ने कहा—यह भी एक अजीब प्रथा है।

रामानन्द ने कहा—हाँ, यह फाँसी की पद्धति को और भी हास्यास्पद बना देती है। फाँसी देना है दे दो, जबरदस्ती की बात है, पर उसके साथ मखौल करने की क्या जरूरत है ?

अन्य राजनीतिक कैदी एक नई बहस की महक पाकर चौकन्ना हो गये, पर इतने में रिपोर्ट लगी कि नायब साहब इधर ही आ रहे हैं। सचमुच उनकी साइकिल आकर बैरक के दरवाजे से लगी। यद्यपि नायब जेल में नम्बर दो बल्कि नम्बर तीन अफसर होता है पर राजनीतिक कैदी उसके साथ वही बर्ताव रखते थे जो वे वार्डरों के साथ रखते थे। पर इस समय वह फाँसी-घर से आये थे इसलिए सब राजनीतिक कैदी दरवाजे पर आ गये। पता नहीं ये क्या कहने वाले हैं। रामानन्द ने कहा—वे इत्र या ऐसी कोई चीज माँगने आये होंगे।

रामानन्द ने ऐसी बात इसलिए कही थी कि जब दो महीने पहले एक आदमी को फाँसी हुई थी, और नायब उसके पास अन्तिम इच्छा जानने के लिए गये थे तो उसने गंगाजल और इत्र माँगा था। गंगाजल तो जेल के दफ्तर में ही ऐसे मौकों के लिए रखा रहता था, इसलिए उसमें कोई दिक्कत नहीं हुई, पर इत्र के लिए नायब साहब राजनीतिक कैदियों की बैरक में आये थे। यहाँ उन्हें वह चीज मिल भी गई थी, क्योंकि एक कोई राजा साहब कैद होकर आये थे, वे ऐसी चीजें रखा करते थे और कैदियों में बाँटा करते थे।

नायब साहब घबड़ाये हुए थे। ऐसे मौकों पर वे हमेशा घबड़ाये हुए होते थे क्योंकि फाँसी का सारा इन्तजाम उन्हीं के सिपुर्द होता था। वे कहा भी करते थे—जज ने तो बस इतने शब्द लिख दिये कि इसके गले में फन्दा डालकर फाँसी दी जाये और तब तक दी जाये जब तक कि यह मर न जाये, बस उसकी तो छुट्टी हो गयी और मैं यहाँ पाँच दिन से मर रहा हूँ। एक आदमी को मारना कोई आसान बात थोड़े ही है···

इस समय नायब साहब ने आकर छूटते ही कहा—अरे भई ! हम बड़ी मुसीबत में हैं। कल जिसे फाँसी होने वाली है, उसे मैं अभी पूछने गया कि तुम्हारी आखिरी ख्वाहिश क्या है, तो इस पर वह अजीब तरीके से बोलने लगा।

रामानन्द ने पूछा—अजीब तरीके से क्या मतलब है ?

'मतलब ही तो समझ में नहीं आता। पहले जब वह अजीब ढंग से बोलने

लगा तो मैंने समझा यह पागल हो गया। अक्सर लोग ऐसे मौके पर पागल भी हो जाते हैं। मेरे बीस साल के तजरबे में मैंने ऐसे कई केस देखे है। कई तो फाँसी चढ़ने के पहले मर जाते हैं, बस उनकी नाड़ी भर चलती रहती है। पर यह आदमी पागल नही मालूम देता। मैंने गौर से सुना तो मैं समझ गया कि यह किसी और भाषा मे बोल रहा है जिसे मैं नही समझता।'

लालचन्द ने पूछा—पहले यह आपसे किस भाषा मे बातचीत करता था ?

नायब बोले—यह अच्छी-खासी हिन्दुस्तानी बोलता था, पर इस समय यह जाने कौन भाषा बोल रहा है ?

'भाषा बोल रहा है या यों ही कुछ बक रहा है ?'

नायब ने कहा—पहले मैंने भी यही समझा था, पर थोड़ी देर सुनने पर मुझे विश्वास हो गया कि यह कुछ बोल रहा है।

'फिर यह हिन्दी क्यों नहीं बोलता ?'

नायब ने अपनी दाढी पर हाथ फेरते हुए कहा—यह तो अल्लाह जाने, पर किसी एक जबान को बिल्कुल भूल जाना भी एक तरह का पागलपन है। मुझे यकीन है कि यह पेशावरी या पश्तो बोल रहा है। आप लोगों में से कोई उस भाषा को जानता है ?

सबने रामानन्द की तरफ देखा। बात यह है कि वह पठान बनकर सरहद पार करके रूस हो आया था। उसे उधर की सारी भाषाएँ मालूम थी। रामानन्द ने एक क्षण तक सोचा फिर कहा—मै उधर की कुछ भाषाऐं जानता हूँ, आप बताइए मैं क्या कर सकता हूँ ?

नायब साहब ने अपनी तारीफ करते हुए कहा—यों मैं चाहता तो रिपोर्ट मे लिख देता कि आत्माराम फाँसी वाला पागल हो गया, उसने अपनी कोई आखिरी ख्वाहिश नही बतायी, पर मैं खुदा से डरता हूँ, पाँच वक्त नमाज पढ़ता हूँ इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप चले और उससे बात करें।

रामानन्द ने बिस्तर पर से उठाकर कम्बल ओढ़ लिया। इतने मे बडे जमादार ने आकर ताला खोल दिया और नायब साहब रामानन्द को लेकर चले। बैरक फिर से बन्द कर दी गयी। अवश्य जंजीर चढ़ाकर उसे पक्का बन्द नही किया गया। एक ताले से कच्ची बन्द कर दी गयी।

रामानन्द और नायब के फाँसी की कोठरी के सीखचों के सामने खडे होते ही आत्माराम उसी अज्ञात भाषा में बात करने लगा।

नायब ने रामानन्द के चेहरे की तरह देखकर कहा—क्यों भई, कुछ समझ आ रहा है ?

'हाँ-हाँ, समझ में आ रहा है, यह उधर ही से आया हुआ शरणार्थी है।'

'क्या माँगता है ?'

'अभी तो कुछ नही माँग रहा है। कुछ कह रहा है।'

रामानन्द ने उसके साथ उसी भाषा मे बातचीत की तो आत्माराम पहले तो बहुत जोर मे रो पड़ा; फिर कुछ सँभलकर बोलने लगा। लगभग एक घण्टे तक दोनों मे बातचीत होती रही। नायब साहब ने बीच मे पूछना चाहा, कि आखिर वह क्या कह रहा है, पर रामानन्द ने उन्हे लगभग झिड़क दिया। बोला—बाद को बताऊँगा।

आत्माराम ने जो बातें बतायी, उनका सारांश यह था—देश के विभाजन के बाद मैं दिल्ली आ गया तो मेरी जेब खाली थी और मेरे पेट में भूख थी। मैंने इधर-उधर जाकर लोगो से कहा कि मैं पासशुदा कम्पाउण्डर हूँ, मुझे कोई नौकरी दिलवा दो, पर किसी ने मुझे नौकरी नही दी। तब मैंने जमुना में कूदकर जान देने का निश्चय किया क्योंकि भीख तो मुझसे माँगी नही जाती थी। इसी निश्चय के साथ मै जमुना किनारे जा रहा था कि मुझे अपनी ही तरफ का एक आदमी मिला। उसने मुझे देखते ही कहा—तुम नौकरी करोगे?

'अन्धा क्या माँगे आँखें। मैंने फौरन स्वीकार कर लिया और ईश्वर को धन्यवाद दिया। मैंने यह नही पूछा कि काहे की नौकरी है और कितनी तनख्वाह है।

'फलकचन्द का एक छोटा-मोटा कारखाना था जिसमे वह दुर्गन्धयुक्त मिट्टी के तेल से ब्राह्मी तेल बनाया करता था। मैं उसमें काम करने लगा। था तो यह फरेब ही, पर फलकचन्द वही कर रहा था जो कलकत्ता, बम्बई और अन्य शहरों की कई कम्पनियाँ किया करती है। भीख माँगने से तो अच्छा ही था। धीरे-धीरे मैंने शादी की और एक बच्चा भी हो गया।

'एक दिन की बात है कि मैं गाजियाबाद से एकाएक तबियत खराब होने के कारण लौट आया तो देखता क्या हूँ कि मेरी बीवी ने बहुत बढ़िया-बढ़िया खाने पकाए है और फलकचन्द्र हँस-हँसकर खा रहा है। मेरी समझ मे नही आया कि इतना सामान कहाँ से आया, पर फलकचन्द ने परिस्थिति सँभालते हुए कहा—तुम आ गये, बड़ा अच्छा हुआ। आज सवेरे एकाएक याद आया कि मेरा जन्मदिवस है, सो मेरा जोरू न जाता, इसलिए मैं तुम्हारे घर चला आया।'''

'खैर कोई बात नही, मुझे जो शक हुआ था वह पत्नी के व्यवहार से दूर हो गया। फलकचन्द ने एक दिन मुझसे कहा—तुम कम्पाउंडर हो, तुम्हारे ज्ञान का फायदा उठाना चाहिए। आजकल पेनिसिलिन बहुत चल रहा है, क्यों न हम इसी का कारखाना चालू कर दें।

'मैंने कहा—आप किस फिक्र मे है, उसके लिए बडा भारी कारखाना चाहिए।

'तब फलकचन्द ने मुझे समझाया कि यह तो उसे भी मालूम है कि पेनिसिलिन की तो शीशी और ग्रेवुल भर रखना है, असल में उसमें पानी भरकर बेचना है।

'रुपयों की मुझे भी जरूरत थी इसलिए मै राजी हो गया। उधर बहुत-से

दवाफरोश भी सस्ती पेनिसिलिन लेकर उसे स्टैण्डर्ड दामों पर बेचने लगे। फलकचन्द मालामाल हो गया। मैंने भी एक छोटी-सी जमीन ले ली। मैं जानता था कि यह बहुत बुरा काम है, पर अब तो ढर्रे पर चल चुका था। लौटने का रास्ता नहीं था।

'एक दिन मैं कारखाने से घर लौट रहा था कि इतने में मैंने रास्ते में सुना कि किसी पड़ोसी के घर में रोना-पीटना मचा हुआ है। उस पड़ोसी को मैं जानता था इसलिए उसके घर में गया तो मालूम हुआ कि उसे न्यूमोनिया हो गया था और इलाज होने पर भी वह मर गया। मैं मुर्दे के कमरे में गया तो वहाँ सामने ही पेनिसिलिन की शीशियाँ पड़ी हुई थीं। यह हमारे कारखाने की शीशियाँ थीं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

'मैं यह तो जानता था कि पेनिसिलिन के बदले पानी देना कितना बुरा काम है पर आज मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं सामने पड़ी हुई इस लाश के लिए जिम्मेदार हूँ। न जाने कितनी ऐसी लाशों के लिए मैं जिम्मेदार था।

'उस पड़ोसी की स्त्री ने रोते हुए मुझसे कहा—मैंने इसके इलाज में अपना कंगन भी बेच दिया और अब इसे श्मशान तक पहुँचाने का पैसा नहीं है।

'मेरी जेब में पचास रुपये पड़े हुए थे, मैंने फौरन वे रुपये उसे दे दिये और लड़खड़ाता हुआ घर पहुँचा। सामने ही फलकचन्द घूँघट-सा काढ़े हुए आता दिखायी पड़ा। कहते हैं कि मैं उस पर टूट पड़ा और वह मर गया। पर ईश्वर जानता है, मुझे कुछ पता नहीं।

'मैंने तो ये सारी बातें अदालत में जानीं। मैं सच कहता हूँ कि मैंने उसकी हत्या नहीं की, कम से कम जान-बूझकर नहीं की। अभी नायब साहब पूछने आए कि तुम्हारी आखिरी ख्वाहिश क्या है, तो मैंने कहा मेरी आखिरी ख्वाहिश यह है कि मुझे इस मामले में फाँसी न होकर उन सैकड़ों मरीजों को मारने के लिए फाँसी होती, जिन्हें हमारे बनाये हुए पेनिसिलिन ने मारा है।'

कहकर आत्माराम थककर बैठ गया, फिर बोला—हो सकता है फलकचन्द मेरी बीवी का यार रहा हो, उसे जो सजा मिली, वह ठीक है, पर हमारे कारखाने में काम करने वाले हर व्यक्ति को फाँसी मिलनी चाहिए। मुझे अफसोस इस बात पर नहीं है कि मैं मर रहा हूँ बल्कि इस बात पर है कि मुझ पर असली जुर्म नहीं लगाया गया है।...'

रामानन्द ने उसे तसल्ली दी, यद्यपि तसल्ली देने को कुछ नहीं था। जब रामानन्द बैरक से वापस जाने लगा तो नायब ने पूछा—अब यह तो बता दीजिए कि क्या मंगायें?

रामानन्द ने सारी बात बताकर कहा—यह कुछ माँग नहीं रहा है। न इसे गंगाजल की जरूरत है, न इत्र की।

जब रामानन्द बैठक में लौटकर गया तो साथियों ने उससे बहुतेरा पूछा कि क्या बातचीत हुई, पर उसने कुछ नहीं बताया।

बस इतना ही कहा—मैं समझता हूँ देशद्रोह से बढ़कर भी अपराध हो सकता है और उन अपराधों के लिए फाँसी होनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो उस देश का दुर्भाग्य है।

करीम की समझ मे यह न आता, कि यदि उसने थककर एक कुल्हड़ ताड़ी पी ही ली, या एक घूंट शराब ही, तो इसमे कौन-सा गुलछर्रा उड़ाना हो गया ! अरे, कड़ाके की सर्दी मे और तेज लू मे वही ताँगा लेकर इधर से उधर घूमता रहता है, कि कोई और ? जीवन-संगिनी की इन आलोचनाओ से उसे बड़ी निराशा होती, पर वह अधिक कुछ न कहता था। किसी दिन अधिक पीये होता, तो दो-चार हाथ झाड़ देता। इससे जोहरा कुपित होती, पर जैसे करीम के लिए कभी-कभी शराब पीना स्वाभाविक था, वैसे ही जोहरा के लिए उसे डाँटना, और फिर उसके फलस्वरूप कभी-कभी पिट जाना भी स्वाभाविक ही था। सदैव से ऐसा ही होता चला आ रहा था। कम से कम जोहरा को ऐसा ही मालूम था। उसने अपनी माँ को बाप के हाथो तथा सास को ससुर के हाथों पिटते देखा था।

इसमे कोई विचित्रता न थी। इन लोगों का जीवन मानो किसी अन्य रूप मे इनके बाप-दादो के जीवन की ही पुनरावृत्ति थी। जोहरा को इस बात मे कोई शिकायत न थी, पर करीम को थी। जोहरा को घर के काम-काज से कभी छुट्टी ही न मिली कि वह किसी बात पर गहराई से सोचे।

पर करीम को समय मिलता था। जब वह बिना सवारी के होता था, तो ताँगे की पीछे वाली सीट पर बैठता था, फिर एक सिगरेट सुलगाकर हाथ मे लगाम लेकर, वह सवारी की तलाश मे इधर से उधर घूमता था। ऐसे समय वह गंभीर से गंभीर समस्याओ पर विचार करता था। अक्सर वह विचारो मे इतना निमग्न हो जाता, कि घोड़ा मौका देखकर घर लौट आता। जब ताँगा एकाएक एक झटके से घर के सामने खड़ा हो जाता था, तब उसे होश आता था। यद्यपि घोड़ा उसके चेहरे को नही देख पाता था, पर लगाम के खिंचाव से ही वह अपने मालिक की मानसिक अवस्था की थाह लगा लेता था।

करीम परिवर्तन के लिए लालायित था। वह समझता था, कि कोई भी परिवर्तन होगा, तो उसका भला ही होगा। कैसे भला होगा, इस सम्बन्ध मे उसकी कोई स्पष्ट धारणा न थी। पर वह समझता था, कि परिवर्तन मे कोई भलाई है, और यह बात उसके दिमाग में जम गई थी।

इस कारण जब लीग के लोग आकर उसे समझाने लगे, कि पाकिस्तान होगा तो भला होगा, तो वह उसका जबर्दस्त समर्थक हो गया। मौका निकालकर उनकी सभाओ मे जाने लगा, उनकी तरह बाते करने लगा, और अपने नये विचारों के फलस्वरूप चिर-परिचित अस्ट्राखान टोपी छोड़कर, फुन्देदार तुर्की टोपी पहनने लगा।

करीम विचारो से अनुदार न था, और अब तक हिन्दुओं से उसे कोई घृणा नही थी। पर लीगियों ने जब दाढी हिला-हिला कर बातें कहीं और उसने सोचा, और देखा कि वह एक हिन्दू सेठ का कर्जदार है, तो वह दिल से कुछ और सोचते

हुए भी लीगियों की तरह बातें करने लगा। और जब कुछ दिनों तक वैसी बातें करता रहा, तो वह वैसा सोचने भी लगा। उसके विचार भी उसी तरीके के बन गये।

उन दिनों भारत का बँटवारा करीब-करीब तय हो चुका था। यद्यपि पहले करीम को राजनीति मे कोई मतलब नही था, पर अब वह जरा-जरा-सी बात की खबर रखता था। उसे बताया गया था, कि अब पाकिस्तान होगा, और इस बात से वह इतना खुश था, कि रोज रात को शराब पीकर लौटता था।

जोहरा उसे हमेशा की तरह बुरा-भला कहती थी, पर वह अब उसकी परवाह नहीं करता था। एक दिन जोहरा ने जब कहा—दो-दो लड़कियाँ बडी हो गई हैं। इनकी शादी के लिए कुछ जमा करोगे, कि सब पैसे नशे में ही फूँक डालोगे, तो करीम बोल उठा—तुमको तो बस छोटी-छोटी बातों की पड़ी है। औरत की जात ठहरी, कम अक्ल। पता भी है कि पाकिस्तान होने वाला है?

उसने 'पाकिस्तान होने वाला' इस बात को ऐसे कहा, जैसे हिन्दू मोक्ष की तथा मुसलमान बहिश्त की बात करते हैं। उसके चेहरे पर एक दिव्य ज्योति झलक रही थी, जो या तो पहुँचे हुए महात्माओं के या पागलों के चेहरे पर दृष्टि-गोचर होती है।

सच तो यह है कि जब उसके महाजन लाला नत्थूमल ने आकर उससे सूद माँगी, तो उसने टाल दिया। बोला—महीने, दो महीने मे सारी रकम मयसूद के चुकता कर दूँगा। घबराते क्यों हो?

पहले ऐसे मौकों पर वह लाला नत्थूमल से गिड़गिड़ा कर बात करता था। कहता था, कि सूद कहाँ से लाऊँ? रोटी के लाले पड़े रहते हैं। माफी दो! फिर जब लाला आँखें लाल-पीली करते थे, तो कहता था, कल दूँगा। परसो अदा कर दूँगा। लाला भी काइयाँ था। ठीक समय तय करवा कर ही जाता था, और उस नियत समय पर या तो वह खुद पहुँचता था, या उसका गुमाश्ता आ पहुँचता था। अब की बार लाला नत्थूमल ने जो उसका लहजा बदला हुआ पाया, तो आश्चर्य तो यह है कि उन्हे आश्चर्य नही हुआ, और फिर वह तब से आये ही नही। उन्हें पूरा भरोसा था, कि उनका रुपया मारा नही जायेगा।

कोई आश्चर्य करे या न करे, पर जोहरा को बडा आश्चर्य हुआ। उसे आश्चर्य इस कारण और भी अधिक हुआ कि उसके पड़ोसी सेवाराम का भी वही हाल था, जो करीम का था। सेवाराम के पास दो गायें थी। उन्ही का दूध, दही, गोबर बेचकर उसका गुजारा होता था। वह भी कई बच्चों का बाप था। इन दिनों वह भी शराब अधिक पीने लगा था। वह भी अपनी स्त्री शिवरानी की बात नही सुनता था। उसके द्वारा रोके जाने पर, वह भी एक दिन बक गया—स्वराज्य होने वाला है। अब काहे की फिक्र? अंग्रेजों की सारी जायदादें और मेमें

हमको मिलेंगी !'

जायदाद मिलने की बात सुनकर शिवरानी खुश हुई, पर मेम का नाम सुनकर उसका माथा ठनका। बोली—मेम लेकर तुम क्या करोगे ? बूढ़े होने को आये, पर बदमाशी नहीं छोड़ी।

सेवाराम यों ही बक गया था। इतना सोचा नहीं था, कि इसका यह मतलब हो सकता है। जल्दी से बात बदलते हुए बोला—मेमें हम लोगों को थोड़े ही मिलेंगी। बड़े-बड़े नेताओं के लिए ही काफी नहीं होंगी। हमें तो शायद कोई देशी ईसाइन भी नहीं मिलेगी।

स्पष्ट था, कि उसके लहजे में अफसोस था। शिवरानी बोली—'याद रखना, मेम हो या ईसाइन, यहाँ कोई आयेगी तो इतने झाड़ू मारूँगी की याद करे। कोई ऐसी-वैसी नहीं हूँ। अहीर की बेटी हूँ।

सेवाराम को पत्नी की यह देशद्रोहिता पसन्द नहीं आयी, कि यह स्वराज्य नहीं चाहती। वह चुप रहा। सोचा कि—जब स्वराज्य हो जायेगा, तो इससे निपट लूँगा। इससे अभी क्यों भिड़ूँ ? आखिर औरत है। इसकी जबान पर लगाम नहीं है।

इस तरह उसने स्त्री के साथ तकरार तो किया नहीं, पर मन ही मन अपने स्वप्न की इमारत बनाता रहा। यद्यपि उसने मेम की बात कही थी, पर उसका मन न मेम पर था, न ईसाइन पर था। उसका मन तो पास के ईसाई यतीमखाने में पली हुई तगड़ी गायों पर था। काश, उसमें से एक मिल जाती ! यह सोचते ही उसका मन ललचा उठता था।

सेवाराम और करीम में गहरी दोस्ती थी। करीम कितना भी लीगी हो, मौका पाकर सेवाराम के साथ वह दिल की दो-दो बातें कर लेता था। दोनों का एक विषय में संयुक्त मोर्चा रहता था, कि स्त्रियाँ मूर्ख होती हैं, और उनको मुँह नहीं लगाना चाहिए। पर कुछ भाग्य का परिहास ऐसा था, कि अपनी स्त्री के बिना उनका कोई काम नहीं बनता था। वे जब एक-दूसरे से मिलते थे, तो ऐसे बात करते थे, मानो किसी ने जबर्दस्ती उनकी शादी कर दी थी। पर वस्तुस्थिति इसके बिलकुल विपरीत थी। दोनों जब-तब एक साथ बैठकर एक-दो कुल्हड़ भी पीकर गम गलत कर लेते थे। पर इन दिनों दोनों का पीना हद से बाहर चला जा रहा था। करीम मन में सोचता, कि बाप-दादों के समय के कर्ज के बोझ से मुक्त हुआ चाहता है। आह, ऐसा सोचना भी कितना आनन्द-जनक था ! ऐसा सोचते समय सिर कितना हल्का मालूम होता था, जैसे बीमारी से उठने के बाद होता है।

सेवाराम जब से स्वराज्य जल्दी होने की खबर सुनने लगा था, तब से उसने निश्चय कर लिया था, कि ईसाइयों के यतीमखाने की एक गाय उसे जरूर मिलेगी। उसका तर्क कुछ इस प्रकार का था, कि बड़े लोगों को तो इमारतें,

नौकरियाँ और मेमें मिलेंगी। तो क्या उसे एक गाय भी नही मिलेगी? ऐसा नहीं हो सकता। उसका देशभक्त हृदय ऐसा सोचकर देशद्रोह कैसे करता?

इन्ही परिस्थितियो मे स्वराज्य हुआ, और पाकिस्तान भी बना। न सेवाराम को वह गाय मिली, और न करीम कर्ज से मुक्त हुआ। पर दोनों मे से कोई एकदम निराश नही हुआ। दोनों अपने-अपने ढंग पर आशा बांधे रहे। सेवाराम तो गाय न पाने का दर्द करीब-करीब भूल गया। पर करीम को तो बहुत खला, क्योकि कर्ज उसके सिर पर एक बोझ की तरह था, और उसका न उतरना खलने की बात थी।

एक दिन करीम अपने लीगी साथियों से लड़ गया। बोला—तुम लोगों ने तो कहा था, कि ऐसा होगा, वैसा होगा। यहाँ तो कुछ भी नही हुआ। हिन्दू महाजन तो हमसे अब भी सूद लेता है।

लीग के एक भक्त ने कहा,—अमाँ, अभी इतना हुआ, आगे और होगा। देखे जाओ कि कायदे आजम किस तरह सब ठीक कर देते है। अभी हुआ ही क्या है? फिर से सल्तनत मुगलिया कायम होगी।

करीम को कुछ तसल्ली नही हुई। पर जब बड़े-बड़े पढ़े-लिखे मुसलमान ऐसा कहने लगे, तो उसे चुप हो जाना पड़ा। भीतर ही भीतर आग सुलगती रही, पर ऊपर से शांति रही। उसका शराब पीना जारी रहा, बल्कि कुछ बढा ही।

इतने मे पश्चिम से बड़ी अद्‌भुत खबरें आने लगी। सुनाई पड़ने लगा, कि हिन्दू मुसलमानों को मार रहे हैं, और मुसलमान हिन्दुओं को। दिल्ली मे सन्ध्या के बाद न तो मुसलमान हिन्दू मुहल्लों मे जाते, न हिन्दू मुसलमान मुहल्लों मे। उधर जो लीगी करीम से कह चुके थे, कि सल्तनत मुगलिया फिर से होने वाली है, उनमे से कई सपरिवार पाकिस्तान चले जा चुके थे। जो रह गये थे, वे अब भी वही नारा दे रहे थे कि 'देखे जाओ। अभी क्या हुआ है? अभी तो दिल्ली पर भी हमारा परचम फहरायेगा।' पर इनमे से भी जिनको मौका मिलता था, वे पाकिस्तान रवाना होते जाते थे। करीम भी दुविधा मे था कि क्या करे। वह महाजन से बचने के लिए कही भी जाने को तैयार था। पर उसने सुना था, कि वह ताँगा और घोड़ा नही ले जा सकता। इसलिए वह जा नही रहा था। पर पाकिस्तान के सम्बन्ध में उसने लीगियों से इतनी तारीफ सुनी, कि अक्सर वह सोचने लगता, कि ताँगा छोड कर वहाँ जाना ठीक रहेगा या नही। कहने वालों के अनुसार तो वहाँ कोई अभाव नही था, फिर भी अपने ताँगे-घोड़े को छोड़ कर जाने को उसका जी नही चाहता था।

सितम्बर मे एकाएक दिल्ली की परिस्थिति खराब हो गई। पता नही क्या हुआ, कि मुसलमानों पर मार पड़ने लगी। करीम सपरिवार मारा जाता, पर

सेवाराम ने उसे छिपा लिया। अब तो मुसलमानों में पाकिस्तान जाने का आंदोलन जोर पकड़ गया। जब दंगा शान्त हुआ, तो सेवाराम ने करीम से रुआँसे होकर कहा, 'भाई, तुम भी चले जाओ।'

सभी ने यही सलाह दी। करीम के कई जान-पहचानी मारे गये थे। वह उनके मारे जाने की कहानियाँ सुनता, तो उसके रोंगटे खड़े हो जाते। वह जाने के लिए राजी हो गया। ताँगे को तो लोगों ने जला दिया था, पर घोड़ा बचा हुआ था। सेवाराम ने अपनी गायों में उसे बाँध कर बचा लिया था। तय यह हुआ, कि घोड़ा सेवाराम के पास रहे। उसने करीम परिवार की जानों को जिस प्रकार बचाया था, उसके लिए उसे यह घोड़ा दे देना कोई बड़ी बात नहीं थी। पर सेवाराम लेने को राजी नहीं हुआ। करीम ने कहा—भाई, मैं इसे ले नहीं जा सकता। मिट्टी के मोल बेचना पड़ेगा। इसे तुम्हीं रख लो।

तब सेवाराम को राजी होना पड़ा। यह तय हुआ, कि सेवाराम का लड़का एक ताँगा लेकर इसे जोतेगा। जब करीम पाकिस्तान के लिए चलने लगा, तो वह अपने घोड़े अकबर से गले मिलने गया। बड़ी देर तक मिलाई हुई। घोड़ा हिनहिनाने लगा। करीम रोने लगा। उसी दिन करीम परिवार हवाई जहाज में लाहौर पहुँचाया गया।

करीम कभी हवाई जहाज पर चढ़ा नहीं था, इसलिए हवाई जहाज पर चढ़कर वह खुश हुआ। प्रारम्भ अच्छा था। लड़के, लड़कियाँ खुश थीं, केवल जोहरा गम्भीर थी। पर किसी को उसकी परवाह नहीं थी। करीम ने सोचा, कि जरूर पाकिस्तान में अच्छा रहेगा। एक अकबर के बिछोह के अतिरिक्त उसके लिए सब बातें खुशी की थीं। जब लोगों ने बताया, कि अब हवाई जहाज पाकिस्तान पर उड़ रहा है, और जोरों से 'पाकिस्तान जिन्दाबाद', 'कायदेआजम जिन्दाबाद' का नारा लगाया, तो उसने भी गला फाड़-फाड़ कर साथ दिया। यहाँ तक कि जब सब लोग चुप हो गये, तो भी उसने एक बार पागलों की तरह 'कायदेआजम जिन्दाबाद' का नारा लगाया। दूसरे लोग हँस पड़े। पर उसने परवाह नहीं की। एक सफेद दाढ़ी वाले मुसलमान ने आकर उसकी पीठ ठोंकी। कहा, 'शाबास, बेटे! तुम्हीं लोगों के दम से पाकिस्तान बना है।'

करीम को इस बूढ़े का पीठ ठोंकना बहुत अच्छा मालूम हुआ। वह जोश से भर गया। उसे ऐसा मालूम हुआ, कि वह जैसे मिराज में या सशरीर स्वर्ग में जा रहा है। अब उसे किसी बात का, यहाँ तक कि अकबर के बिछोह का भी दुःख नहीं था। उसे इस वक्त ऐसा मालूम हो रहा था, कि पाकिस्तान के नेताओं के हुक्म पर वह हवाई जहाज से कूद पड़ सकता है। अभी, इसी मिनट...

इस प्रकार खुशी की हालत में वह हवाई जहाज से उतरा। हवाई अड्डे पर स्वयंसेवकों, पुलिसवालों और फौजियों की भरमार थी। उतरने वालों ने

खूब नारे लगाये। फिर लोग एक कैंप मे पहुँचाये गये। पंजाबी स्वयंसेवकों ने पाकिस्तान प्रवेश करने वालों का स्वागत किया। करीम-परिवार के साथ आठ-दस नौजवान स्वयंसेवक बराबर लगे रहे। वे करीम को 'हजरत' उसकी बीवी को 'अम्माजान' लडकों को 'बिरादर' और लड़कियो को 'हमशीरा' कहते थे। कैम्प मे खाने-पीने तथा रहने की व्यवस्था कुछ अच्छी नही थी। पर इतने लोगो मे घिरे रहने तथा 'हजरत, हजरत' कहे जाने के कारण करीम को इतनी खुशी हुई, कि उसने किसी भी असुविधा को असुविधा नही समझा। वह तो ऐसा अनुभव करने लगा था, मानो वह कोई नेता हो। उसके चेहरे पर भी धीरे-धीरे इस भावना की छाप आने लगी। वह खुश था। पर जोहरा खुश नही थी। वह लडकियो पर हर समय भुनभुनाती रहती थी।

सुना जा रहा था, कि सब को रहने की जगह तथा काम मिलेगा। पर करीम को पाकिस्तान मे रहते दो महीने हो गये, पर अभी तक कुछ नही मिला था। लेकिन इससे क्या? काम तो चला ही जा रहा था। अपना ही राज्य था। यदि थोडी-बहुत असुविधा थी, तो कोई बात न थी।

करीम समय बिताने के लिए इधर-उधर घूमता था। एक दिन जब वह ऐसे ही घूम रहा था, तो उसे इसहाक मिला। हवाई जहाज पर उससे करीम की भेंट हुई थी। यो कुछ जान-पहचान पहले की भी थी। दिल्ली के करौल बाग मे इसहाक रहता था। उसका एक निजी मकान और चाँदनी मे रेशम की अच्छी दूकान थी। पर दंगे मे उसका लड़का और बीवी मारी गई थी। वह भी मारा जाता, पर घर में वह नही था। अब भागकर करीम के साथ आया था।

सलाम दुआ के बाद, इसहाक ने कहा—जब से यहाँ आया हूँ, तब से बडी तकलीफ है। न कोई खाने को पूछता है, न पीने को। पेट तो किसी दिन नही भरा। गोश्त तो आँख से देखने को भी नही मिलता।

सचमुच इसहाक दुबला हो गया था।

करीम को ये बातें पसन्द न आयी। बोला—भाई, अल्लाह की दुआ से मुझे तो सब चीजें मिल जाती हैं।

—मिलती होंगी। मुझे तो बड़ी तकलीफ है।

—रजाकारों से क्यो नही कहते—करीम ने पूछा।

इसहाक ने हँसकर कहा—अरे, भाई, वे ही तो सब चीज बीच मे खा जाते हैं, नही ऊपर से तो सब चीजें मिलती हैं।

करीम ने रुखाई से कहा—मेरे रजाकार तो बहुत अच्छे हैं।—फिर सोच कर बोला—शिकायत कर दो।

—यही सोच रहा हूँ।—इसहाक के माथे पर बल थे।

थोड़ी देर बात करके वह चला गया। करीम ने (जैसा कि एक नेता को

चाहिये था, क्योंकि करीम अब अपने को एक नेता समझता था) इसहाक को तसल्ली देकर विदा किया।

तीन-चार दिन बाद करीम टहलने निकला, तो देखा कि एक जगह भीड़ जमा है। पास जाकर देखा, तो मालूम हुआ, कि कपड़े से ढकी हुई एक लाश है। पूछने पर मालूम हुआ, कि एक हिन्दू की लाश है। यह सुनकर करीम को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उसने सुना था, कि अब इधर के इलाकों में कोई हिन्दू रह नहीं गया है। यह हिन्दू यहाँ कैसे मिल गया, इस बात को जानने की प्रबल इच्छा हुई, क्योंकि यद्यपि अब वह हजरत करीम गजनवी हो चुका था, पर उसके अन्दर का खानदानी ताँगावाला मरा नहीं था।

उसने पास खड़े एक रजाकार से पूछा—क्यों, भाई, यहाँ यह हिन्दू कैसे आ गया था?

इस पर रजाकार ने कहा—यह मुसलमान पनाहगजीन (शरणार्थी) बन कर आया था, और अब मौका पाकर यहाँ के लोगों को भड़का रहा था, कि खाना कम मिलता है, बद इन्तजामी है, घूसखोरी है।

करीम ने कहा—तोबा, तोबा!

—हाँ, नहीं तो क्या? बगावत फैला रहा था। हम लोगों ने रंगे हाथों पकड़ लिया, और मार डाला। पता लगा है, कि ऐसे कई इन कैंपों में हैं।—कहकर, रजाकार ने लाश के पास सिर झुकाये खड़े कई आदमियों की तरफ घूर कर देखा।

करीम को भी कुछ बुरा मालूम हुआ, कि एक ऐसे खतरनाक आदमी की लाश के पास इस तरह कैंप के आदमी क्यों खड़े थे। रजाकार ने प्रोत्साहन पाकर कहा —इस हिन्दू ने अपना नाम इसहाक रखा था।

करीम ने अवाक होकर पूछा—इसहाक?

—हाँ।

—क्या यह अक्तूबर में आया था?

—हाँ, हाँ, वही हरामजादा है। कहता था, कि उसकी बीवी और लड़का हिन्दुओं के हाथ मारे गये। साला एक नम्बर का मक्कार था।

करीम समझ गया, कि यह वही इसहाक था। न मालूम क्या हुआ उसे, कि एकाएक चक्कर-सा आ गया। वह किसी तरह उलटे पाँव अपने स्थान पर पहुँचा, और जाकर अपने बिस्तरे पर लेट गया। उसका सिर घूम रहा था।

जोहरा दौड़ी हुई आई। बोली—क्या हुआ? क्या हुआ?

करीम ने कहा—कुछ नहीं, कुछ नहीं।

कई दिनों में जाकर करीम इस धक्के से सँभल कर उठ खड़ा हुआ। पर वह अब पहले की तरह सुखी न था। वह जानता था, कि इसहाक मुसलमान था, और उसकी बीवी तथा लड़का मारा गया है। कैंप में कई एक व्यक्ति उसे जानते थे।

उसे सब से आश्चर्य इस बात पर हुआ, कि रजाकारों ने एक व्यक्ति को इस तरह मार डाला, और जरा भी आँच तक नही हुई। वह अब चाहता था, कि कैंप-जीवन से छुटकारा मिले।

उसने अपने सहायक रजाकारो से कहा—अब तो, भाई, कहीं जगह मिल जाय। यहाँ तो तबीयत नही लगती।

उन लोगों ने पूछा—हजरत, आपको कोई तकलीफ तो नही है?

—नही, नही। फिर भी कब तक कैंप में रहे? यहाँ तो छः महीने हो गये।

—हाँ, हाँ।

महीने-भर के अन्दर ही रजाकारो की कोशिश से करीम-परिवार को कैंप से छुट्टी मिली। जाने की तारीख भी तय हो गयी।

निश्चित तारीख पर करीम-परिवार एक स्पेशल ट्रेन में बैठाया गया। करीम को बताया गया, कि उसे एक हिन्दू का छोडा हुआ बढ़िया मकान मिलेगा। उस ट्रेन में एक सौ से अधिक परिवार थे। मर्द अलग थे, स्त्रियाँ अलग। 'अल्लाहो अकबर' आदि नारे के साथ गाड़ी रवाना हुई।

जब गाड़ी कई घंटे चलकर एक स्थान पर पहुँची, तो लोगों ने आँखे फाड-फाड कर देखा, कि यहाँ तो एक मिल है, और कुछ कुलियों की खोलियाँ है। पास कोई हवेली भी नही है। लोगो को बडी निराशा हुई। तो क्या यहाँ कुली का काम करना है? पर इतना सोचने का समय कहाँ था? लोग अपने परिवार के लोगों को तथा सामान बटोरने मे लग गये, क्योकि जिसको जहाँ जगह मिली थी, वह वही चढ गया था। स्पेशल ट्रेन होने पर भी बडी भीड़ थी।

करीम ने जल्दी मे जोहरा तथा लडको को ढूँढ लिया, पर बड़ी दो लड़कियों का कही पता न था। सबने मिलकर खाली डिब्बों को, बेंचों के नीचे, ऊपरी बर्थो पर, पाखानों मे, यहाँ तक कि करीम के उत्साही लड़को ने इंजन तक को ढूँढ डाला, पर फातिमा और हुस्नबानू का कही पता न लगा। जाँच करने पर पता लगा, कि ये चढ़ाई ही नही गई थी। उनको किसी ने स्टेशन पर भी नहीं देखा था। करीम ने तो सारा भार रजाकारों पर छोड़ रखा था। खुद तो वह ऐसे सफर कर रहा था, जैसे बडे नेता दौरे पर जाते है।

जब फातिमा और हुस्नबानू नही मिली, तो करीम ने कहा, कि—मैं वापस जाऊँगा, पर उसे इसकी इजाजत नही मिली। उसे मालूम हुआ कि इजाजत न मिलने पर, वह कही जा नही सकता था। जोहरा खुल कर रजाकारों को कोसने लगी, कि यह उन्ही का काम है। वह करीम को भी बुरा-भला कहने लगी। अन्त तक दोनो लड़कियों का पता नही लगा। और इधर सब बालिग मर्दों को इस मिल में काम करना पडा। काम करने से करीम घबराता न था, पर कपड़े की मिल में काम करना उसे पसन्द न था। उसके मन मे यह बात बसी हुई थी, कि

ताँगे वाले का काम सबसे अच्छा है, क्योंकि बैठे-बैठे दुनिया भी देखो, और रोजगार भी करो। पर मजबूरी थी।

जोहरा एक दिन के बुखार में चल बसी। अब तो करीम के लिए बड़ी मुसीबत आयी। घर का सारा भार उस पर आ पड़ा। उसके पहले के और बाद के मारे स्वप्न टूट चुके थे। मिल मालिक एक सिन्धी मुसलमान था। मजदूरों की हालत बुरी थी। उन्हें भारत की मिलों के मुकाबले में बहुत कम तनख्वाह मिलती थी। शिकायत करने पर कहा जाता था, कि पाकिस्तान अभी नया मुल्क है। अधिक शिकायत करने पर इसहाक की तरह मारे जाने का डर था। किसी को भी हिन्दुओं का आदमी कहकर मार डाला जा सकता था। कोई सुनवाई नहीं होती थी। भीतर-भीतर लोगों में असन्तोष सुलग रहा था।

एक दिन करीम ने स्वप्न देखा, पहले के जमाने का। जोहरा को देखा, हुस्नबानू और फातिमा, अकबर सभी दुबले हो रहे थे।

अगले दिन सुबह करीम चिन्तामग्न उठा। उसने बड़े बेटे से कहा—मैं तुम्हारी बहनों को खोजने जा रहा हूँ।—उसने दस छिपी हुई गिन्नियाँ उसे दीं। फिर कहा—बेटा, छोटों का ख्याल रखना। मैं पता लगाकर ही वापस आऊँगा।

बच्चे रोने लगे। उसने समझाया। करीम वहाँ से रवाना होकर पहले के कैंप में पहुँचा। पर वह तो चिड़ियाखाना था। न तो वहाँ वे पनाहगजीन थे, न रजाकार। कुछ पता नहीं लगा। एकाध पुराने जान-पहचानी रजाकार मिल भी गये, पर वे इस तरह बात करने लगे, कि उसे शक हुआ, कि ये उसे कहीं गिरफ्तार न करा दें। वह उसी दिन रवाना हो गया, और किसी तरह दिल्ली में सेवाराम के यहाँ पहुँचा।

सेवाराम को देखकर ही वह समझ गया, कि इस बीच में उस पर भी अच्छी नहीं बीती। वह इन्हीं कुछ महीनों में बूढ़ा-सा हो गया था। करीम ने इस बीच में की सारी कथा सुनाई। सुनकर सेवाराम ने कहा—भई, मेरी हालत तुमसे कुछ अच्छी नहीं रही। तुम जब चले गये, तो तुम्हारे महाजन को किसी तरह पता लग गया, कि तुम्हारा घोड़ा मेरे पास है। बस, मैं एक मुसलमान को लूटने के लिए गिरफ्तार हो गया। घोड़ा और ताँगा जब्त तो हो गये, जेल से छूटने के लिए गायों को बेचकर दारोगा जी को पाँच सौ घूस देना पड़ा। लड़का मिल में मजदूरी करता है। किसी तरह गुजारा हो जाता है। मैंने मुसलमानों को बचाया, और मुझ पर इलजाम यह है, कि मैंने मुसलमानों को लूटा। दारोगा का मुंशी जब-तब संघ का मेम्बर बता कर चालान कर देने की धमकी देकर दस-पाँच रुपये ले ही जाता है। अब तो मेरे पास कुछ भी नहीं रहा। अब की मुंशी आयेगा, तो गिरफ्तार हो जाऊँगा। अब तो जेल का डर निकल गया। जब बाप-दादों की निशानी गायें ही चली गईं, तो फिर क्या डर?—उसके स्वर में कड़वापन था।

करीम ने पूछा—ताँगा और घोड़ा कहाँ गया?

सेवाराम बोला—मुझे बताया तो गया, कि तुम्हारे पास भेजा जाएगा, पर है वह तुम्हारे महाजन के पास। उसने बेच लिया होगा।

—उसे कैसे मिल गया?

—अरे, भई, इन्ही लोगों का तो राज है। फिर इन्हें क्यो न मिलेगा? इन्हें क्या-क्या कानून याद हैं। और कानून की भी क्या जरूरत इन्हें?

करीम ने कहा—पाकिस्तान में भी यही हालत है। वहाँ जिस मिल मे हमें काम करना पडता था, उसका मालिक मुसलमान ही है, पर जोक की तरह हमारा खून चूसता है। मेरे चलने के दो हफ्ते पहले एक नौजवान ने एक दिन मजदूरों को बुलाकर लेक्चर दिया था। सो अगले दिन से उसका पता नही लगा!

—पता नही लगा?—सेवाराम ने पूछा।

—हाँ, कहते है, फर्नेस मे डलवा दिया। तब से किसी को कुछ हिम्मत नही पड़ती। सब सह जाते हैं।

दोनों बूढ़े बडी देर तक अपना-अपना दुखड़ा गाते रहे। कब सन्ध्या उतरी, कब रात हुई, उन्हे पता न लगा। उनके मनों मे तो रात-ही-रात थी···गहरी अंधेरी रात, जिसका कोई ओर-छोर न था।

मनुष्य और घोड़े

तीन पुरखों से अब्दुल के यहाँ ताँगा चलाने का काम होता था। अब्दुल के पहले उसका बाप शकूर तथा उसके पहले उसका दादा करीम यही काम करते थे। जिस समय अब्दुल मुश्किल से सात साल का लड़का था, उसी समय से वह इस धन्धे में लग गया था। उन दिनों उसका बाप जिन्दा था, पर अक्सर बीमार रहता था। उसकी माँ तो पहले ही चल बसी थी। कहते हैं कि जब से अब्दुल की माँ मरी थी, तब से शकूर शराब अधिक पीने लगा था, और गरीब होने के कारण जो शराब पीता था, वह खराब किस्म की होती थी, इस कारण वह जल्दी ही बीमारियों का घर हो गया। जब वह बीमार हुआ तो उसने शराब पीना और भी अधिक कर दिया, इस प्रकार उसकी बीमारी और भी बढ गयी। यहाँ तक कि ताँगा चलाना छोड़ने की नौबत आ गयी।

उन दिनों अब्दुल की उम्र केवल सात साल की थी। इतनी ही उम्र में घोड़े और ताँगे का सारा काम उसे आता था। कभी-कभी शौकिया ताँगा चलाता भी था, पर ऐसे सब मौकों पर शकूर भी साथ में होता था। अवश्य कभी उसे अपने बाप की मदद की जरूरत नहीं हुई। ताँगा चलाना उसे उसी प्रकार स्वाभाविक रूप से आ गया था, जैसे बतख के बच्चे को तैरना आ जाता है। फिर भी अभी तक उसने अकेला ताँगा नहीं चलाया था। इसलिए जब शकूर ने अपनी रोग-शय्या से उससे कहा कि वह ताँगा लेकर निकल पड़े, तो वह एक बार हिचकिचाया। जिधर मीना घोड़ी अपने बच्चे रुस्तम के साथ बँधी थी, उधर देखा, फिर ताँगे की ओर, और फिर बाप की ओर देखा। बाप ने उसे पुचकारते हुए कहा—बेटा, डरो मत, घोडी खानदानी है, तुम खानदानी हो, और ऊपर देखने वाला अल्लाह है। क्या करूँ, मुझसे उठा नहीं जाता।—कहकर उसने ऐसे मुँह बनाया, जैसे शरीर में किसी जगह कोई चीस उठ रही हो। फिर बोला—मैं भी ग्यारह साल की उम्र से ताँगा चला रहा हूँ।

अब्दुल यों तो मीना और रुस्तम की सेवा करता था, पर सवारी लेकर ताँगा चलाना उसके लिए नई अभिज्ञता होती। फिर भी परिस्थिति को देखते हुए वह

कुछ भी नही हिचकिचाया। फौरन उसने ताँगा जोत लिया, रुस्तम की रस्सी लंबी कर दी, उसके सामने और घास रख दी, पिता की अधटूटी बाँस की चारपाई के नीचे दवा-पानी रख दिया, और फिर ताँगा लेकर रवाना होने लगा। यद्यपि शकूर दो-तीन दिनो से चारपाई से उठा नही था, फिर भी वह इस समय लाठी के सहारे खड़ा हो गया, और घोड़ी के पास जाकर उससे बड़े प्रेम से गले मिला, फिर बोला —मीना, आज लड़का तुम्हारे साथ जा रहा है। मै बीमार हूँ, जा नही सकता। उसका ख्याल रखना प्यारी !···

घोड़ी भी अपनी तरफ से गले मिली, और अपने मुँह को शकूर के गले के ऊपर से ले जाकर पीठ से मिलाते हुए धीरे से हिनहिना दिया मानो वह कहती हो कि कुछ परवाह मत करो। फिर शकूर ने घोड़ी के मुँह पर प्रेम से हाथ फेरा। जब उसका हाथ मीना की नाक पर पहुँचा, तो उसने उसपर दो मृदु थपकियाँ दी, और फिर दूर से उसका मुँह चूम लिया।

घोड़ी के साथ मिलने के इस पर्व के बाद शकूर ने अब्दुल से कहा—बेटा देखना, कभी तैश मे उसे चाबुक न मार देना। पन्द्रह साल से मेरा-इसका रिश्ता है, पर मैंने एक ही बार इसे चाबुक मारा।

अब्दुल जानता था कि वह कौन-सा मौका था जब मीना को चाबुक मारा गया था। बीसियों दफे वह इसकी कहानी सुन चुका था। इस समय से शायद चार साल पहले की बात थी। अभी अब्दुल छोटा ही था। लड़कबुद्धि मे वह पूँछ की तरफ से मीना पर चढ़ने की कोशिश कर रहा था। मीना ने इस पर पीठ हिला दी, और पूँछ पर लटकता हुआ अब्दुल जमीन पर जाता रहा, और जोर-जोर से रोने लगा। अब्दुल की माँ दौडी आई और उधर से शकूर भी आ गया। अब्दुल की माँ ने झपटकर अब्दुल को उठा लिया, और घोड़ी पर नाराज होने लगी। उस समय अब्दुल के बाप ने आव देखा न ताव, चाबुक उठाकर मीना पर दो-तीन झाड़ दिये।

अब्दुल को यह भी याद था कि इस पर क्या हुआ था। मीना ने उस दिन खाना नहीं खाया, और उसकी एक आँख से दिनभर आँसू जारी रहे। दूर से अब्दुल के बाप ने उसे देखा तो उसका दिल टूक-टूक हो गया, पर अब्दुल की माँ के डर के मारे वह कुछ नही बोला। उस दिन ताँगा नही जोता गया। सध्या समय भी जब मीना ने चारा नही लिया, तो अब्दुल के बाप का माथा ठनका। बाजार मे जाकर वह एक बड़ी-सी सफेद डबल रोटी ले आया। फिर उसने उस पर मक्खन की एक टिकिया लगा दी, क्योकि उसने देखा था, बड़े लोग ऐसा ही करते है। इस प्रकार सब सामान से लैस होकर वह मीना की खुशामद करने लगा। तब मीना ने पहले डबल रोटी और फिर चारा खाया। उस दिन अब्दुल की माँ को ~वल खिलाने की बात का पता नही दिया गया था। शकूर चुप रहा। पर

शकूर ने सैकड़ो बार उस कहानी को सुनाया था।

यही एकमात्र मौका था जब वर्षों में मीना पर चाबुक लगाया गया था। अब्दुल इस बात को जानता था, बोला—नही अब्बाजान, मुझसे कभी यह गलती नही होगी।

शकूर ने भावुकता के साथ कहा—अगर चाबुक हाथ मे लेते खजुआने लगे, तो ताँगे के डण्डे पर या छत पर दो-चार झाड देना, पर देखना कही मीना को न लगे। वह खानदानी है, उसे चाबुक की जरूरत नही।

अब्दुल ने उचित शब्दों मे विश्वास दिलाया। पिता का इशारा पाकर अब्दुल ताँगे पर सवार हो गया, और शकूर पहले से अधिक लड़खड़ाता हुआ अपने बिस्तरे पर जाकर लेट गया।

तब से अब्दुल ताँगा चला रहा है। इसके बाद शकूर दो साल तक जीवित रहा, कई बार करीब-करीब अच्छा हो गया, पर कभी इतना नही कि फिर ताँगा चला सके। जब वह अच्छा हो जाता था तो वह कोशिश करता था कि घर के काम-काज मे कुछ हाथ बँटावे। खाना पकाने मे तथा घोडी की सेवा में हाथ बँटाता था। पर अब्दुल बहुत तगडा लडका था, और वह बाहर का काम भी सँभालता था और भीतर का भी। वह पिता को मना करता था कि वह कोई काम न करे, पर बैठे-बैठे उसकी तबियत नही लगती थी, इसलिए वह कुछ न कुछ काम करता था।

अन्तिम बार जब शकूर अच्छा हुआ, तो वह काफी अच्छा हो गया। घर के जीवन से वह ऊब रहा था। साथ ही ताँगा चलाने की शक्ति नही थी। पर अबकी बार उम्मीद बँधी थी कि शायद वह पहले की तरह हट्टा-कट्टा हो जाये। वह यही आशा करता था, और पडोसियो को भी यही आशा थी। मन ही मन वह मंसूबा बाँध रहा था कि बिल्कुल अच्छा हो जाये, तो वह अपनी खातिर तो नही बेटे की खातिर फिर से शादी करेगा। यह तो देखा नही जाता कि नन्हा-सा अब्दुल दिन-भर ताँगा चलावे, और फिर घर मे जाकर खाना पकावे और अन्य काम करे। उसने अपने मन मे यह भी सोच रखा था कि किस प्रकार की स्त्री होनी चाहिए जिससे वह शादी करे। बेवा हो तो कोई हर्ज नहीं पर कोई लड़का-बच्चा न हो। सबसे बडी बात यह है कि हो वह किसी ताँगेवाले खानदान की हो। इस उम्र मे अब यह तो नही हो सकता कि यहाँ आने पर उसे सारा काम-काज सिखाया जाये। अब्दुल की माँ कुलसुम की बात और थी। यद्यपि वह किसी ताँगेवाले के खानदान मे नही आयी थी, फिर भी वह कमउम्र थी, और वह स्वयं भी कमउम्र था, एक तरफ से सीखने और दूसरी तरफ से सिखाने की इच्छा थी। फिर उन दिनों अब्दुल की दादी जिन्दा थी। साल-भर मे ही उन्होने कुलसुम को एक पक्के ताँगेवाले की बीवी मे ढाल लिया था। पर अब तो यह नही हो सकता।

दुबारा शादी करने के सम्बन्ध मे एक सन्देह उसे था। वह यह कि कही शादी करके वह लड़के से गैर न हो जाये। पर इसका भी उपाय उसने सोच रखा था। चाहे वह खूब अच्छा हो जाये, पर उसने तय कर लिया था कि अब उसे ताँगा नही चलाना है। लड़के की कमाई पर ही गुजारा करना है। अब्दुल की दूसरी माँ चाहे कितनी भी बेवकूफ हो, यह तो नही चाहेगी कि कमाऊ पूत से लड़े या उसे अलग कर दे। जरूर, यह बहुत अच्छा पेच रहेगा। साँप भी मरेगा और लाठी भी न टूटेगी।

पर यह सब सोचा-सोचाया धरा रह गया, और वह फिर बीमार हो गया, और अब की बार अच्छे होने की नौबत नही आयी। अन्तिम दिनो मे वह समझ गया था कि अब वह जी नही सकता। जब वह समझ गया कि अब मृत्यु उसके सिर पर खड़ी है, तो उसे इस बात का अफसोस रहने लगा कि उसने दुबारा शादी करने की बात सोची थी। यह अफसोस पश्चात्ताप के रूप मे रहने लगा और इसके कारण उसका अन्त और भी जल्दी हुआ। उसे कुछ ऐसा ख्याल रहने लगा कि दुबारा शादी करने की बात सोचकर उसने अब्दुल के साथ अन्याय किया था, इसीलिए अल्लाह ने···

जिस दिन उसका देहान्त हुआ, उसे जैसे उसका पूर्वाभास हो गया। उसने अब्दुल को ताँगा लेकर जाने से मना किया। फिर उसने बेटे से कहा—मीना और रुस्तम को ले आओ।

वे दोनों मानो इसी की प्रतीक्षा कर रहे थे, और हिनहिनाते हुए मालिक के पास पहुँचे। मीना ने अपनी भाषा मे उससे कुछ कहा, जिसके उत्तर मे अब्दुल उसकी तरफ आँख फाड़कर देखता रहा, पर उससे कुछ बोला नही गया। रुस्तम ताँगे मे जुतने लायक हो गया था। उसके कन्धे मीना के कन्धो से तगड़े थे, और कभी स्थिर नही रह पाते थे। पर वह भी इस समय चुपचाप खड़ा था। इसी हालत में शकूर अपने हाथो मे अब्दुल के हाथों को लेकर मर गया। अब्दुल डाढ मार कर रोने लगा, मीना की आँखों में भी आँसू जारी हो गए, और वह बार-बार अपने भूतपूर्व मालिक को नथनों से सूँघने लगी। रुस्तम हतबुद्धि और अवाक् यहीं पर खड़ा रहा। प्रतिवाद मे उसने दो-एक दफे हिनहिनाना चाहा, पर मीना का कुछ इशारा पाकर वह चुप रहा।

इसी हालत मे पड़ोसियों ने आकर सबको देखा। उनमे से कई उस कोठरी के बाहर ही खड़े रहे क्योकि उन्हे घोड़े से डर लग रहा था। उनके अनुरोध पर अब्दुल ने घोड़े को ले जाकर बड़े प्रेम से वही पर बाँध दिया, जहाँ वे बँधे रहते थे। फिर बाकायदा कफन आदि की तैयारी हुई।

अब्दुल के जीवन मे इसके बाद की सबसे बड़ी घटना मीना की मृत्यु है। जैसे अब्दुल की माँ के मरने के बाद से शकूर बीमार रहने लगा था, उसी प्रकार से

शकूर की मृत्यु के बाद से मीना की भी हालत खराब होने लगी। अब वह जल्दी ही हाँफ जाती थी। कई बार एक्सीडेंट होते-होते बचा। वह जल्दी ही घर लौटने की जिद करती। यदि किसी सवारी को लेकर घर के पास की सड़क से गुजरती, तो वह घर के निकटतम बिन्दु पर आकर रुक जाती, और आगे जाने से इन्कार करती। नौ-दस साल का अब्दुल अपने पिता को दिए हुए वचन के अनुसार उस पर चाबुक न मारता, पर जब सवारी के सामने भद्द होती, तो उसके मुँह से गालियाँ निकल जातीं। वह अब धीरे-धीरे रुस्तम को भी जोतने लगा। कभी मीना को जोतता तो कभी रुस्तम को। रुस्तम अभी जवानी के तेज से भरा हुआ था, वह बहुत अच्छी चाल से चलता, और धीरे-धीरे अब्दुल उसे अधिक जोतने लगा।

मीना को कुछ बीमारी लग गयी, और वह दिन-ब-दिन सूखने लगी। अब्दुल ने भरसक उसकी दवा-दारू की, यद्यपि पड़ोसियों का यही कहना था, मरने दो, अब कहाँ इसका इलाज करते हो, अब तो इसका मरने का समय आ गया।

पर अब्दुल इनकी बातों को नहीं सुनता था। जहाँ तक उससे बन पड़ा, उसका इलाज किया। एक दिन जब वह ताँगा लेकर शहर से लौटा, तो क्या देखा कि मीना मरी पड़ी है, उसकी टाँगें सीधी हो गई हैं, गर्दन पेट की तरफ झुकी हुई है, मुँह खुला हुआ है और आँखें आधी बन्द हैं। इस दृश्य को देखकर अब्दुल दहल गया, और शकूर के मरने पर उसे जितना अफसोस हुआ था, करीब-करीब उतना ही अफसोस उसे अब हुआ। कई दिनों तक अब्दुल और रुस्तम दोनों ताँगे के पास नहीं गये। अन्त में एक दिन अब्दुल ने देखा कि उसके सारे पैसे खतम हो रहे हैं, तब वह रुस्तम के पास गया, और कुछ माफी माँगने के स्वर में बोला—सारे पैसे खतम हो गए, अब तो आज जाना ही है।

रुस्तम का भी शायद यही मत था। घर में रहते-रहते अफसोस और बढ़ता था। शायद बाजार में घूमने-घामने से कुछ दिल बहले। अब्दुल बोला—जो गए वे तो गए, हमें तो काम करना है।

फिर उसने उस दिन रुस्तम की बहुत अच्छी तरह मलाई की, उसके सामने पीतलवाली छोटी बाल्टी में भिगोए हुए फूले-फूले चने रखे। जब वह खा चुका तो वह ताँगा जोतकर बाहर निकल पड़ा।

तब से अब्दुल और रुस्तम की अभिन्न जोड़ी थी। घर में कोई न होने के कारण वे दूर-दूर तक निकल जाते, और अच्छी कमाई करते। अब्दुल का कार्यक्रम यह था कि मुँह अँधेरे उठकर घोड़े की मलाई करता, अपने लिए दो-चार रोटियाँ पो लेता, और फिर ताँगे की पिछली सीट पर बैठकर मुँह में एक बीड़ी रखकर जिधर तबीयत होती निकल पड़ता। जिस दिन कमाई अच्छी होती, उस दिन वह सिनेमा भी चला जाता। कमाई अक्सर अधिक होती, इसलिए वह

अक्सर सिनेमा जाता। वहाँ से वह कोई न कोई गाना सीखकर आता, और अगले दिन वह उस गाने को रुस्तम को सुनाता। दोनों की इस प्रकार मजे मे गुजर रही थी।

इतने मे महायुद्ध शुरू हो गया। अब्दुल के जरिये से रुस्तम को भी कुछ इसका पता लग गया। ठीक-ठीक तो नही, पर उसका कुछ आभास मिला। चीजें महँगी हो गयी। घोड़े के लिए चने में कमी हुई। अब्दुल रुस्तम को समझाता—चना मिलता ही नही तो करूँ क्या?

शायद अपनी बात का प्रमाण देने के लिए वह ताँगा लेकर उस दूकान पर पहुँचा जहाँ चना बिकता था। पर अब वहाँ चना नही था। वह रुस्तम को दिखाकर कहता—देखो यहाँ चना नही है।

इसी प्रकार मालिक और घोड़ा दोनो बहुत-से अभावों के शिकार हुए। उधर युद्ध चलता रहा। यद्यपि अब्दुल कोई राजनीतिज्ञ नही था, पर पढ़ा-लिखा न होने के कारण वह युद्ध के सम्बन्ध मे दूसरों से पूरी खबरें पाने की चेष्टा करता था। सब सवारियों से पूछता और सबकी खबरों को मिलाकर अपना एक नतीजा निकालता। जब कभी उसे रेडियो सुनने का मौका लगता तो वह रेडियो मे खबरें भी सुन लेता था। अगर वह किसी सड़क से जाता था, और रेडियो में खबरें होती थी, तो चाहे उसके ताँगे मे सवारी बैठी हुई हो, तो भी वह किसी न किसी बहाने ताँगा रोककर खबर सुनने वालों की भीड़ मे खड़ा हो जाता था। रेडियो में जो सम्पूर्णरूप से अपरिचित भौगोलिक नाम आते थे, उनके बावजूद वह इतना समझ जाता था कि कौन जीत रहा है। जिस समय जर्मन जीतते थे, उस समय उसे बहुत अच्छा मालूम होता था। उसे मालूम था कि इस समय अंग्रेजों ने देश के नेताओं को जेल मे बन्द कर रखा था। न मालूम कैसे उसे विश्वास हो गया था कि जर्मनो के आने पर सब कुछ अच्छा रहेगा।

पर जर्मन तो आये नही, और भारत मे अमेरिकन आ गये। ये अमेरिकन अक्सर ताँगों पर चढ़ते थे, और जहाँ उसे एक रुपया मिलना चाहिए, वहाँ उसे पाँच और दस रुपये मिल जाते थे। उसे पता लग चुका था कि ये अमेरिकन अंग्रेजों के मित्र हैं और जर्मनों के शत्रु। इससे उसके मन में एक बड़ी उथल-पुथल मच गयी। ये अमेरिकन कितने अच्छे थे। हर बात पर हँसते थे। पैसे को कुछ समझते ही नही थे। वह अपने ढँग से बड़ी दुविधा मे पड़ गया कि अमेरिकन अच्छे हैं कि जर्मन। उसने दबी आवाज में दो-एक भारतीय सवारी के सामने अपना सन्देह रखा। पर किसी ने इसका सदुत्तर नही दिया। तब उसने इस प्रश्न को रुस्तम के सामने रखा। पर रुस्तम अमेरिकनो से विशेष खुश नही था क्योंकि जब भी वे ताँगे पर बैठते थे तो यही कहते थे कि बहुत तेज भगाओ। रुस्तम को इस बात से बड़ा क्रोध आता था कि यदि इतना तेज ही जाना है, तो टैक्सी पर क्यों नही

बैठने । इसलिए बात वहीं खटाई में रह गयी । अब्दुल किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका, पर एक बात तो हुई कि जर्मनों के लिए उसका जोश पहले से ठंडा पड़ गया ।

इस समय तक अब्दुल की उम्र 18 साल की हो चुकी थी । उसे किसी प्रकार की लत नहीं थी, इसलिए उसने कुछ रुपये भी बटोर लिए थे । उसने घोड़े के लिए बढ़िया से बढ़िया साज आदि खरीदे थे । ताँगे को इस प्रकार से गद्दी, आइना आदि से सुसज्जित किया था कि दूसरे ताँगे वाले ऊपर से तो उस पर हँसते थे, पर भीतर से जलते थे । कई लड़की वाले उसके पीछे पड़े हुए थे, पर वह किसी की नहीं सुनता था । रिश्तेदार आकर समझाते थे कि शकूर मियाँ तो उठ गये, अब हम ही लोगों का काम है कि तुम्हारी देखभाल करें । फिर भी वह नहीं माना । उसने कहा—बस, मेरे लिए रुस्तम काफी है, और मैं रुस्तम के लिए काफी हूँ ।

लड़की वाले उससे कुछ निराश हुए, पर मौका देखते रहे । अब्दुल बहुत तन्दुरुस्त था । कभी बीमार भी पड़ता, तो एक-दो दिन के लिए । उस समय किसी न किसी तरह काम चल जाता था । पर इस समय कोई ऐसी बीमारी फैली, जिससे बहुत कम लोग बचे । अब्दुल भी बीमार पड़ा, और चार दिनों तक बुखार नहीं उतरा । जब वह अच्छा हुआ तो उसे मालूम हुआ कि उसे जो कुछ तकलीफ हुई, सो हुई, रुस्तम को ठीक तरह से खाने-पीने को नहीं मिला । पड़ोस में एक ताँगे वाला था, जो उसके पिता का हमजोली था, वही आकर उसकी तथा उसके घोड़े की देख-रेख कर जाता था । पर उसे काम बहुत रहता था, घोड़े की अच्छी देख-रेख नहीं हुई। यह तो अब्दुल रुस्तम को देखकर ही पहचान गया । उसने मानो इसी की क्षतिपूर्ति के लिए रुस्तम को जलेबियाँ लाकर खिलाया, और उससे बहुत लाड़-प्यार किया । कोई रोज-रोज ऐसी बीमारियाँ नहीं आती, इस कारण यह घटना यहीं पर भुला दी जाती, पर एक बात हुई जिससे इस घटना का बहुत भारी असर हुआ । अब्दुल यह देख रहा था कि बहुत पुचकारे जाने पर भी और जलेबी खिलाये जाने पर भी रुस्तम खुश नहीं हो रहा था । कहीं उसके मन में कोई तकलीफ थी । अब्दुल समझता था कि बीमारी के दिनों में लापरवाही हुई, कोई बात नहीं, धीरे-धीरे यह कष्ट दूर हो जाएगा ।

अब्दुल ताँगा लेकर जाने लगा । रोज का क्रम जारी हो गया । एक दिन रात को वह खाली ताँगे पर घर लौट रहा था । उसकी जेब भी भरी हुई थी । पीछे की सीट पर बैठकर लगाम ढीला करके वह एक सिनेमा का गाना बेतुके ढँग से गाता हुआ घर लौट रहा था । ऐसे समय रुस्तम को चलाना नहीं पड़ता था, वह खुद ही चलता था । रास्ते में एक पड़ोसी ने उसे इशारा किया । उसने सोचा ताँगा खाली देखकर मुफ्त में घर लौटना चाहता होगा । फिर भी पड़ोसी ही था, इस कारण उसने अप्रसन्न होकर गाना बन्द कर दिया, लगाम खींच दिया और बोला

—आइये।

उस व्यक्ति ने कहा—नही-नही, मैं पैदल ही आऊँगा। मुझे एक वात कहनी है, कई दिनों से मौका लग नहीं रहा था।

अब्दुल ने कहा—कहिए क्या वात है?

उस व्यक्ति ने चारों तरफ देखा, और फिर बोला—यह हुसेन है न, तुम्हारा बुजुर्ग और दोस्त बनता है। जिन दिनों तुम बीमार थे, और बेहोश पड़े थे, उन दिनों इसका भी घोड़ा बीमार था, और यह तुम्हारे घोड़े को अपने ताँगे में जोतता था।

अब्दुल ने जो यह बात सुनी तो उसके सारे बदन मे आग-सी लग गयी, बोला—तो उसे मारा भी होगा।

'हाँ, रुस्तम ने उसका ताँगा खीचने से इनकार किया, इस पर उसने उसे खूब मार लगायी।' कहकर पड़ोसी ने पूरा वर्णन करके सारी बात सुनायी।

सुनकर अब्दुल के आँसू आ गये। बोला—उसकी इतनी मजाल! अब्बाजान ने भी कभी इसे नही मारा गोकि उन्होंने इसे ताँगा खीचने की तालीम दी थी।

वह वहाँ से सरपट घर पहुँचा। घोड़े को जल्दी से खोल दिया, और उसके पैरो के सामने लेट गया। फिर रुआँसा होकर बोला—मार, तू मुझे मार, तू मुझे जान से मार डाल। तुझ पर इतनी आफत गुजरी, और मुझे कुछ पता भी नहीं हुआ।—बहुत देर तक वह इस प्रकार गिड़गिड़ाता रहा, पर रुस्तम ने उसे मारा नही, इसके विपरीत वह बार-बार उसे अपने नयनों से धक्का देता रहा कि उठो, और मृदु-मृदु हिनहिनाता रहा। इस प्रकार रुस्तम से माफी माँगकर अब्दुल सीधा हुसेन के घर पर पहुँचा, और लगा उसे भला-बुरा कहने। अगर पड़ोसी बचा न लेते, तो उस दिन बड़ी भारी फौजदारी हो जाती। बुजुर्गों ने उस दिन से समझाना शुरु किया, और अब्दुल शादी करने के लिए तैयार हो गया।

इस प्रकार अब्दुल की शादी हो गयी। शादी होने के कारण अब्दुल को अब घर का कोई काम करना नही पड़ता था, पर वह रुस्तम के सारे काम खुद ही करता रहा। इस सम्बन्ध में उसने कभी कोई कोताही नहीं की। उसकी बीबी फातिमा ने कई बार चाहा कि अब्दुल इस काम को भी उसके सुपुर्द कर दे, पर अब्दुल ने इस सम्बन्ध में उसकी बात चलने नही दी। फातिमा के बाप के यहाँ भी ताँगे का काम होता था। इस कारण उसे कुछ सिखाना नही पड़ा। और सबसे मजे की बात यह है कि अब्दुल यही समझता रहा कि वही रुस्तम का सारा काम करता है, पर धीरे-धीरे फातिमा ने इनमें से बहुत से कामों को चुपके से अपना लिया। गृहस्थी बहुत शान्ति से चलने लगी।

एक दिन सुनायी पड़ा कि इटली हार गया। फिर कुछ दिनों बाद सुनायी पड़ा कि जर्मनी हार गया। अब्दुल के वस्तुवादी मन ने इस प्रकार तसल्ली कर

ली कि खैर कोई बात नही, जर्मन न सही, ये अमेरिकन आयेंगे, जो बहुत अच्छे है; अंग्रेजों से तो लाख दर्जे अच्छे हैं। अब्दुल को राजनीति का जितना ज्ञान था, उसके अनुसार यहाँ पर किसी न किसी दूसरी जाति का शासन होना अनिवार्य था। अब्दुल का मत यह था कि जो लोग दो-दो आने पर घंटों मोल-भाव करते हैं, वे भला अपना शासन कैसे करेंगे। पर अंग्रेजों से वह चिढ़ा हुआ था। हिन्दुस्तानियों की तुलना में अंग्रेजो से अधिक पैसे मिलने पर भी वह अंग्रेज सवारी लेना पसन्द नहीं करता था, क्योंकि वे लोग न मालूम कैसे बोलते थे, और साथ मे कई बार ब्लडीफूल भी कहते थे। जब तक कोई अंग्रेज उसके ताँगे पर बैठा होता था, तब तक उसकी हालत ऐसी होती थी, जैसे उसे काठ मार गया हो। जब वे उतर जाते थे, तब उसे अच्छी तरह साँस आती थी, और जब वे दूर निकल जाते थे तब वह अपनी सारी भड़ास निकालकर उनकी तरफ देखकर कहता था—ब्लडीफूल।

जर्मनी की पराजय के बाद थोड़े ही दिनों में जापान की भी हार हो गयी। इन दिनों घटनाएँ इतनी तेजी से हो रही थी कि पता नहीं कौन पहले हो रही थी और कौन बाद को। शायद इसीके बाद नेतागण छूट गये, और अब्दुल ने सुना कि स्वराज्य होने वाला है। स्वराज्य के सम्बन्ध मे इस समय तक अब्दुल के दिमाग मे बहुत सुन्दर नक्शा बन चुका था। इन दिनों वह यदा-कदा अमेरिकन फौजियों के सम्बन्ध मे एकाध अफवाह सुन लेता था। कई बार वह सुन चुका था कि अमेरिकन फौजी भारतीय स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार कर चुके है। इधर अमेरिकन लोग पहले से होशियार हो गये थे, और ताँगे वालो को पहले से कम पैसे देते थे। अब्दुल अपने ढँग से एक देशभक्त था, और उसने इन बातो से यही नतीजा निकाला कि स्वराज्य हो जाना ही अच्छा है। सवारियो को भी वह उसी ढँग की बात कहते सुनता था। उसने भी रुस्तम से अकेले मे यही कहना शुरू किया—अब तो रुस्तम, स्वराज्य हो जायेगा, तो तुझे इतना चना खिलाया जायेगा कि तू भी याद करेगा।

इतने में उसने यह भी सुना कि पाकिस्तान होगा, और देश के दो टुकड़े कर दिये जायेंगे। एक टुकड़े में केवल हिन्दू रहेंगे और दूसरे में केवल मुसलमान। सुनने मे तो यह बात अच्छी मालूम हुई, पर गहराई से सोचने पर उसमे इस बात के लिए विशेष जोश नही रहा। मुसलमानों से उसकी आमदनी बहुत कम थी। उसकी अधिकतर सवारियाँ सेठ, साहूकार तथा हिन्दू मध्यवित्त वर्ग की होती थी। पर उसकी राय लेकर घटनाएँ हो नही रही थी। और यथासमय देश के दो टुकड़े कर दिये गये। उस दिन लालकिले पर जो उत्सव हुआ, उसमे अब्दुल गया, यद्यपि उसे समझ मे नही आ रहा था कि देश के दो टुकड़े होने से स्वराज्य का क्या सम्बन्ध है।

इसके बाद ही सुनने में आया कि पंजाब में भीषण साम्प्रदायिक दंगे हो रहे है। उनका जो वर्णन मिलता था, उसे सुनकर अब्दुल के भी होश उड़ने लगे। ये दंगे क्या थे, एक सम्प्रदाय के द्वारा दूसरे सम्प्रदाय का सामूहिक विनाश था। अब्दुल को सबसे बुरी जो बात मालूम हुई, वह यह थी कि अब ताँगे वालों की बिरादरी में भी फर्क आ गया था। पहले ताँगेवाले ताँगेवाले सब एक थे। पर अब खबरों पर बातचीत करने के लिए हिन्दू ताँगेवाले अलग जाते थे, और मुसलमान ताँगेवाले अलग। इस बात से अब्दुल बहुत परेशान हुआ, और समझ गया कि परिस्थिति गम्भीर है। दिल्ली अभी दंगों से अछूती थी, फिर भी बहुत-से लोग भयग्रस्त होकर पाकिस्तान का रास्ता ले रहे थे। इन दिनों अब्दुल का श्वसुर बन्देहसन उससे बहुत मिला करता था। बन्देहसन उसे पाकिस्तान चल देने के लिए समझा रहा था, पर वह राजी नहीं हुआ। जब दिल्ली मे आबोहवा कुछ बिगड़ी, तब बन्देहसन ने उसे फिर से कहा, तो वह कुछ-कुछ राजी हो गया। पर एकाएक उसने पूछा—हम रुस्तम को भी ले जा सकेंगे न ?

बन्देहसन ने कहा—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, हम लोग खुद ही खैरियत से निकल जायें यही बहुत है।

इस पर अब्दुल ने पाकिस्तान जाने से साफ इनकार कर दिया। बोला—मैं तो यहीं रहूँगा, जो कुछ होगा सो भुगत लिया जायगा।

इस पर श्वसुर और दामाद मे झड़प हो गयी। सास ने आकर समझाया, दूसरे रिश्तेदारों ने भी समझाया, पर अब्दुल टस से मस नहीं हुआ। तब एकाएक समझाना-बुझाना समाप्त हो गया। अब्दुल ने कहा, चलो अच्छा हुआ। पर एक दिन जब वह रात के समय घर लौटा तो उसे मालूम हुआ कि फातिमा घर पर नहीं है। पूछताछ करने पर अगले दिन तक पता लगा कि बन्देहसन सपरिवार पाकिस्तान चला गया और साथ मे फातिमा को भी लेता गया। अगले दिन अब्दुल ने ताँगा नही जोता और उसे बहुत दुःख रहा। रुस्तम के साथ वह बातें करता रहा—यह कैसा स्वराज्य हुआ जिसमें तू मेरे साथ नहीं रह सकता। इससे तो अंग्रेज ही अच्छे थे। मजहब के नाम पर यह बेइन्साफी ! इससे तू ही अच्छा है कि घोड़ो मे कोई मजहब नही है—इसी प्रकार वह बहुत कुछ कहता रहा। रुस्तम सुनता रहा, बीच-बीच में हिनहिना देता।

फिर अगले दिन ताँगा जुता और रोज का काम होता रहा। दिल्ली मे भी दंगे का जहर फैल गया। खुलकर दंगे होने लगे। फिर तो मुसलमानों में भगदड़ मच गयी। अब्दुल ने समझ लिया कि ताँगा जोतना तो क्या अब जीना भी मुश्किल है। उसके जान-पहचानी बहुत-से लोग भाग चुके थे। अब्दुल न तो कभी ईद के अलावा किसी दिन नमाज पढ़ता था, और न मसजिद में जाता था। पर जब वह बहुत परेशान हुआ, तो उसने अपने बाप के जमाने की कुरान शरीफ की प्रति

निकाली और उसे देर तक सिर से लगाये बैठा रहा। पढ़ना तो उसे आता नहीं था। फिर वह उठा, पंसारी की दुकान में गया और वहाँ से कोई चीज़ लाकर उसने देर तक पीसा। फिर उस पीसी हुई चीज को मिठाई और इत्र मे महकाकर उसने घोड़े को खिला दिया। घोड़े ने उस द्रव्य को बड़े चाव से खाया। पर थोड़ी ही देर में उसका सारा शरीर ऐंठने लगा, मुँह से झाग निकलने लगा और वह ज़मीन पर गिर पड़ा।

अब्दुल से आगे देखा नहीं गया। वह निकल पड़ा। अब उसके लिए हिन्दुस्तान और पाकिस्तान, जीवन और मृत्यु दोनों बराबर थे। एक बार वह उसी पंसारी की दुकान के सामने गया, सोचा वह भी क्यों न उसी वस्तु को खा ले। पर कुछ सोचकर वह उल्टे पाँव लौटा और बिना किसीसे कुछ पूछे चलता रहा, चलता रहा, चलता रहा।

मर्दुमखोर

केन्द्रीय जेल के कैदियों मे उस दिन एक खबर से वडी सनसनी फैल गई। जेल में रोज नये-नये कैदी जाते रहते थे, उन्ही परिचित जुर्मो में—चोरी, डकैती, राहजनी, उठाईगीरी, बलात्कार इत्यादि। समय-समय पर कुछ राजनीतिक कैदी भी आते रहते थे। अब भी दो-चार बम-पार्टी के लोग जेल में पडे ही थे। काग्रेसी आते थे और फिर साल छ. महीने में छूटकर चले जाते थे। हां, बम पार्टीवाले कुछ टिकते थे।

खैर, यह जो आदमी जेल मे आया था, उसके सम्बन्ध मे लोगों ने जो कुछ सुना, उससे सभी कैदी आश्चर्य में पड गये। ऐसा तो कभी नही सुना गया। बैंजू फाटक मे सीधे यही आया था। उसने चिल्ला-चिल्लाकर अपने मेल के तीन कैदियों से कहा—सुना बलखडी, एक कैदी आया है जो मर्दुमखोर है।···

बैंजू पक्का जानता था कि इस शब्द को कोई कैदी नही समझेगा, इसलिए जान-बूझकर इस शब्द का प्रयोग किया था। स्वयं वह भी घटा-भर पहले इस शब्द को नही जानता था। नायब साहब ने उस कैदी का टिकट देखकर कहा था—अरे, यह तो मर्दुमखोर है। फिर स्पष्टीकरण करते हुए कहा था—यह आदमी खाता है!

बैंजू पक्का ने तभी याद कर लिया था मर्दुमखोर। उसने बलखंडी से कहा—'एक मर्दुमखोर पकड़कर आया है।

बलखडी ने पास आते हुए अनुनय के स्वर मे कहा—मर्दुमखोर क्या?

बैंजू के लिए यही तो मौका था सब कैदियों पर अपनी सर्वज्ञता का रोब बैठाने का। आत्मश्लाघा की हँसी हँसते हुए बोला—यही तो बात है। भई, वह जो आया है न, वह आदमी खाता था।

यह बात कहना था कि आसपास के सब कैदी अपना-अपना काम छोड़कर उसके पास आ गये। एक छोटी-सी भीड़ इकट्ठी हो गयी। सबके चेहरे पर उत्तेजना थी। रामदास नामक एक बूढ़े कैदी ने कहा—जाओ बैंजू, तुम हम लोगों को बना रहे हो। आदमी भी कोई खाने की चीज है! दुनिया में इतनी

चीजो के रहते हुए आदमी को कौन खाएगा ?

एक वाईस साल की उम्र का पाकेटमार मीरसिंह वीच में वोल पड़ा—पर मैंने सुना है कि आदमी का गोश्त वडा मीठा होता है।

वैंजू ने उसे डाँटते हुए कहा—चुप रह वे, वेकार में वकता है। वावा की बात पहले सुन तो ले।

रामदास अपने जमाने मे एक प्रसिद्ध डाकू था। वह इस जेल का सबसे पुराना कैदी था, सब कैदी उसकी इज्जत करते थे, बोला—मुझे जेल मे रहते तेईस साल हो गये, कई जेल देख चुका पर ऐसा कोई कैदी तो नही देखा था।

सबने वूढे की वातों का समर्थन किया। अव सव लोग वैंजू पक्का को उस कैदी के विषय में पूछने लगे—देखने मे कैसा है, क्या पहने है इत्यादि। यहाँ तक कि वैंजू उकता गया। वह एकाएक भीड़ मे से निकलते हुए बोला—अभी थोड़ी देर में यहीं आता होगा, जी भरकर देख लेना। मै जाता हूँ फाटक पर, मेरी उधर ही ड्यूटी है।

वैंजू तो चला गया पर कैदी उसी के सम्बन्ध में आलोचना करने लगे। मीरसिंह पाकेटमार ने सबको सुनाते हुए कहा—भई मैं तो अब यहाँ नही रहने का, बीमार बनकर अस्पताल चला जाऊँगा, कही वह मर्दुमखोर रात को मुझी को खा जायगा तो!

सभी यही वात सोच रहे थे। पर कई कैदी वडे अकड़खाँ होते है। ऐसा ही एक 10 साल की सजा पाया हुआ कैदी सहदेव बोला—हाँ तू ही एक खूबसूरत है कि तुझे ही खायेगा। और अस्पताल तो तेरी ससुराल है कि मुँह से बात निकली और तू वहाँ गद्दे पर लेटा हुआ नजर आयेगा। बेटा यह जेलखाना है जेलखाना।

मीरसिंह ने कहा—खैर, अस्पताल न सही, कोठरी मे जाना तो अपने बस मे है। जिस दिन वार्डर को गाली दे दी कोठरी पहुँच जाऊँगा।

सहदेव बोला—कोठरी कोई नवावी थोड़े ही है चार दिन में सब रँग-पट्ठे ढीले हो जायेंगे।

—हो जायँ पर सही सलामत जिन्दा तो रहूँगा। यहाँ किसी दिन रात को उसे भूख लगी और उसने मुझे खाना शुरु किया तो वस कहीं का न रहूँगा। अभी तो चाचा कुछ खेला-खाया है नही। तुम्हारी तरह कब्र मे पाँव लटकाये थोडे ही वैठा हूँ कि चलो मरने का कोई न कोई वहाना होगा ही—मर्दुमखोर खा जाय तो क्या हर्ज है ? कुछ पुण्य ही होगा कि एक भूखे का पेट तो भरेगा।

सहदेव की उम्र ऐसी कोई अधिक नही थी, अधिक से अधिक 45 थी। इस लिए कब्र मे पाँव लटकाने की बात सुनकर उसे बडा क्रोध आया। बोला—मरना-जीना तो भगवान के हाथ मे है। सैकड़ों वूढ़े वैठे रहते है, और कल के लौंडे मर जाते हैं। पर मुझे यह पसन्द नही कि कोई कायरपन दिखावे। मर्दुम-

खोर है तो क्या कोई नाहर थोड़े ही है। खा गया होगा किसी अपाहिज को अकेले मे पाकर। यहाँ तो दोनों जून डंड पेलते है। मर्दुमखोर तो मर्दुमखोर, एक दफे शेर भी आ जाय तो उसको भी मार गिराऊँ।

कहने को तो वह ऐसा कह गया पर भीतर से उसका हृदय भी धुकुर-पुकुर कर रहा था। कौन भला यह पसन्द कर सकता था कि उसे खा डाला जाय। यो तो ये कैदी निडर थे पर मर्दुमखोर के नाम से सभी कुछ न कुछ घबरा रहे थे।

आखिर दो घंटे मे वह मर्दुमखोर बैरक मे आ भी गया। बैजू पक्का और वार्डर साथ मे थे। सब कैदी एक होकर उसे घेरकर खड़े हो गये। वार्डर ने बहुतेरा कहा—जाओ सब अपने-अपने काम पर, यहाँ खड़े होने का कोई काम नही।

इस पर कैदी कुछ पीछे हट गये। वृत्त और बडा हो गया, पर कोई हटा नही। सब लोग मर्दुमखोर को आँखे फाड़-फाडकर देख रहे थे। पर उसे देखकर सब लोग निराश हुए। कहाँ, इसमे तो कोई भी बात अनोखी नही थी। साधारण मनुष्यो की तरह आँख, कान, नाक। हाँ, दाढ़ी कुछ बढी हुई थी। पर ऐसी तो कई कैदियों की रहती है। खास बात क्या है? उसे सब लोग देख रहे थे, वह किसी को नही देख रहा था, सिर नीचे किये हुए था। पलकें भी धीरे-धीरे गिर रही थी। पीला इतना था कि मालूम होता था, चिता पर से किसी मुर्दे को लाकर खडा कर दिया गया हो। पर आँखें अजब तरीके से अलसाई हुईं, बुझी हुई-सी, पर खूँख्वार थी, जैसी मसान के कुत्तों की होती है।

बैजू ने सब कैदियो पर अपना रोब गालिब करने के लिए उन्ही शब्दो को उन्ही लहजो मे कहा, जिनको जिस लहजे मे नायब साहब ने अभी थोडी देर हुए बैजू तथा अन्य पक्कों और वार्डरो से कहा था। बोला—देखो जी, [illegible] [illegible]टिकट पर न मालूम क्या-क्या खुराफात लिखा है, इसे [illegible] में न रखा [illegible] इस पर दिन-रात देख-रेख रखी जाय, वगैरह वगैरह। [illegible] यहाँ इससे कौन डरता है इसे मामूली कैदी की तरह रखा जाय।

वार्डर ने देखा कि वह मुलाजिम है, पक्का कैदी होकर भी उससे बाज़ी मार रहा है। इसलिए उसने कहा—जहाँ इससे दस दिन अच्छी तरह चक्की पिसाई, इसका दिमाग ठिकाने आ जायेगा। मर्दुमखोरी-वर्दुमखोरी सब भूल जायेगा। यहाँ कई ऐसे देख चुके।

वार्डर की बात सुनकर मर्दुमखोर ने धीरे से आँख उठाकर उसकी तरफ देखा, पता नही, उस दृष्टि मे क्या बात थी। वार्डर यन्त्रचालित की तरह एक कदम पीछे हट गया।

बैजू ने कहा—डाक्टर ने तो इसे चक्की के लिए पास नही किया, बान-बान बटगा।

वार्डर ोला—हाँ, बान ही बटे, कुछ तो करना पड़ेगा।—मर्दुमखोर को

बैरक के छुट्टीवान के सुपुर्द कर वार्डर चला गया। पक्के को तो इधर ही रहना था, वह यहीं रहा।

छुट्टीवान ने मर्दुमखोर को बता दिया कि यह तुम्हारे सोने की जगह है, और एक कब्र-सा चबूतरा उसे दिखा दिया। मर्दुमखोर उस कब्रनुमा चबूतरे को देखकर जैसे कुछ हँसा, पर कुछ बोला नहीं। उसने देखा कि बैरक में सौ से ऊपर इस तरह की कब्रें हैं। वह बताये हुए चबूतरे पर बैठ गया।

छुट्टीवान तथा एक बदलती हुई भीड़ उसके साथ लगी रही पर उसने किसी की तरफ ध्यान नहीं दिया। आँखें मूँद लीं और ऊँघने लगा। छुट्टीवान ने चाहा कि उससे कुछ बात करे। बोला—ए जी, सुनते हो, तुम्हारा नाम क्या है?

कुछ उत्तर नहीं।

—ए जी मर्दुमखोर, तुम्हारा नाम क्या है? तुम अभी से ऊँघते क्यों हो?

मर्दुमखोर शब्द से वह व्यक्ति चौंक पड़ा। फिर उसने आँखें खोलीं, पर पूरी आँखें खुलने के पहले ही उसने फिर बन्द कर लीं। और पहले की तरह ऊँघने लगा, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

सब कैदी सब तरकीबें करके हार गये, पर कोई मर्दुमखोर को बुलवा न सका। कैदियों ने इस पर यह सिद्धान्त रखा कि यह गूँगा है, पर दूसरे लोगों ने कहा कि यह गूँगा हर्गिज नहीं है, किसी कारण से नहीं बोलता। यद्यपि वह बोलता नहीं था, पर उसे जो कुछ भी कहा जाता था, उसका ठीक पालन करता था। काम के समय काम करता, खाने के समय खाता, सोने के समय सोता।

कैदी उससे बहुत कुछ बातों की आशा करते थे, पर वे निराश हुए। फिर भी सब चौकन्ने रहते थे। मीरसिंह सचमुच अस्पताल चला गया था। पर महदेव जैसे लोग कहने लगे थे—बिल्कुल गौ आदमी है। किसी दारोगा ने नामवरी के लिए इसका झूठ-मूठ चालान कर दिया होगा। यह साला आदमी क्या खायेगा? इसे बाहर छोड़ दिया जाय, तो गाँव के कुत्ते उल्टे इसे ही खा जायेंगे।

एक सिद्धान्त यह भी बना था कि यह अघोरी या कोई सिद्ध है। ऊँघता नहीं, बल्कि काली माई का ध्यान करता है। जो कुछ भी हो, उसके सम्बन्ध में तरह-तरह के मत बन गये थे। उसका नाम तो लोगों ने मर्दुमखोर रख ही दिया था। इसी नाम से लोग उसका उल्लेख करते थे। यों टिकट पर उसका कोई और नाम भी था।

कैदियों ने इस बात को मान-सा लिया था कि मर्दुमखोर कभी बोलेगा नहीं। उसके गूँगे होने के सम्बन्ध में भी वे कुछ निश्चित-से हो चुके थे। उसके विषय में कैदियों की दिलचस्पी कुछ घटती-सी जा रही थी। अब उससे कोई डरता नहीं था। अवश्य मीरसिंह (जो अस्पताल से लौट आया था) जैसे आदमी अब भी कहे जा रहे थे कि एक-न-एक दिन यह गुल खिलायेगा, देखते रहो। पर इन बातों

पर कोई ध्यान नही देता था। मर्दुमखोर को लोग एक सीधा-सादा कैदी समझते थे।

पर एक दिन एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना हुई। बैरक मे एक नया कैदी आया था। लोगों ने देखा कि बैरक के हाते के एक किनारे खड़े होकर मर्दुमखोर उस नये कैदी से बातें कर रहा है। बाते भी क्या अपनी हिन्दी मे। पहले एक ने देखा, उसने दो-चार को बुलाया। इस प्रकार पास ही एक छोटी-सी भीड़ जमा हो गयी। यहाँ तक कि वार्डर भी आ गया, मानो बात करना कोई अप्राकृतिक बात हो! जब मर्दुमखोर ने यह कैफियत देखी, तो उसने वात बन्द कर दी और वह एक तरफ को चला गया।

लोगो ने चाहा था कि मर्दुमखोर से कुछ पूछें, पर वह तो बिना किसी की बात सुने ही चला गया, मानो वह बहरा हो। तब लोगो ने उस नये कैदी को पकड़ा। सहदेव ने आगे बढकर पूछा—क्यों सुलतान, तुम इसे बाहर से जानते हो?

—नही—उस कैदी ने कहा।

सब लोग उसे सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। सहदेव ने चिढ़कर पूछा—तो फिर तुमसे बात क्या कर रहा था?

सुलतान बोला—मैं तो इसे नही जानता, पर यह मुझे जानता है। बातो से मालूम होता है कि यह हमारी ही तरफ का है।

सुलतान के इस वक्तव्य से कैदियों को बडी निराशा हुई। एक सुराग हाथ लगकर भी निकला जा रहा था! सब ने बारी-बारी से उससे पूछताछ की, पर कोई नई बात मालूम नही हुई। तब वे निराश होकर बैठ गये। एकरस कैदी-जीवन वैसे ही चलने लगा।

कैदियों मे यह आशा थी कि शायद मर्दुमखोर फिर सुलतान से बात करे, पर उसने इस विषय मे लोगों को निराश किया। कैदियो के सिखाने पर सुलतान ने खुद जाकर उससे बात करने की चेष्टा की, पर मर्दुमखोर ने, जैसा कि उसकी आदत थी, मुडकर भी उसकी तरफ नही देखा। सुलतान ने पूछा—बाबा, तुम कौन हो? बातचीत से मालूम होता है, हमारी ही तरफ के कोई हो।

यह प्रश्न सुनकर मर्दुमखोर के चेहरे पर क्रोध की रेखाएँ प्रकट होकर विलीन हो गयी, पर अन्त तक वह कुछ बोला नही। लोगों ने उसके सम्बन्ध में जानने की इच्छा छोड दी।

जब नये आदमी को आये हुए दो महीने हो रहे थे, उस समय एक घटना हुई। मर्दुमखोर ने सुलतान को मार डाला था और उसका सिर उधड़ा हुआ सारे पाखाने मे फैला था। मर्दुमखोर के मुँह से खून निकल रहा था। उसकी आँखें लाल-लाल हो रही थी। उसके हाथ में एक छोटा-सा चाकू था। यह दृश्य

देखकर कई कैदियों को तो गश आ गया।

फौरन पगली बजी, और बड़े से लेकर छोटे तक सब जेल कर्मचारी, जो जिस हालत मे थे, उसी हालत में दौड आये। बैरक का ताला खोला गया। कैदी जोड़े-जोडे बैठाये गये और मर्दुमखोर पकड लिया गया। उसने जरा भी प्रतिवाद नही किया, सीधे से गिरफ्तार हो गया। उसकी तलाशी ली गई, पर कुछ नही निकला। वह छोटी-सी छुरी तो सामने ही पड़ी थी।

फौरन उस बैरक को खाली कर कैदियों को अन्य बैरकों में बाँट दिया गया। सुलतान की लाश जहाँ की तहाँ पड़ी रही। पुलिस के आने की प्रतीक्षा मे लाश को वैसा ही छोड़ दिया गया। मर्दुमखोर को पीछे मे हथकड़ी डालकर एक खाली कोठरी मे बन्द कर दिया गया।

सबेरे जब पुलिस आयी, तो पुलिसवाले जेलर को दोष देने लगे कि मर्दुमखोर को कोठरी मे रखना चाहिये था। जेलर कह रहा था—मैं क्या करता साहब, इसके टिकट पर जहाँ यह लिखा था कि यह आदमी का गोश्त खाने के कारण कैद किया गया है, वही यह भी तो लिखा था कि हवालात मे इसने तीन बार खुदकशी की कोशिश की है। ऐसे झुकाववाले कैदी को मैं कोठरी में कैसे रखता?

मर्दुमखोर को बुलाया गया। उसके मुँह पर अभी लाल खून लगा हुआ था। चेहरा देखकर डर मालूम होता था। हथकडियाँ खोल दी गयी। अब उसकी पूछ-ताछ शुरू हुई। दारोगाजी वही थे, जिन्होंने उसे सजा कराई थी। बोले—यहाँ भी आकर पाजीपन से बाज नही आये?—कहकर दूसरी तरफ देखते हुए जेलर से बोले—मालूम होता है, आदमी का गोश्त बहुत अच्छा होता है। जिसके मुँह लग गया, उससे छूटता नही।

जेलर ने कहा—हाँ, कुछ ऐसा ही मालूम देता है।

दारोगा ने फिर मर्दुमखोर से कहा—पर बाहर तो तुम मुर्दों का गोश्त खाते थे, यहाँ आकर कौन-सी नई लत पाल ली? यहाँ तो तुमने जिन्दे आदमी को खा डाला।

दारोगा मर्दुमखोर से कुछ उत्तर की आशा नही रखते थे, पर यह क्या, मर्दुमखोर हिला और बोला—हुजूर, मुर्दे खाकर इसी की आदत डाल रहा था।

सब लोग दंग रह गये। एक तो मर्दुमखोर कभी बोलता नही था, वह बोला; दूसरे उसने ऐसी बात कही, जिससे सब चक्कर में आ गये। दारोगा ने एक पान जेलर को बढ़ाते हुए और एक खुद खाते हुए कहा—काहे की आदत, साफ-साफ कहो।

—यही आदमी खाने की आदत।

—आदमी भी कोई खाने की चीज है?

मर्दुमखोर ने बिना कुछ प्रयास के ही उत्तर दिया—क्यो नही हुजूर? अगर

जानवरों में कोई खाने लायक है, तो वह आदमी ही है। बकरा, मुर्गा या मछली किसका क्या नुकसान करते है; पर हुजूर, आदमी न कर सके, ऐसा बुरा काम नहीं।

इतना कहकर मर्दुमखोर अप्रत्याशित रूप से सिसकने लगा। जब उसकी सिसकियाँ बन्द हुईं, तो उसने धीरे-धीरे अपने सम्बन्ध मे जो रोमांचकारी कहानी बताई, वह यों है :

मर्दुमखोर का असली नाम रामतेज था। वह वर्षों से सपरिवार बम्बई मे रहता था। वहाँ कोई छोटी-मोटी दुकान थी। वर्षों के बाद सोचा कि अपने गाँव जाकर देखे कि वहाँ क्या हो रहा है। इसके अलावा इच्छा थी कि गँवई-गाँव में कुछ जमीन खरीदकर एक छोटा-सा पक्का मकान बनावे। इसी टोह मे था। उसके परिवार मे उसके अलावा उसकी स्त्री और दो छोटे-छोटे बच्चे थे।

एक दिन वह अपनी स्त्री के साथ अपने पुराने घर के सामने खड़ा था कि सामने से एक नौजवान गुजरा। वह बहुत अच्छे कपडे पहने हुए था—रेशम का बुशशर्ट और धोती। उसके पैरो में कीमती जूते थे। उसके पीछे पाँच-छै लट्ठ-धारी व्यक्ति थे। एक के पास शायद पिस्तौल भी थी। बाद को मालूम हुआ कि यह व्यक्ति उधर का जमीदार था। खैर, कोई बात नही। बम्बई मे उसकी दुकान के सामने से बड़े-बड़े सेठ और साहब रोज ही निकलते थे। उसने परवाह नहीं की।

पर थोडी ही देर में जमीदार का एक कारिन्दा आया, तो उसका माथा ठनका। कारिन्दे ने बिना किसी भूमिका के कहा—तेरा ही नाम रामतेज है? चल तेरा बुलौवा है।

रामतेज कुछ सोचने लगा कि जाय या नही; पर उस कारिन्दे ने रुखाई के साथ कहा—चल, इधर-उधर क्या देखता है? सीधे से चल, नही तो बाँधकर ले चलूँगा। मेरा नाम कल्लन है।

रामतेज अकड़ गया, बोला—कोई चोर-बदमाश थोडे ही हूँ, नही जाता। तू बड़ा बना है तीसमारखाँ! गवर्मेण्ट का राज है या तेरा?

इस पर कहा-सुनी हो गई। कल्लन उसे मारने के लिए आगे लपका। गाँव-वाले आ गये। बीच-बचाव हो गया। यह तय हुआ कि कल्लन चला जाय, रामतेज अभी खुद जमीदार के यहाँ पहुँचेगा। यही हुआ। रामतेज खुद गया। उसने जाकर जमीदार को सलाम किया।

जमीदार ने कुछ नही कहा, पर कल्लन बोला—हुजूर, यह बम्बई से कुछ रुपये कमा कर आया है, इस पर इसे बड़ा गरूर हो गया है। एकदम सरकश हो गया है। आज जब बुलाने गया, तो लगा हुजूर की शान में गुस्ताखी के अलफाज बकने।

रामतेज ने कहा---मैंने तो कुछ नहीं कहा।

ज़मींदार ने न कल्लन की बातों पर ध्यान दिया, न रामतेज की सचाई पर। नशे में उसकी आँखें लाल हो रही थी। बोला---असली बात पर आओ।

कल्लन गला साफ करके बोला---और हुजूर, यह बम्बई से एक मुसम्मात को भगाकर लाया है। वह बहुत हसीन है, कोई सेठानी है।...

रामतेज ने बहुतेरा कहा कि वह स्त्री सेठानी नहीं, इधर के ही एक गाँव की लड़की है और उसकी शादी में इस गाँव के कई आदमी---जैसे लाखनपाल, हरनाम, सुखई पाँडे---मौजूद थे; पर किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। उसे पकड़कर बगल के एक अँधेरे कमरे में बन्द कर दिया गया। थोड़ी देर में उसकी स्त्री अपने बच्चों के समेत पकड़ मँगाई गयी। वह बेचारी बच्चों के साथ घबरायी हुई आयी। दुष्टों ने उससे आकर कहा था---तुम्हारे पति बेहोश हो गये हैं, जल्दी चलो, वे तुम्हें और बच्चों को देखना चाहते हैं। वह आकर कहने लगी---कहाँ हैं वे ?

पर वहाँ उसकी बातों का उत्तर कौन देता ? रामतेज अपनी कैद से यह सारी बात देख रहा था, पर क्या करता ! ज़मींदार ने कल्लन से इशारा किया। वह रामतेज की स्त्री से बोला---देखो हमें पता लगा है, तुम बम्बई की सेठानी हो और रामतेज तुम्हें भगा लाया है।

वह बेचारी बोली---नहीं, नहीं, मैं कोई सेठानी नहीं हूँ। वे कहाँ हैं ?

वे कहते रहे, यह सेठानी है, और वह कहती रही, यह सेठानी नहीं है। अन्त में कल्लन बोला---जब तुम उसके साथ रह सकती हो, तो हुजूर के साथ भी रह सकती हो। देखो, हुजूर कितने अच्छे है, तुमको मालामाल कर देंगे।

रामतेज की स्त्री समझ गई कि गुण्डों से पाला पड़ा है। वह घर जाने के लिए कहने लगी। पर वहाँ उसे घर कौन जाने देता ! वह पकड़ ली गयी, और दुष्टों ने उसे तथा ज़मींदार को बगल के एक दूसरे कमरे में बन्द कर दिया। बच्चे बुरी तरह रोने लगे। थोड़ी देर में ज़मींदार कमरा खोलकर हाँफता हुआ निकला, बोला---कल्लन, इसने तो मेरे हाथ दाँतों से काट लिये, राक्षसी है, कोई तरकीब करो।

कल्लन बोला---हुज़ूर, अभी करता हूँ। बदमाश औरत है, उसी पेंच से कब्जे में आयेगी।---कहकर उसने रामतेज की स्त्री को बाहर निकाला। फिर उसके छोटे बच्चे का गला दाबता हुआ बोला---अभी इसे मारता हूँ, नहीं तो हुज़ूर की बात पर राजी हो जा।

रामतेज की स्त्री बच्चे को बचाने दौड़ी, पर पकड़ ली गयी। इतने में एक-दूसरे कारिन्दे ने शायद यह दिखाने के लिए कि वह कल्लन से पीछे नहीं है,

लपका, और उसने बड़े बच्चे का गला उसी तरह दबाया। दोनों बच्चों की आँखें निकल-सी आयी। रामतेज की स्त्री बुरी तरह चिल्ला रही थी।

कल्लन बोला—राजी हो जा, तो बच्चे छोड दिये जायेंगे, नही तो अभी मार डालता हूँ।

स्त्री बोली—हाँ, हाँ, छोड'''।

कल्लन बोला—ठीक बोल, कही फिर बदमाशी तो नही करेगी?

स्त्री रोकर बोली—नही।

स्त्री उसी कमरे में गयी। पीछे-पीछे डरते हुए जमीदार साहब गये। इधर जब वे लोग चले गये, तो मालूम हुआ कि छोटा बच्चा तो मर गया। तब कल्लन बोला—यह तो बडा बुरा हुआ। फिर सोचकर बोला—कोई बात नही। अभी तो कइयों को मारना पडेगा।

इतने मे उस कमरे से जमीदार साहब ने शराब मँगवाई। शराब उसी कमरे मे रहती थी, जिसमे रामतेज बन्द था। एक आदमी जल्दी से शराब की बोतल निकालकर चला गया। उसने रामतेज को नही देखा। गड़बड़ में दरवाजा बाहर में बिना बन्द किये वह चला गया। अब रामतेज दरवाजे के पास खड़ा होकर सोच रहा था कि उसे क्या करना चाहिये।

कल्लन कह रहा था—अब यह मर गया, तो इस बडे लडके को भी मारना पड़ेगा, नही तो यह बाद को गवाह बनेगा। फिर सोचकर बोला—मेरी तो राय यही है कि बाकी तीनों को मार डालो। उस सुसरी को चार-छै दिन रखकर, पर इसे और उसका क्या नाम है, रामतेज है, उसे अभी खत्म करो। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। कह देंगे, सब बम्बई चले गये।

सब कारिन्दो ने दाद दी, बोले—वाह भई, क्या खूब कही, बम्बई चले गये! कोई शक भी नही करेगा। चलो फिर काल करे, सो आज कर'''

वे लोग दूसरे बच्चे को मारने मे टूट पड़े। रामतेज समझा कि अब उसकी बारी है, वह दरवाजा खोलकर भाग निकला।

इतने में लोग रामतेज जिस कमरे में था, उसमे पहुँचे। पर उसमें से उसे भगा हुआ पाकर वे लोग उसे खोजने बाहर निकले। रामतेज अभी दो सौ कदम भी नहीं जा पाया था कि उसने पीछे हल्ला सुना। वह कब्रिस्तान के पास था। उसे क्या सूझा कि लपक कर एक बड़े पेड पर चढ गया। खोजने वाले हल्ला करते हुए निकल गये; पर वह डर के मारे पेड़ से नही उतरा। खैरियत यह थी कि पेड बहुत ऊँचा और घना था और कब्रिस्तान होने के कारण कोई उधर से जाता नही था।

सात दिन तक रामतेज पेड़ पर बना रहा। इस बीच मे उसने देखा, क्योंकि वहाँ से चारों तरफ एक मील तक अच्छी तरह दिखाई देता था कि कल्लन उसी रात को बच्चों की लाशों को नदी में डाल आया। फिर चार-पाँच दिन बाद वे

रात के अँधेरे में एक बड़ा-सा कुछ ले जाकर नदी में छोड़ आया। वह निश्चय ही उसकी स्त्री थी। वह सब कुछ देखता रहा, पर जैसे किसी बात से उसका कुछ सम्बन्ध नहीं रह गया था। वह पेड़ पर रहता और अपने को एक भूत समझता। जब भूख लगती, तो पत्ता आदि चबा लेता। अन्त में एक दिन उसने सोचा कि अब उतर चलना चाहिये।

सन्ध्या समय कुछ लोग मुर्दा गाड़ने आये। ऊपर से उसने देखा, जो लोग आये हैं, उनके साथ कुछ खाने की चीज है। वे ऐन पेड़ के नीचे थे। उसे शरारत सूझी, उसने एक डाल तोड़कर फेंक दी। नीचे के लोग चौंके। तब उसने एक और डाल फेंकी, फिर उसने खाँसा। खाँसी सुनकर नीचे के लोग चिल्ला-चिल्ला कर कुरान के मंत्र पढ़ने लगे। तब उसने फिर खाँसा। नीचे के लोग जैसे-तैसे मुर्दे पर थोड़ी मिट्टी डालकर भाग गये। जाते हुए एक ने कहा—मैंने कहा था न, रात को मत आओ, यहाँ जिन रहते हैं।

जब सब लोग चले गये, तो रामतेज उतरा और चारों तरफ खाना ढूँढने लगा। पर कहीं कुछ नहीं मिला, तो उसने मुर्दे को खोदकर देखा कि वहाँ उसके साथ शायद कुछ हो। मुर्दे को टटोलते-टटोलते उसके हाथ नरम-सा कुछ लगा। चलो डबल रोटी है। मुसलमान इसे बहुत खाते हैं। पर हाथ में क्यों नहीं आ रही है? क्या टाँके लगाकर जोड़ गये हैं? शायद। अच्छा तो जोर लगाया जाये। पर यह तो बहुत बुरी तरह टँका है। अच्छा तो एक, दो, तीन। हाथ में कुछ हिस्सा आया। उसने उसे मुँह में रखा। स्वाद अच्छा नहीं था। पर सात दिन की भूख में स्वाद कौन देखता है? वह खाता गया एक कौर, दो कौर, तीन कौर। जब वह पेट भर खा गया, तो उसे पता चला कि वह अब तक जो खा रहा था, वह डबल रोटी नहीं, मुर्दे के शरीर को ही नोंच-नोच कर खा रहा था।

जब खा चुका, तो खा चुका। घृणा उसमें रह नहीं गयी थी। वह फिर पेड़ पर चढ़ गया। भूत या जिन बनकर रहना उसे पसन्द था, पर मनुष्यों की बस्ती में लौटते हुए अच्छा नहीं मालूम होता था। जब हिम्मत बढ़ी, तो एकाध दिन नदी में पानी पीने भी निकल गया। धीरे-धीरे उसका रंग काला पड़ गया और कपड़े फट गये। तब उसने एक मुर्दे का कपड़ा ले लिया। उसके मन में बस एक तमन्ना थी कि जमींदार को पावे, तो मार डाले, पर उसे जब भी देखा, एक मण्डली में। फिर भी वह प्रतीक्षा करता रहा। उधर मुर्दे खाने का कार्यक्रम चलता रहा। एक दिन वह रात के समय मुर्दा खाकर नदी में पानी पीने गया था, तो वहाँ शक में गिरफ्तार हो गया। तलाशी लेने पर उसकी जेब से मनुष्य की हड्डी निकली। इसी पर उसे मर्दुमखोरी में सजा मिल गयी। तब से वह जेल में था।

अपनी कहानी का उपसंहार करते हुए उसने कहा—जमींदार को तो मैं मार न सका, पर मुझे खुशी है कि कल्लन को मैं सजा दे सका।

पुलिस के दारोगा ने पूछा—कल्लन कौन ?

—यही सुलतान। इसने अपना नाम बदलकर सुलतान कर लिया है। अफसोस है कि मैं जमीदार को मार नही सका !

दारोगा ने कहा—हाँ, मैं भूल गया। इसका एक नाम कल्लन भी है। मुझे बताना तो नही चाहिये, पर वह जमीदार मर गया है। कैसे मरा, पता नही; पर बताया यही गया कि शिकार में गया हुआ था, वहाँ से नही लौटा। लोग यह शक करते है कि शेर खा गया। पर खुदा जाने। वह मर गया, तभी तो कल्लन को सजा हो सकी। खैर।

फिर भी रामतेज पर मुकदमा चला और यथासमय फाँसी की सजा हुई। मर्दुमखोर समाज के न्याय का यही रूप था !

महान अमीर ने अखबार निकाला

अफगानिस्तान में जिस समय पहले-पहल समाचारपत्रों का प्रकाशन आरंभ हुआ, उस समय की यह कहानी है।

उस समय जो अमीर अफगानिस्तान के शासक थे, उनका हम नाम न लेंगे। सुविधा के लिए उनका उल्लेख केवल 'महान अमीर' कहकर करेंगे।

महान अमीर देश-विदेश की बातों से परिचित थे। वे विदेश मे हो भी आये थे। उन्होंने एकाएक एक दिन सोचा कि यदि अपने देश को अन्य सभ्य देशों की पंक्ति मे लेना है तो यहां भी अखबार छपने चाहिए। फिर क्या था, हुक्म हो गया कि अब अफगानिस्तान मे अखबार निकलेगा।

चारो तरफ यह खबर बिजली की तरह फैल गयी। अधिकतर मुसाहिब व उमरा महान अमीर की हां मे हां मिलाने वाले थे। पर महान अमीर के इस निर्णय को सुनकर वे भी चिंतित हो उठे। कुछ को यह सदेह हुआ कि न मालूम इस नयी सनक से देश की भलाई होगी या देश कुफ्र के गढे में गिर पड़ेगा। कई तो इतने उद्विग्न हो उठे कि जब मुंह से कुछ कहते न बना तो मस्जिद में जाकर दुआ मांगने लगे—'या खुदा, जो बात वतन के लिए अच्छी हो वही हो।'

जो उमरा तथा अन्य बडे लोग इतने राजभक्त नही थे, उन्होंने दरबार के बाहर कानाफूसी कर दी—'बस, अब तो हुक्म हुआ कि अखबार निकालो; कल हुक्म होगा कि अपनी बीवियो को निकालो और उन्हे लाकर दरबार मे नचाओ…'

इस पर एक खान ने अपनी दाढ़ी पर गुस्से में हाथ फेरते हुए कहा—'यह तो मुझे भी शक है; पर मैं ऐसा-वैसा नही, मेरी भी रगों मे सेलजूका खून बह रहा है। अपनी बहू-बेटियों की आबरू बचाने के लिए मैं खुद एक सौ कत्ल कर डालूंगा।'

यह चर्चा जनता मे भी पहुंची। जनता मे अधिकतर अनपढ लोग थे। शेष जो पढ़े-लिखे थे, उन्होने सारी विद्या मुल्लाओ से पायी थी। एक ऐसा ही पढ़ा-लिखा अफगान बोला—'वाह, अखबार कैसे निकल सकता है? जो बात हमारे पैगम्बर

के जमाने से नही हुई, वह अब कैसे हो सकती है ?'

उपस्थित लोग इस तर्क से प्रभावित हुए। पर एक-एक व्यक्ति ने दबी जबान में कहा—'भई अखबार है क्या बला ?'

जिस व्यक्ति ने विरोध किया था, उसे इस सम्बन्ध मे ठीक पता नही था; पर तो भी उसने अनुमान से कहा—'उसमें खबरें छपा करेंगी।'

दूसरे व्यक्ति ने पूछा—'खबरें कैसी ?'

प्रथम व्यक्ति ने कहा—'यही कि किसकी बहू-बेटी भाग गयी, कौन फाँसी पर चढ़ा, कौन भाग गया···'

कहने वाला कुछ और भी कहना चाहता था, पर उसे कुछ अधिक मालू मनही था।

अब तो उपस्थित लोग बहुत बिगड़े। एक व्यक्ति बोला—'तोबा-तोबा, मैं तो समझता था कि कुछ खुदा रसूल की बातें छपा करेंगी; पर यह तो बिल्कुल कुफ्र। तोबा ! तोबा !!'

जमाव देखकर इधर-उधर से लोग भी आ गये। इस प्रकार जब भीड़ बढ़ गयी और लोग गरमागरम बाते करने लगे तो पुलिस आ पहुँची। थानेदार ने पूछा—'कौन लोग हो ?'

इससे पहले कि प्रश्न का उत्तर मिले, पुलिसवालो ने बन्दूकें उठाकर धड़ाधड़ फायर करने शुरू कर दिये। दो-तीन लाशे गिर गयी, कुछ घायल हुए और शेष जनता भाग गयी।

पर फिर भी अखबार तो निकलना ही था। महान अमीर की आज्ञा टलती कैसे ? छापाखाना तो पहले ही से मौजूद था, बाकी सब सामान भी मिल गया। पर दिक्कत पड़ी तो सम्पादक के सिलसिले मे। अखबार का सम्पादक कौन हो ? बड़ी विकट समस्या उपस्थित थी। महान अमीर इस सम्बन्ध मे किसी भी नतीजे पर न पहुँच सके। इसी चिंता में उन्होने खाना-पीना तक छोड दिया। महल में नृत्य-गीत बंद कर दिया गया। महान अमीर को इस तरह चिन्तामग्न देखकर सेनापति ने फौज को आठों पहर तैयार रहने की आज्ञा दे दी। न मालूम आलीजाह क्या सोच रहे है, कब क्या हुक्म दे दें।

जनता में महान अमीर के इस रुख की खबर पहुँची तो सारे काबुल की दूकानें वन्द हो गयी। लोग घरो से बाहर नही निकलते थे। लोगों ने दरवाजे बंद कर व उनके सामने बड़े-बड़े पत्थर रखकर घरो को किले की तरह बना लिया और बन्दूकें भरकर चौबीसों घंटे पहरे पर रहने लगे। बच्चों ने रोना बन्द कर दिया।

आखिर तीन दिन के बाद महान अमीर ने पानी माँगा। इसी काम के लिए तैनात एक दरबारी ने झट से सोने के गिलास में चाँदी का तबक चढ़ाकर और उसे

हीरो से जड़ी तश्तरी मे रखकर उन्हे पानी पेश किया। पानी पीकर महान अमीर ने हुक्म दिया—'हुसैनअली को हाजिर करो।'

तुरन्त ही खुद सेनापति फौज की एक टुकडी लेकर हुसैनअली के घर पर पहुँचा। हुसैनअली ने भी और नागरिकों की तरह अपने घर की किलेबन्दी कर रखी थी। ज्यों ही फौज की टुकडी उसके सामने आकर खड़ी हुई, उसने देख लिया और घरवालो की समझ मे आ गया कि कुछ दाल मे काला है। घर-भर मे कुहराम मच गया। साथ ही सबने बन्दूके भी तान ली।

बाहर से सेनापति ने कडककर आवाज दी—'हुसैनअली हाजिर है ?'

सेनापति से हुसैनअली का व्यक्तिगत परिचय था। उसने पत्थरो के पीछे से ही पूछा—'क्या है कुलीदाद खाँ ?'

सेनापति ने इसके उत्तर मे पहले तो तीन पक्ति लम्बी महान अमीर की उपाधियाँ बतायी, फिर कहा—'वे तुमको याद कर रहे है।'

हुसैनअली ने समझा कोई गलती हो गयी है, उसी का दड देने के लिए ही महान अमीर ने उसे बुलवाया है। पहले तो उसने सोचा कि बंदूक उठाकर आत्म-हत्या कर लूँ। फिर सोचा कि यदि ऐसा किया तो याद मे शायद घरवालो पर आफत आये, इसलिए उसने महान अमीर के समाने हाजिर होना ही ठीक समझा। उसने दरवाजे के आगे से एक-एक करके पत्थर हटाये, फिर बाहर आकर शहीद जिस अदा से फाँसी के तख्ते पर जाता है, उसी अदा से खडा हो गया।

उसका बाहर निकलना था कि सैनिको ने लपककर उसे घोडे पर उठा लिया और चील जिस प्रकार मांस के टुकड़े को लेकर भागती है, उसी प्रकार उसे लेकर राजमहल की ओर भागे।

एक मिनट के अन्दर ही उसे हाथ पीछे बाँधकर महान अमीर के सामने पेश कर दिया गया। उस समय महान अमीर के सामने दस्तरखान बिछा था, जिस पर तरह-तरह के खाने सजे हुए थे। उसे देखकर उनका चेहरा खिल उठा और उन्होने आदर के साथ उसे अपने साथ खाना खाने के लिए बुलाया। इतना ही इशारा काफी था। फौरन उसके सारे बन्धन खोल दिये गये और वह महान अमीर की बगल में अदब से बैठ गया। महान अमीर ने सेनापति को सिर हिलाकर जाने का संकेत किया और वह वहाँ से चला गया।

दोनों एक साथ खाना खाने लगे। महान अमीर ने कहा—'तुम मेरे साथ विदेशो में रहे हो, वहाँ तुम मेरे दुभाषिया भी थे। अब मेरी इच्छा है कि तुम एक अख़बार निकालो।'

हुसैनअली की अब जान में जान आयी, लेकिन सम्पादक बनना उसे जोखिम का काम लगा। उसे मालूम था कि मुल्लाओं द्वारा जनता मे अखबार के सम्बन्ध में कैसी-कैसी भ्रांतियाँ फैलायी गयी हैं। उसने झिझकते हुए कहा—'यो तो मैं

हुजूर का गुलाम हूँ। पर मैं इस काम के लायक नही हूँ।'

महान अमीर ने कहा—'यह काम तो तुम्हें करना ही होगा। मैं नही चाहता कि मेरा देश अंधकार मे पडा रहे। अखबार निकलना ही चाहिए। हाँ, याद आया, विलायत में रहते समय तुमने अफगानिस्तान और इंगलैंड के आपसी सम्बन्ध को दृढ़ करने के विषय में एक लेख लिखा था, जो 'टाइम्स' मे छपा था। तुम्हारा वह लेख मुझे बहुत पसन्द आया था।'

आखिर हुसैनअली को इच्छा न होते हुए भी अखबार का सम्पादक बनना स्वीकार करना पड़ा। पर उसने महान अमीर से कहा—'मेरे लिए आप दस बाडीगार्ड मुकर्रर कर दे, और मेरे घर पर फौजी पहरा बैठा दें, तभी मैं इस जोखिम को उठाऊँगा।'

बात की बात मे पहरे वगैरह का सब प्रबन्ध हो गया। यो तो अखबार के सम्बन्ध मे लोग तरह-तरह की भ्रांतियाँ फैला रहे थे, तो भी सभी बडी उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पहला अक छपा तो लोग भूखो की तरह उस पर टूटे। इसके बाद जितने अंक छपे, वे सब बिक गये। यहाँ तक कि उनमे चोर-बाजारी चलने लगी। अखबार दुगनी, तिगुनी, चौगुनी संख्या मे छपने लगा। जनता के अन्दर जो विरोधी भावना पैदा की गयी थी, थोड़े ही दिनों मे वह दूर हो गयी। अखबार के सम्पादक हुसैनअली को अब किसी भी खतरे का भय न रहा। उसकी रक्षा के लिए जो बाडीगार्ड और सैनिक पहरा था, वह अब उसने हटा दिया। इतने मे यह घटना घटी।

एक दिन हुसैनअली संध्या समय एक निर्जन स्थान से गुजर रहा था कि एका-एक उसे यह अनुभव हुआ कि कोई ठंडी-सी कड़ी-सी चीज उसके सीने से लगी है। साथ ही किसी ने कहा—'खड़े हो जाओ!'

आज्ञा देने वाले के हाथ में बन्दूक थी जो उसने हुसैनअली के सीने पर गड़ा रखी थी। हुसैनअली भी अफगान था, पर उसके हाथो में बन्दूक नही थी, इसलिए वह कुछ डरा, बोला—'क्या है भाई?'

'भाई किसे कहते हो? मैं तो तुम्हे अपना दुश्मन समझता हूँ; क्योंकि तुमने मेरा लेख नही छापा।' बन्दूक वाले व्यक्ति ने गरज कर कहा।

हुसैनअली वर्षों तक विदेशों मे रहा था। उसको यह तो मालूम था कि भारत आदि देशों में लेख लौटाने पर लेखक सम्पादक के जानी दुश्मन बन जाते है, उस दिन से उसकी रचनाओं को या तो दो कौड़ी की बताने लगते हैं, या उन्हे विदेशी रचनाओं की चोरी बताते हैं, इत्यादि-इत्यादि। पर यह तो...

हुसैनअली ने कहा—'मुझे नही याद आ रहा कौन-सा लेख।'

उस व्यक्ति ने कहा—'हाँ, तुम्हें क्यों याद आयेगा! मेरा लेख न छाप कर तुमने मेरी बेइज्जती की। आज उस बेइज्जती का बदला चुकाता हूँ।'

यह कहकर उसने बन्दूक की नाली को और भी जोर से हुसैनअली की छाती पर गड़ा दिया और घोड़े पर हाथ रख दिया।

हुसैनअली जीवन से करीव-करीव निराश हो चुका था। पर उसने बचने की अन्तिम चेष्टा की, कहा—'भाई, पहले मेरी सुन तो लो ! फिर मैं तो तुम्हारे कब्जे मे ही हूँ। कौन-सा लेख था यह तो बताओ ? शायद वह मेरे असिस्टेन्ट ने मुझे दिखाये वगैर ही लौटा दिया हो।'

इस पर वह आदमी कुछ पसीज गया और उसने बन्दूक हटाकर जेब से एक पर्चा निकालकर दिया और बोला—'यह है वह लेख। जब से वापस आया है, तब से खून का घूंट पीकर तुम्हारा पीछा कर रहा हूँ कि कब मैं तुम्हे अकेला पाऊँ और अपने असम्मान का बदला लूं।'

हुसैनअली ने वह पर्चा लेते हुए कहा—'यह तो जरूर छपेगा। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जरूर छपेगा। अँधेरे मे यह पढ़ा नही जाता, इसका विषय क्या है ?'

उस बन्दूकधारी लेखक ने अपनी दाढ़ी को खुजलाते हुए कहा—'विषय क्या है, स्फुट विचार है।'

हुसैनअली ने सोचा, क्या यह रोग यहाँ भी आ गया ? लोग न तो कोई खबर भेजेंगे, न परिश्रमपूर्वक लिखा हुआ कोई लेख भेजेंगे, न कहानी भेजेंगे, न कविता ही भेजेंगे, बस स्फुट विचार भेजेंगे जिनमे न तो कोई ढग की बात होती है और न कोई क्रम।

खैर, जान बचानी थी। पर्चा ले लिया। दोनों अपने-अपने रास्ते पर चल दिये। जाते-जाते वह व्यक्ति कहता गया—'याद रखना, अपने खानदान मे मैं ही एकमात्र व्यक्ति हूँ जो जीवित है। बाकी सब दो-दो चार-चार दुश्मनो को मारकर मर चुके हैं।'

अगले दिन सवेरे हुसैनअली ने महान अमीर से रात वाली घटना का जिक्र किया। सुनकर अमीर चिंतित हुए, बोले—'यहाँ के लोगों की न जाने यह जहालत कब दूर होगी ! खैर, तुम अब इस घटना को बिलकुल भूल जाओ।'

उसी दिन वह बन्दूक वाला व्यक्ति अज्ञात व्यक्तियों के हाथो मारा हुआ पाया गया। जब हुसैनअली ने यह समाचार पाया तो उसे बड़ा दु:ख हुआ। उसने तुरन्त महान अमीर से आकर कहा—'क्या यह अच्छा हुआ ?'

महान अमीर ने कहा—'मजबूरी थी। ऐसे लोग आधुनिकता मे पल ही नही सकते। उनका मर जाना ही अच्छा है।'

हुसैनअली इस सम्बन्ध मे तर्क क्या करता ? वह चुप रहा। उस दिन से पत्रकार कला में उसका उत्साह कुछ कम हो गया। पर जनता को अखबार पढने का चस्का लग चुका था और उसकी दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की होने लगी।

जब अखबार खूब चल निकला तो महान अमीर ने उसकी सफलता के उपलक्ष्य में सारे देशों के पत्रकार बुलाकर एक बहुत बड़ा समारोह करने का निश्चय किया। तदनुसार देश-विदेश के पत्रकारों को निमंत्रण-पत्र भेज दिये गये और जोर-शोर से तैयारियाँ होने लगी। हुसैनअली को इस समारोह के प्रति कोई विशेष उत्साह नहीं था, तो भी वह अपना कर्तव्य समझकर सब कुछ करता रहा।

उत्सव से ठीक एक दिन पहले की बात है। सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं। दूर-दूर के देशों से पत्र-प्रतिनिधि समारोह में सम्मिलित होने के लिए राजधानी में पहुँच चुके थे। इतने में हुसैनअली बुरी तरह से घबराया हुआ महान अमीर के पास पहुँचा। महान अमीर ने उसकी घबराहट देखकर पूछा—'कहो, खैरियत तो है?'

'खैरियत क्या, मेरी स्त्री को कोई भगा कर ले गया।' उसका गला रुँधा हुआ था।

महान अमीर ने हँसकर कहा—'इसमें घबराने की क्या बात है? एक गयी तो दो आ जायेंगी। अब की बार तुम्हारी शादी किसी राजघराने की लडकी से कर दी जायगी।'

पर हुसैनअली को इन बातों से कोई तसल्ली नहीं हुई। उसे अपनी स्त्री बहुत प्यारी थी। वह उत्सव की बात भूलकर अपनी स्त्री की तलाश करने लगा।

यद्यपि विदेशी पत्रकारों से यह बात छिपायी गयी थी, पर वे न मालूम कैसे सारी बात का पता पा गये। चूँकि वे लोग सबके सब पत्र-प्रतिनिधि थे और यह समाचार बहुत दिलचस्प था, इस कारण उन्होंने सबसे पहला काम तो यह किया कि तार तथा अन्य साधनों द्वारा इस समाचार को अपने-अपने पत्रों में छपने के लिए भेज दिया। कुछ नमक-मिर्च भी लगा दिया। साथी पत्रकार जानकर भी कुछ रियायत नहीं की।

एक मुँहफट ने तो हुसैनअली से यह कहकर सहानुभूति प्रकट की—'खैर, हमारे देशों में यह तो नहीं होता कि लोग सम्पादक की बीवी को भगाकर ले जायें; लेकिन सम्पादक को सजा इससे भी सूक्ष्म तरीके से दी जाती है। उसे तो बदनाम किया ही जाता है, पर साथ-साथ उसकी बीवी को भी बदनाम किया जाता है। यहाँ तक कि अब हमारे यहाँ यह एक सर्वमान्य-सी बात हो गयी है कि कोई भी सुन्दर स्त्री बदनामी से नहीं बच सकती। मिस्टर हुसैन, आप गम न करें।"

दूसरे दिन उत्सव आरम्भ होने से कुछ ही देर पहले महान अमीर की पुलिस ने हुसैनअली की स्त्री का पता लगा लिया। अब सभी विदेशी पत्रकार उत्सव की बात भूलकर इस बात के लिए लालायित हो उठे कि कैसे उस स्त्री के . . . पूर्ण कहानी मालूम की जाय।

विदेशी पत्रकार इस जोड़-तोड़ में इतने व्यस्त रहे कि वे जिस . .

आये थे, वह गौण हो गया। आखिर ये पत्रकार किसी न किसी तरह अपहरण के बारे में एक-एक कहानी पढ़ने में सफल हुए। प्रत्येक की कहानी अलग-अलग थी। जो पत्रकार जितना अधिक कल्पनाशील था, उसकी कहानी उतनी ही रोचक बनी। ये पत्रकार समझ रहे थे कि हम अपहरण सम्बन्धी जिन खबरों को भेज रहे है, वे बिना रोक-टोक सीधी हमारे पत्रों को जा रही हैं; परन्तु महान अमीर उनकी भेजी हुई सभी खबरो को तार-घर से मँगवा कर पढ़ रहे थे। वे इन समाचारो को पढते और खूब हँसते; क्योकि असली रहस्य का केवल उन्ही को पता था।

जब अखबार का समारोह खत्म हो गया और बाहर से आये पत्रकार अपने-अपने देशो को चले गये, तो महान अमीर ने हुसैनअली को बुलाकर पूछा—'तुम्हें तो अपनी स्त्री के भगाये जाने का रहस्य मालूम होगा ?'

'जी नही, मुझे कुछ नही मालूम।'

'तुम्हारी स्त्री ने तुम्हे कुछ नही बताया ?'

'नही, कुछ नही बताया।'

महान अमीर की आँखें चमक उठी। उन्होंने कहा—'तुम्हारी पत्नी को मैंने ही थोड़ी देर के लिए अपनी बहिन के यहाँ बुलवा लिया था।' फिर रुककर बोले—'ऐसा करने में मेरा उद्देश्य पत्रकार-कला सीखना तथा तुम्हें सिखाना था।'

यह कहकर महान अमीर ने पास ही के एक बड़े लिफाफे से उन तमाम तारो तथा पत्रों को निकाला जो विदेशी पत्रकारों ने अपने-अपने अखबारो को भेजे थे और हुसैनअली को पढने के लिए दे दिये।

हुसैनअली ने एक-एक करके तार और पत्र पढने शुरू किये। उसकी पत्नी के भगाने के सम्बन्ध मे ऐसे-ऐसे अजीब-अजीब ब्योरे दिये गये थे कि मानव-बुद्धि भी चकरा जाये। एक ने यह लिखा था—'हुसैनअली की स्त्री के भगाये जाने का यह सातवाँ मौका है और सात ही उसके अखबार के अंक निकले है। प्रत्येक अंक किसी न किसी पाठक को पसन्द नही आता था; बस, वह अपना रोष प्रकट करने के लिए इस तरकीब से काम लेता था।'

एक अन्य पत्रकार ने लिखा था—'इस काम मे अमीर का भी हाथ है। यों देखने मे तो अमीर बडे लोकतंत्रवादी है, पर अपनी कोई आलोचना सहन नहीं कर सकते। जहाँ दूसरे देशो में सरकारें 'आर्डिनेन्स' निकालकर पत्रों का दमन करती हैं, वहाँ अमीर ने इस पत्र के सम्पादक को राह पर लाने के लिए यह नयी तरकीब ढूंढ निकाली है।"

इसी प्रकार के विवरण और पत्रकारो ने भी भेजे थे। बेहद रोचक, परन्तु एकदम झूठ।

सारे पत्रों और तारों को पढकर हुसैनअली ने हाथ की हथेली पर अपना

सिर रखते हुए कहा—'यदि यही पत्रकार कला है, तो इसे मेरा दूर से ही सलाम।'

महान अमीर ने सिर हिलाते हुए कहा—'नही, हमे पराजय नही स्वीकार करनी है। हमें तो इस कला मे और भी आगे वढते जाना है और देश को आगे बढाना है।'

बड़ी देर तक हुसैनअली और अमीर मे इस विषय पर बहस हुई। हुसैनअली ने कहा—'यह ठीक है कि हमारे देश के लोग बात-बात पर बन्दूक तान देते है, पर वे न तो इतने झूठे है, और न इतने मक्कार।'

फिर भी अमीर समझाते रहे। अंत मे एक बात तय हो गयी। अखबार के अगले अंक मे यह समाचार प्रकाशित हुआ···

'विदेशों से जो पत्रकार हमारे देश का निरीक्षण करने आये थे, वे हमारे अखबार के ऊँचे स्टैंडर्ड पर इतने मुग्ध हो गये कि उनमें से कई एक ने यहाँ स्थायी रूप से बस कर पत्रकार-कला सीखने की इच्छा प्रकट की। पर महान अमीर की इस नीति के कारण कि देश मे विदेशी अधिक समय तक न रहे, उनकी प्रार्थनाएँ स्वीकार नही की गयी। इससे उन्हे भारी निराशा हुई। विश्वस्त सूत्रो से पता चला है कि इन पत्रकारों में से कइयो ने आत्महत्या कर डाली है।'

इस समाचार से देश में अखबार का खूब प्रचार हुआ और देश जल्दी ही आधुनिक सभ्य और उन्नत देशो की पक्ति मे आ गया।

मोड़

माधवी देर तक अपने कमरे में बैठी सोचती रही, पर किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सकी। पिताजी ने बहुत कड़ाई के साथ यह कहा था कि अब उसकी शादी रोकी नहीं जा सकती, पर वह तो निश्चय कर चुकी थी और विनय बाबू से कह भी चुकी थी कि वह देश के कार्य में ही अपना जीवन अर्पित करेगी। सच तो यह है कि वह गत दो सालों से छिपे-छिपे क्रान्तिकारी दल में काम कर रही थी। उसे अब तक जो काम दिये गये थे, वे बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं थे। कभी उसे कुछ पर्चे दे दिये जाते, अपने कालेज में बाँट देने के लिए, कभी उसे कुछ पिस्तौलें दे दी जाती, दो दिनों के लिए अपने घर में छिपा रखने के लिए।

इसी प्रकार के छोटे-छोटे काम। पर इसमें बड़ी तृप्ति थी। कितना भी छोटा काम क्यों न उसे दिया जाये, वह इन कामों की बदौलत यह अनुभव कर सकती थी कि वह उस महान् भारतव्यापी ही क्यों, विश्वव्यापी आन्दोलन का एक पुर्जा है, जो साम्राज्यवाद, पूँजीवाद तथा शोषण के विरुद्ध चलाया जा रहा था। कहाँ यह विराट दृष्टिकोण और क्षितिज, और कहाँ घर का छोटा-सा आँगन, और उसका छोटा-सा आकाश!

जहाँ तक अपने मन का सम्बन्ध था, माधवी इस सम्बन्ध में निश्चित थी कि उसे विवाह नहीं करना है, पर···पर यहीं पर आकर सारी समस्या खड़ी हो जाती थी। पिताजी ने बाकायदा नोटिस-सी दे रखी थी कि उसे सुरेश के साथ विवाह करना ही पड़ेगा। यों सुरेश कोई बुरा पात्र नहीं था। घर का धनी था, स्वास्थ्य अच्छा था, चेहरा भी औसत से अच्छा ही था, इसके अतिरिक्त शिक्षित था और जल्दी ही कहीं अच्छी नौकरी लगने वाली थी। दूसरे शब्दों में उसमें वे सभी बातें थीं, जिनको माता-पिता कन्या का विवाह करते समय खोजा करते हैं।

सुरेश से माधवी का कोई झगड़ा नहीं था। यदि शादी करनी ही है, तो किसी से भी की जा सकती है, सुरेश से भी की जा सकती है, पर माधवी ने तो इस तरफ कभी सोचा ही नहीं था। पर अब ऐसी परिस्थिति आ गयी थी कि उसे जबरदस्ती सोचना पड़ रहा था। पिताजी तो बिल्कुल तुले हुए मालूम होते थे।

उन्होंने उसे सुनाते हुए उसकी माता से एक दिन कहा था—उसे कह दो कि यदि उसे शादी नही करनी है, तो उसके लिए इस घर मे जगह नही है।

इस बात को सुनकर माधवी वहाँ से चली गयी थी, पर उसकी माताजी ने कहा था—तुम लोग चाहोगे कि लड़की शिक्षित हो। फिर शिक्षित होकर वह अपने मत पर चलेगी ही। इससे तो अच्छा है कि लड़कियों को शिक्षा ही न दी जाये, और बारह साल की आयु मे उसकी शादी कर दी जाये।

इन बातों को सुनकर माधवी के पिताजी और भी आग-बबूले हो गये थे। बोले थे—शिक्षिता, शिक्षिता! क्या शिक्षिता है? बी० ए० पास कर लेने से कोई शिक्षिता नही हो जाती। जो अपनी भलाई न समझे, वह शिक्षिता नही, खाक है···

पिता और माता की यह बातचीत बगल के कमरे से माधवी के कानों मे भी कुछ-कुछ गयी थी, पर उससे उसकी दृढ़ता और बढ़ गयी थी। इसी प्रकार जब आये दिन रोज होने लगा, तब माधवी को सोचना पड़ा।

उसने खबर भेजकर दल के स्थानीय नेता विनय बाबू से भेंट की। उसने थोड़े में विनय बाबू को सारी परिस्थिति समझा दी।

सुनकर वे खिन्न हुए। उनके चेहरे को देखकर यह स्पष्ट झलक गया कि वे भी किसी नतीजे पर नही पहुँच पा रहे हैं। बड़ी देर तक वे इधर-उधर सोचते रहे। एक बार सिर खुजलाया, फिर कोट की जेब टटोलने लगे, मानो जेब ही में समाधान पड़ा हो और वे उसे ढूँढ रहे हों।

अन्त मे बोले—तुमने क्या सोचा है?

माधवी बोली—मैं क्या सोचूँ? कुछ समझ नही पा रही हूँ। कुछ ठहरकर बोली—इसी कारण तो आपके पास आयी।

विनय बाबू ने फिर जेब में हाथ डाला और बोले—देखो, मैं कुछ समझ नही पा रहा हूँ। क्या तुम्हारे पिताजी कुछ दिन रुकने के लिए तैयार नही है?

नही, वे तो कहते है कि यदि मैं उनकी बात न सुनूँ, तो मेरे लिए घर मे स्थान नही है।'

विनय बाबू को अपनी नौजवानी के दिन याद आ गये। प्रथम महायुद्ध का जमाना था। पिता ने कहा था—तुम राजनीति छोड दो, नही तो घर से निकल जाओ।

उनके पिता सरकारी नौकर थे। उन्होंने कहा था—मैं तुम्हारी खामख्याली के लिए सारे परिवार का बलिदान न होने दूँगा।

उसी दिन विनय बाबू घर से निकल पड़े थे। न कोई कपड़ा लिया था, न कोई सामान। केवल उनके जिम्मे क्रान्तिकारी दल का जो साहित्य था, उसी को बगल में दबाकर वे घर से निकल पड़े थे। हाँ, निकलते समय एक

माताजी से मिले थे। पर दोनों में कोई बात नहीं हो सकी थी। दोनों फूट-फूटकर रोते रहे। भाइयों और बहनों ने अन्तिम बार समझाने की चेष्टा की थी, यद्यपि वे सब उम्र में उनसे छोटे थे। पर विनय बाबू ने केवल हँस दिया था। उसके बाद वे घर नहीं लौटे। तब से तो जेलखाना ही उनका घर हो गया था। न उधर कोई इनकी खबर के लिए व्यग्रता दिखलाता था, न वे ही तनिक भी व्यग्र रहते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वह एक स्वप्न था। तब से विनय बाबू पुलिस के लिए आतंकस्वरूप थे। इसी कारण जब भी मौका लगता, पुलिस वाले इन्हें जेल में ठूंस देते थे। इसी प्रकार गत दस साल गुजर गये थे।

विनय बाबू ने कहा—माधवी, फैसला तो तुम्हें करना है, मैं तुम्हें क्या कहूँ!

'फैसला तो मैं कर चुकी। अब आप बताइयें कि मैं क्या करूँ?'

विनय बाबू ने कहा—तुमने क्या फैसला किया?

'यही कि देश की सेवा करूँगी।'

'तो फिर?'

अब की बार माधवी को खोलकर कहना पड़ा कि सबसे पहले उसके रहने की समस्या है, वह कहाँ रहे। उसने स्पष्ट कहा—इस सम्बन्ध में पुरुषों और स्त्रियों की समस्या अलग-अलग है।

इतनी देर में विनय बाबू समझे कि बात क्या है। वे कुछ समझे नहीं थे, ऐसी बात नहीं। पर एक तो उनका मन दूसरी-दूसरी समस्याओं में उलझा हुआ था, और दूसरे वे इस प्रकार की समस्याओं से अपने अनजान में मुँह मोड लेना चाहते थे। पर जब यह समस्या सामने आ गयी, तो उन्होंने इसका सामना किया। बोले—तुम घर छोड़ने के लिए तैयार हो?

'हाँ, मैं देश के लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ।'

विनय बाबू ने कहा—अच्छी बात है। तुम तैयार रहो। इस बीच में मैं सारा बन्दोबस्त कर लूँगा। कहकर वे उठने लगे, पर आधा उठकर फिर बैठ गये और बोले—देखो, पहले यह कोशिश करना कि घर में रहकर ही सारा मामला सुलझ जाए। यदि ऐसा हो सके, तो बहुत ही अच्छा रहेगा।—कहकर वे उठ गये। और माधवी उन्हें हाथ जोडकर नमस्ते करके चली गयी।

घर छोडना माधवी को बहुत बुरा लगा, विशेपकर इसलिए कि उसे चोर की तरह घर से निकल जाना पड़ा। पर इसके अतिरिक्त उसे कोई चारा ही नहीं दिखलाई दिया।

उसे पहले ले जाकर एक मकान में रखा गया, जिसमें अन्य चार-पाँच क्रान्तिकारी रहते थे। अजीब हालत थी। सबका फटा हाल था। न किसी के पास ढंग का बिस्तरा था और न ढंग के कपड़े थे। लोगों की दाढ़ियाँ बढ़ रही थीं।

दाढ़ी बनाने का कोई नियम नहीं था। पर सबकी आँखों में एक आग थी, जो वह वस्तु थी, जिससे दुनिया बदला करती है। किसी ने भी माधवी को अपना इतिहास नहीं बतलाया, पर माधवी ने अनुमान कर लिया। सब लोग एक-दूसरे से सम्पूर्ण रूप से अपरिचित थे, पर उनका आपस मे व्यवहार ऐसा था, मानो वे एक-दूसरे के सबसे अधिक परिचित थे।

माधवी से किसी ने कोई प्रश्न नही पूछा। सब क्रान्तिकारी एक कमरे मे रहते थे। पर माधवी को अकेले के लिए ही एक कमरा मिला। वह घर से कुछ नहीं लायी थी। इसलिए उसे एक हलकी-सी दरी और एक चादर दी गयी। तकिये को तो मानो इस घर मे कोई जानता ही न था। इसी प्रकार उसे छोटी-मोटी जरूरत की कुछ चीजें दी गयीं। खाने की व्यवस्था अब तक यही थी कि किसी दिन खिचड़ी पक जाती थी, और किसी दिन सत्तू या डबल रोटी, जो भी मिल गया, उसी पर गुजारा होता था। पर माधवी के आने के बाद नियमित रूप से खाना पकने लगा, और माधवी ने अपने इन भाइयों का खाना पकाने का सारा भार अपने ऊपर ले लिया। पर यह खाना पकाना भी अजीब था, क्योंकि समय पर तो कोई आता ही नही था। पका-पकाया खाना सड़ा करता था। कभी तो ये लोग दिन-भर घर पर रहते थे, और कभी दो-दो दिन उनका पता न लगता था। कभी रात खतम होने पर आते, तो कभी बिल्कुल नही आते। माधवी यह तो पूछ ही नही सकती थी कि वे आयेंगे या नही आयेंगे या कब आयेंगे।

एक दिन माधवी इसी प्रकार खाना पकाकर इन लोगों के लिए प्रतीक्षा करते-करते सो गयी थी। इतने मे विनय बाबू वहाँ पर आये। वह कई मिनट तक माधवी को इसी हालत मे देखते रहे। माधवी पहले से कही कृश हो गयी थी। उसकी आँखों के नीचे जैसे कुछ झुरियाँ भी दिखायी देने लगी थीं। जितना ही विनय बाबू उसे देखते थे, उनका मन करुणा से उद्वेलित होता जाता था। एकाएक उन्होंने पुकारा—माधवी!

माधवी चौंककर उठ पड़ी, और सामने विनय बाबू को खड़ा देखकर कुछ लज्जित हुई। बोली—आप कितनी देर से खड़े हैं?

पर विनय बाबू ने उसके प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। वह माधवी को अब भी ध्यान से देख रहे थे। बोले—'माधवी, यह क्या हो रहा है? तुमने अभी तक खाना नही खाया?'

'नहीं, मैं भाइयों की प्रतीक्षा कर रही हूँ।'

विनय बाबू धम से फर्श पर बैठ गये, और बोले—माधवी, प्रत्येक को उतना ही करना चाहिए जितना जरूरी है। मालूम होता है, तुम इन लोगों के लिए रोज खाना पकाती हो। क्या तुम इन लोगों की महराजिन हो? फिर यदि

भी पकाती हो, तो इनके लिए प्रतीक्षा करने की क्या जरूरत है ? ये लोग तो तुम्हारे लिए बैठे न होंगे। जहां इनको खाना मिल जाएगा, ये खा लेंगे। नही, यह नही चल सकता। और यह तुम्हारा चेहरा कैसा हो रहा है ?

माधवी बोली—विनय भैया, मैं कुछ तो कर नहीं रही हूँ। भाइयो की ही यदि थोड़ी सेवा बन पडती है, तो उसे क्यों न करूँ ? भाइयों का खाना पकाने से कोई महराजिन नही हो जाती।

'तो तुमने खाना पकाने के लिए घर छोडा था ?'

'नही, सो बात तो नही। पर जब और काम नही है, तो यही करती हूँ। फिर समय भी तो कटना चाहिये।'

विनय बाबू कुछ सोचने लगे। बोले—बहन, काम तो बहुत है। पर तुम्हारी परिस्थिति ऐसी है कि तुम्हे छिपाये रखने के अतिरिक्त अभी और कुछ काम नही लिया जा सकता। तुम्हारे घर वालों ने पुलिस मे रिपोर्ट दे दी है। पुलिस तुम्हारी तलाश कर रही है। खैरियत यह है कि कोई यह नही सन्देह कर रहा है कि क्रान्तिकारी दल के साथ तुम्हारे भागने का कोई सम्बन्ध है।

बीच ही मे माधवी कुछ विपादग्रस्त होकर बोल पडी—तो क्या लोग···

'हाँ, लोग यही समझ रहे हैं कि तुम्हारा कोई प्रेमी है, और तुम उसी के साथ भाग गयी हो।'—कहकर वे ठहाकर हँस पडे। बोले—हा-हा-हा ! प्रेमी !

विनय बाबू तो इस तरह सरलता के साथ हँस पडे, पर माधवी जैसे उनकी हँसी पर एकाएक ब्रेक लगाकर बोली—मेरी इतनी बदनामी हो रही है, और आप हँस रहे है ?

'क्या करूँ बहन, हम लोगों का काम ही ऐसा है। जहाँ दूसरे खुशी मनाते है, वहाँ हम विपाद मे लीन रहते है, और जहाँ वे दुखी होते हैं, वहाँ हम खुशी मनाते हैं।'

माधवी को यह दार्शनिकता पसन्द नही आयी। बोली—भैया, आप पुरुष होने के कारण यह समझ ही नहीं सकते, कि इस प्रकार की बदनामी एक स्त्री के लिए कितनी घातक है।

विनय बाबू अब तक इस बात को बहुत हलकेपन से परिहास में ले रहे थे। पर जब उन्होंने देखा, कि माधवी बहुत गम्भीर हो रही है, तो उन्होंने तर्क का उत्तर तर्क से दिया। बोले—प्रेमी के साथ भाग जाने मे मै तो कोई बुराई नहीं देखता। हाँ, यदि किसी स्त्री के सम्बन्ध में यह खबर उडे कि वह अपने गरीब प्रेमी को छोड़कर लखपती के साथ भाग गई, तो उसमें बदनामी है।

माधवी इस तर्क का उत्तर न दे सकी। बोली—जिस माने में आप कह रहे हैं, उस माने में तो ठीक है, पर मैं समझती हूँ, मुझमें इतना साहस है, कि यदि प्रेमी के साथ भागना ही होता, तो मैं वैसा खुल्लम-खुल्ला करती।

[illegible] घर के बाहर जायें।

क्यों? क्या कोई खतरा है?

हाँ, खतरा क्यों नहीं है? तुम्हारे घर वालों ने पुलिस में तुम्हें नाबालिग लिखाया है।

अब माधवी समझी। बोली—ओह! यही डर—फिर कुछ सोचकर बोली—पर मैंने मैट्रिकुलेशन [illegible] हूँ ये देखो, फिर मैं नाबालिग नहीं हूँ।

विनय बाबू बोले—यह सब तो बाद की बातें हैं, पर एक बार तो यह बेचारा [illegible] पहुँच ही जाता, बाद में बात की सफाई देकर छूट जाता।

विनय बाबू ने और थोड़ी देर बैठकर सारी परिस्थितियाँ समझा दी। उन्होंने माधवी को यह भी बताया, कि जरूरत पड़ने पर शायद माधवी को यहाँ से कहीं बाहर भेजना पड़े। फिर वे माधवी को [illegible] चले गये।

उसी दिन जब उस घर में रहने वाले अन्य क्रान्तिकारी वापस आये, तो उन्होंने कहा—बहन जी, अब आप हम लोगों का खाना न बनाया करें। दल की तरफ से हुक्म हुआ है कि आपसे यह काम न लिया जाये। आप केवल अपनी बारी पर ही खाना बनायेंगी।

माधवी समझ गयी, कि यह सब उन्हीं विनय बाबू का काम है। उसने फिर भी प्रतिवाद किया, पर दल का हुक्म तो हुक्म ही था। उसकी एक नहीं चली।

इस प्रकार उस घर में एक नये अध्याय का सूत्रपात हुआ। बाकी काम सब पहले ही की तरह चलते रहे।

एक दिन एकाएक एक नवयुवक उस घर में पहुँचा, और बोला—आप लोग सब तुरन्त भाग जायें। दौड़ आ रही है।

सब लोग इस काम के लिए सदा तैयार रहते थे। वे तुरन्त उठ खड़े हुए।

उस नवयुवक ने औरों से कहा—आप लोग अपने-अपने स्थान पर चले जायें, और—माधवी की तरफ देखकर बोला—आप मेरे साथ चलें।

वहाँ से वे मोटर पर कई मील जाकर एक छोटे स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ पर टिकट आदि तैयार थे। वे एक अज्ञात स्थान के लिए रवाना हो गये। जब माधवी गाड़ी पर चढ़ चुकी, तब उस नौजवान ने उसके हाथ में विनय बाबू का एक पत्र दिया, जिसमें यह लिखा था कि किसी प्रकार पुलिस को यह पता लग गया कि माधवी के भागने के साथ क्रान्तिकारियों का सम्बन्ध है। इसीलिए उसे दूसरी जगह भेजना पड़ रहा है। वहाँ सब प्रबन्ध है और उसे कोई तकलीफ न होगी। जब माधवी पत्र पढ़ चुकी, तो नवयुवक ने उस पत्र को वापस ले लिया, और फौरन उसे फाड़कर हवा के सुपुर्द कर, गाड़ी के बाहर फेंक दिया। माधवी के लिए यह कोई नयी बात नहीं थी।

जिस भले आदमी के यहाँ माधवी ठहराई गयी, वह दल के एक बहुत ही भक्त गृहस्थ सदस्य थे। उनके लिए भी एक पत्र था और उन्होंने माधवी को बड़े सम्मान के साथ अपने घर मे ठहराया। उनके घर में उनकी तरुणी स्त्री के अतिरिक्त एक छोटा भाई भी था, जो कालेज में पढता था। उन्होने अपनी स्त्री और भाई से माधवी का सच्चा परिचय न देकर यही कहा कि यह उनके एक मित्र की बहन है, और स्वास्थ्य-सुधार के लिए आयी है। थोडे ही दिनों मे माधवी गृहस्वामी रमेन्द्र बाबू, उनकी स्त्री उमा और भाई उपेन्द्र के साथ बहुत हिलमिल गयी। रमेन्द्र बाबू नित्य इस बात की खबर लेते थे कि माधवी को कोई तकलीफ तो नही है। उमा भी भरसक उसके साथ अच्छा व्यवहार करती थी। और इसमे संदेह नही कि माधवी को क्रान्तिकारियो के उस स्थान से कही अधिक आराम था।

यहाँ रहते-रहते तीन महीने से अधिक समय बीत गया। माधवी को आराम तो सब कुछ था, पर अब धीरे-धीरे उसके मन मे अशान्ति पैदा होने लगी थी। फिर रमेन्द्र बाबू के व्यवहार मे कुछ फर्क न आने पर भी उमा की दृष्टि मे उसकी कुछ मर्यादा घटती भी नजर आ रही थी। कई बार उसने माधवी से कहा था—अब तो आपका स्वास्थ्य अच्छा हो गया।

माधवी इन बातो को अच्छे रूप में नही ले पाती थी। वह खुद बडे घर की बेटी थी। किसी के गले का ढोल बनकर रहना उसे बहुत बुरा मालूम होता था। वह कुछ सहमी हुई रहती थी।

पर क्रान्तिकारी दल के लोग तो मानो उसे भूल ही गये थे। उपेन्द्र जिन किताबों तथा पत्र-पत्रिकाओं को ला देता था, उन्ही से उसका दिन कटता था। इधर उपेन्द्र उसके पास कुछ अधिक बैठने लगा था। माधवी भी इसे पसंद करती थी। उपेन्द्र में कोई भी राजनैतिक विचार नही था, इसलिए माधवी ने धीरे-धीरे उसे राजनैतिक विषयों मे दिलचस्पी दिलाना शुरू किया। दोनों घंटो देश-विदेश के क्रान्तिकारियो के सम्बन्ध में आलोचना करते रहते थे। माधवी को ऐसा मालूम होता था कि अब समय आ गया है कि वह उसे अपनी असलियत बतलावे कि वह यहाँ स्वास्थ्य सुधारने नही आयी है, बल्कि एक क्रान्तिकारिणी है। वह इसी उधेड़बुन मे थी कि कहे या न कहे, क्योकि दल की तरफ से यह बात विल्कुल निषिद्ध थी। इतने मे एक घटना हुई जिससे उसके सब विचार अस्त-व्यस्त हो गये।

एक दिन रमेन्द्र बाबू तथा उनकी स्त्री उमा, कही बाहर गये हुए थे। घर मे केवल एक नौकर तथा उपेन्द्र और माधवी थे। नित्य की तरह दोनों कुछ न कुछ चर्चा कर रहे थे। पर उपेन्द्र का ध्यान कुछ बँटा हुआ-सा दृष्टिगोचर हो रहा था। वह जैसे कुछ सोच रहा था। माधवी जो बातें कह रही थी, उनकी तरफ

उसका ध्यान नही था। माधवी ने पूछा भी—उपेन्द्रजी, आपकी तबियत कुछ खराब तो नही है? अच्छा हो कि आप जाकर लेट जाइये।

उपेन्द्र ने इसका कुछ उत्तर नही दिया और पहले से अधिक गभीर हो गया। फिर एकाएक वह माधवी के पैरो पर गिर पडा, और गिड़गिडाते हुए न मालूम क्या कहने लगा। पहले तो माधवी समझी नही, पर जब समझ गयी कि यह प्रेम-भिक्षा माँग रहा है, तो वह छलाँग मारकर दूर हट गयी और बहुत रुखाई के साथ बोली—आपको शर्म नही आती कि आप मुझसे ऐसी बात कहते है! आपको अब तक मैंने नही बताया, पर अब मैं बताती हूँ कि मै क्रान्तिकारिणी हूँ। और मेरे जीवन मे इन बातों के लिए स्थान नही है।

अब तो उपेन्द्र की जैसे आँखें खुल गयी। वह समझ गया कि माधवी क्यों यहाँ पड़ी हुई है। शायद किसी मामले मे फरार हो। उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ, साथ ही साथ वह डरा कि यदि रमेन्द्र को इस घटना की हवा भी लग गयी, तो वे उसकी बोटी-बोटी काट डालेगे।

वह उसी समय घर से निकल गया।

जब यह काड हो गया, तो पहले ही से ऊबी माधवी किसी से बिना कुछ कहे अपने नगर के लिए रवाना हो गयी। वहाँ एक सखी के यहाँ टिककर उसने विनय बाबू का पता लगाने की चेष्टा की, तो यह मालूम हुआ कि विनय बाबू तथा उनके कुछ प्रमुख साथी कई महीना पहले गिरफ्तार हो चुके हैं, और उनके सम्बन्ध मे किसी को यह भी पता नही है कि वे किस जेल में रखे गये हैं। अब यह उसकी समझ मे आया कि क्यों क्रान्तिकारी दल की तरफ से उसके लिए कोई संदेश नही आया था।

इसके बाद उसके लिए बडी कठिन समस्या हो गयी। कई दिन सोचने के बाद उसने घर लौट जाने का निश्चय किया। पहले ही उसने पता ले लिया था कि घर वालों को उसके पलायन का कारण मालूम हो चुका है, और यदि वह वापस गयी, तो उसे कोई दिक्कत न होगी।

तदनुसार उसने ऐसा ही किया।

माता-पिता ने उसे कुछ पूछा नही, पर उसने खुद ही सारी बात बता दी।

सुरेश बाबू, जिससे उसकी शादी होने वाली थी, किसी और से शादी कर चुके थे। पर यथासमय माधवी की एक अन्य सज्जन से शादी हो गयी।

माधवी अब पूरी गृहस्थ है, उसके कई बच्चे भी हैं।

पर विनय बाबू वर्षों तक जेलों में सड़ते रहे। स्वतन्त्रता मिलने पर उन्हे जेलों से छुट्टी मिली। पर वे बहुत सुखी नही थे। सबसे मजेदार बात यह है कि उपेन्द्र विनय बाबू के दल मे ही बहुत बड़ा क्रान्तिकारी बना, और विनय बाबू भी उसके सम्बन्ध मे यही कहते थे कि यह बहुत ही बहादुर नौजवान है।

राष्ट्र का पहरेदार

बाँध-क्षेत्र में मिस्टर काक की ख्याति उनसे पहले ही पहुँच गई और कुली से लेकर इंजीनियर तक सब में एक भय-सा छा गया। मालूम हुआ कि मिस्टर काक बहुत ही सख्त प्रशासनाधिकारी हैं और वे इसीलिए भेजे जा रहे हैं कि यहाँ काम में ढिलाई है तथा लोगों में ईमानदारी की कमी है।

रामसनेही यद्यपि एक मामूली मजदूर था, और उसे डरने का कोई कारण नहीं था, पर आज ज्यों ही यह खबर फैली कि मिस्टर काक आ रहे हैं, वह भी दहल गया। न वह कोई चोरी करता था, न उसने कभी घूस ली थी (उसे घूस देता ही कौन), फिर भी वह डरा यह बिल्कुल अकारण नहीं था। जब वह प्रतिदिन अपने कर्मस्थान से घर आता था, तो दूसरे कुलियों की तरह कभी-कभी फेंका हुआ लकड़ी का बुरादा या लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े ले आता था। किसी अर्थ में भी वह इसे चोरी जानकर न तो करता था और न शायद यह चोरी थी ही, क्योंकि यदि वह इन चीजों को न लाता तो वे पड़ी रह जातीं, और थोड़े दिनों में उन्हें उठाने के लिए ही कुछ खर्च पड़ता।

पर आज मिस्टर काक और उनकी ख्याति की बात सुनते ही रामसनेही ने तय कर लिया कि लकड़ी के टुकड़े नहीं उठाने हैं। वह खाली हाथ घर लौटा। उसे ऐसा करते देखकर उसकी बीवी मुनिया बोली, "आज खाली हाथ कैसे आये?"

बात छोटी-सी थी, पर इसने चिनगारी का काम किया, और रामसनेही आगबबूला होकर बोला, 'यों ही बिना समझे-बूझे चपर-चपर बोला करती है। जानती नहीं कि आज मिस्टर काक आ रहे हैं, जो अपने सगे बेटे को भी कैद करा देते हैं।'

मुनिया बोली, 'तो तुम कौन-सी चोरी करते हो, जो उनसे तुम्हें डर है?'

'चोरी न सही, पर है तो गैर-कानूनी बात। यों तो जंगल से लोग लकड़ी काट लेते थे, पर अब नये-नये कानून बन रहे हैं और किसी भी बात को बिना इजाजत करना मना है।'

उस समय तो मुनिया चुप हो गयी, पर थोड़ी देर बाद जब वह नल से पानी भर के लौटी, तो बोली, 'एक तुम ही राजा हरिश्चन्दर बने हो, सब के घर मे बकरी के लिए घास-पत्ते और लकड़ी आदि जैसे आती थी, वैसे ही आज भी आयी। क्या अकेले तुम्हारे ही लिए मिस्टर काक आ गये हैं ?'

यह बात सच्ची थी. रामसनेही ने अपनी आँखो लोगों को ये चीजें लाते देखा था, इसलिए वह और भी तुनक कर बोला, 'जिसे यह सब करना हो, करे; मै तो अब इस झगड़े मे पड़ने का नही।'

मुनिया नाराज होती हुई बोली, 'तो मेरा क्या है, बकरी के लिए जहाँ से घास-पत्ते लाती हूँ, वही जगल से तापने के लिए थोडी लकड़ियाँ भी ले आया करूँगी। मै तो तुमसे कहते-कहते हार गयी, पर तुमसे यह भी न हुआ कि कही से एक छोटा-सा लोहे का छड ले आओ, जिसे खूटा बनाकर बकरी को बाँध दिया करूँ। न मालूम यहाँ की जमीन कैसी है कि दीमक तीन दिन मे ही लकडी के खूँटे को चट कर जाती है।'

रामसनेही ने अगले दिन देखा कि यद्यपि मिस्टर काक सशरीर आ गये है, पर घास-पत्ते, लकड़ी के टुकडे ये सब लाना उसी प्रकार जारी है। पर उसने जिद मे आकर ही कह लीजिये कही से कुछ उठाना बन्द कर दिया। मुनिया दो-चार दिन बक-झक कर चुप हो गयी। सब काम वैसे ही चलने लगा।

मिस्टर काक का रोब इतना बैठ गया कि बाँध-क्षेत्र मे वे ही वे दिखायी और सुनायी पड़ने लगे। यह सुना गया कि सवेरे आठ बजे दफ्तर में दाखिल होते हैं और रात दस बजे तक वहाँ से उठते नही, और यदि उठते हैं, तो किसी तथ्य की जाँच करने के लिए ही उठते है। मिस्टर काक के पहले जितने अधिकारी इस पद पर थे, उन सबके पास बड़ी-बडी कारें थी, पर मिस्टर काक के पास एक छोटी-सी रंग उडी हुई मोटरगाडी थी। यह भी मालूम हुआ कि मिस्टर काक अपनी गाड़ी मे तेल नकद दाम देकर डलवाते है, और उनके बँगले पर केवल ड्यूटी वाला अर्दली रहता है और उससे भी वे किसी प्रकार का घरेलू काम नही करवाते। वह केवल फाइल ले जाने और ले आने तथा कर्मचारियों को बुलाने में ही लगा रहता है। बात यह है कि जब से मिस्टर काक आये थे, तब से वे किसी भी अधिकारी को किसी भी समय सलाम भेज सकते थे।

दो-चार-छः दिनों मे यह भी खबर रामसनेही ऐसे लोगों तक पहुँच गयी थी कि जब मिस्टर काक किसी को रात-बिरात सलाम देते है, तो उसका यह अर्थ होता कि बन्धु तुम्हारी चोरी पकड़ी गयी है, अब आकर इसका जवाब दो और नही तो जेलखाने जाओ।

इंजीनियरों को रात मे सलाम जाने लगा था, यहाँ तक कि एक दिन चीफ इंजीनियर साहब को भी सलाम गया। मिस्टर बोस, चीफ इंजीनियर, घबराहट

में बिना टाई बाँधे ही मिस्टर क्लर्क के बंगले पर पहुँचे। गाड़ी में ढाढस बाँधने के लिए मिसेज बोस भी थी। वह गाड़ी में ही रही और मिस्टर बोस भीतर चले गये। मिस्टर काक ने बड़े तपाक से उनका स्वागत किया। उनके रंग-ढंग से किसी प्रकार का कोई व्यंग, चिड़चिड़ापन या क्रोध न देखकर मिस्टर बोस कुछ आश्वस्त हुए। उन्होंने अपने मन को समझाया कि सम्भव है कि मिस्टर काक ने ऐसे ही बुलाया हो, सम्भव क्या अवश्य ही कोई खास बात नही है। फिर भी रात साढ़े दस बजे इस प्रकार बुलाने का क्या अर्थ हो सकता है? चेहरे से तो कुछ मालूम नही होता। मिस्टर बोस ने पहली बार टाई को कड़ा करके बाँधने के लिए हाथ बढ़ाया और उन्हें मालूम हुआ कि जिस जगह टाई होनी चाहिये, उस जगह वह नहीं है। मन में एक शून्यता का अनुभव हुआ और हाथ अपनी जगह पर लौट आया।

थोड़ी देर तक कुशल प्रश्न होता रहा, इसके बाद चूँकि दोनों खाना खा चुके थे, इस कारण कहवा आया और उसके प्याले चले। जब मिस्टर बोस को पूरा विश्वास हो गया कि कोई बात नही है और वे मन ही मन मिस्टर काक की गुस्ताखी पर क्रुद्ध होने लगे कि इस व्यक्ति ने जिसे उनके मुकाबले में 1/5 वेतन मिलता है, व्यर्थ में बुलाकर कष्ट दिया, उसी समय मिस्टर काक ने अपने दूध के फेन की तरह सफेद बत्तीस दाँत निकाल कर जैसे मिस्टर बोस को डस लिया। बोले—आपने ठेका नम्बर 7 से कितने लाख रुपये बनाये?

मिस्टर बोस की जैसे घिग्घी बँध गयी। टाई ठीक करने के लिए फिर उन्होंने हाथ बढ़ाया, पर अब की बार पहले से अधिक शून्यता का अनुभव हुआ, सारा चेहरा सफेद पड़ गया; बोले, 'यह आप क्या कह रहे हैं मिस्टर काक ?'

मिस्टर काक ने फिर दूध के फेन की तरह सफेद बत्तीस दाँत निकालकर कहा, 'मैं तो कुछ भी नही कहता। किताबें कह रही हैं। किताबों का गला बहुत कुछ घोटा गया है, पर आखिर भूल करना मनुष्य का धर्म है और उन भूलों में सत्य सामने आ ही जाता है।'

कहकर मिस्टर काक ने एक के बाद एक—किताब, पत्र, पत्रों का उत्तर, रसीद आदि जो दिखलानी शुरू की, सो रात के तीन बज गये। मिस्टर बोस को एक बार भी ख्याल नहीं आया कि वे मिसेज बोस को बाहर गाड़ी पर ही बैठा आये हैं। जब तीन बज गये, तब मिस्टर काक के बत्तीसो दाँत और भी सफेद होकर चमचमा रहे थे, और मिस्टर बोस की यह हालत थी, जैसे वे किसी जंगल में बैठे हुए हों और उन पर से नौ घण्टे तक दो सौ मील प्रति घण्टे रफ्तार वाली आँधी चली हो।

मिस्टर बोस भूल गये कि उनका वेतन प्रशासनाधिकारी के वेतन से 5 गुना है तथा वे ही इस पच्चीस-तीस वर्गमील जमीन के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं। वे

अपनी सारी अंग्रेजी सभ्यता के बावजूद मिस्टर काक के पैरों पर गिर पड़े और मिस्टर काक ने ईसा मसीह के ढंग पर उन्हें अभय-सा देते हुए कहा, 'मेरे निकट क्षमा की गुंजाइश है, सच मानिये मिस्टर बोस। मैं इतना सख्त नहीं होना चाहता कि आपको जेलखाने भिजवाऊँ।'

मिस्टर बोस ने रुआँसा होकर कहा, 'आप सच मानिये मिस्टर काक ! मैंने ऐसा पहली बार किया और यदि आप आज्ञा दें, तो मैंने जितने पैसे बताये, वह सब आपको या आप जिसे कहें, दे सकता हूँ।'

मिस्टर काक की बाछें खिल गयी, वे प्रसन्न मुद्रा में बोले, 'आप चिन्ता न करें, मुझे बड़ा अफ़सोस है कि आपको इतनी रात तक यहाँ अटकाये रहा। बस यह याद रखिये कि मैं जब किसी बात को करने के लिए कहूँ, तो उसमें मीन-मेख न निकाला करें। यह तो आप समझ ही गये होंगे कि मैं कानून अच्छी तरह समझता हूँ और कोई ऐसी बात न करूँगा जिससे आपको किसी प्रकार का कोई धोखा हो।'

मिस्टर बोस इस पर खुश होकर चले गये, सच तो यह है कि उनकी समझ मे नहीं आया कि काक उनसे क्या चाहता है, उसने क्यो उन्हे इस प्रकार बुलाया, अपमान किया और अन्त में अभयदान देकर लौटा दिया।

यही हालत छोटे-बड़े सबके साथ हुई। गुमटी के पहरेदारों से लेकर चीफ इंजीनियर तक सबको इसी प्रकार मिस्टर काक के यहाँ बुलाया गया, उनके विरुद्ध अकाट्य प्रमाण उपस्थित किये गये, ऐसे प्रमाण जिन पर उन्हे आसानी से पाँच साल जेलखाने रहना पड़ता, फिर उन्हे माफी दी गयी और घर वापस किया गया। सबसे मजेदार बात यह थी कि जो लौटता था, वह किसी से यहाँ तक कि अपनी बीवी से यह नहीं बताता था कि उस पर क्या बीता, पर सब लोग अपने-अपने अनुभव से समझ जाते थे कि किस प्रकार की मुलाकात हुई होगी।

ऐसे ही साल-भर निकल गया। इस बीच मे आस-पास के जंगलों तथा गाँवों में यहाँ तक कि रेल के स्टेशन तक मिस्टर काक के दबदबे की ख्याति पहुँच चुकी थी। मिस्टर बोस तथा उच्चाधिकारी न मालूम क्यो यहाँ से अपना तबादला कराना चाहते थे। पर काक ने किसी की दरखास्त आगे नहीं बढ़ने दी, यद्यपि कानून की दृष्टि से काक को ऐसा करने का अधिकार नहीं था। पर यह बात मिस्टर काक से कहे, ऐसी हिम्मत किसमे थी !

मिस्टर काक किसी से मिलते-जुलते नहीं थे। उनका रात के आठ और नौ बजे तक दफ्तर मे बैठना जारी था। न वह क्लब मे जाते थे, और न और कहीं। हाँ, कभी-कभी काडिलाक गाड़ी पर चढ़कर कोई राजा साहब डूंगर सुलतानपुर आते थे, उनके साथ इनकी बहुत लम्बी बातचीत होती थी। लोग यह जानने के

लिए उत्सुक थे कि यह कहाँ के राजा हैं, सचमुच किसी रियासत के मालिक हैं या महज राजा उपाधि वाले हैं, पर इस सम्बन्ध में कुछ पता नहीं लगता था। इधर उनके साथ कोई और व्यक्ति भी आने लगा था, जो अपनी कार में आता था। इन तीनों के सम्मेलन जल्दी-जल्दी होने लगे।

जब कई दिन सम्मेलन होते हुए हो गये तो अन्तिम बातचीत के लिए मिस्टर काक के घर पर बन्द कमरे में एक सम्मेलन हुआ। पहले तो मिस्टर काक और राजा साहब डूँगर सुलतानपुर में बातचीत होती रही। असल में यह व्यक्ति मिस्टर काक का छोटा भाई था। वह गाड़ी भी मिस्टर काक ही की थी। मिस्टर काक सिद्धांतवादी आदमी थे, इसलिए वे जो कुछ लेन-देन करते थे, अपने भाई के जरिये से ही करते थे।

थोड़ी देर में तीसरा व्यक्ति आया, जो पारसी मालूम होता था। तीनों में बड़ी देर तक बात होती रही, पर गुत्थी सुलझ नहीं रही थी। उस तीसरे व्यक्ति ने कहा, 'यह कैसे हो सकता है कि मैं इसके लिए आपको दस लाख रुपये दूँ। आखिर घटिया से घटिया लोहे का माल दूँगा, तो भी कुछ तो खर्च आयेगा ?'

मिस्टर काक ने इस पर कहा, 'मैं तो आपसे कुछ भी नहीं माँग रहा हूँ। यह कहिये कि मैं आपको फोकट में पाँच लाख रुपये का उपहार दे रहा हूँ। आपको तो कुछ भी नहीं करना है।'

उस तीसरे व्यक्ति ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, 'मैं तो यदि आपको वैगनों में मिट्टी भरकर भेजूँ, तो भी उस वजन की मिट्टी भेजने में कई हजार रुपये लग जायेंगे।'

मिस्टर काक ने हाथ पर हाथ मारते हुए कहा, 'आपको तो मिट्टी नहीं भेजनी है।'

'फिर ?'

'फिर क्या ? सब गुमटियों, सब फाटकों, सब लेजरों में यथासमय माल पहुँचने की रिपोर्ट दर्ज हो जायेगी। माल उतारने की रिपोर्ट भी तैयार होगी, इत्यादि इत्यादि।'

पारसी महोदय सुनकर अवाक् हो गये, बोले, 'आप तो बड़े बुद्धिमान हैं, मैंने तो ऐसा आदमी आज तक नहीं देखा।' कहकर वे उछल पड़े। पर अगले ही क्षण भय से चकित होकर बोले—'पर हम अपने कारखाने से उतना माल कहाँ हटायेंगे ? हमें भी तो सारे कागजात गड़बड़ करने पड़ेंगे।'

'नहीं, आप उस माल को कहीं और बेच लीजिये। उसमें आपको सारी बातों से छुट्टी मिल जायेगी। ब्लैक में बेच लें तो और अच्छा।'

'पर उतना माल कौन लेगा ?'

'तो उसे स्क्रैप के भाव बेच लीजिये या उसे कहीं रखवा दीजिये, हम उसे

फिर खरीद लेंगे।'

इसी प्रकार दो घण्टे तक वातचीत के उपरान्त सौदा तय हो गया और राजा साहव डूंगर सुलतानपुर उस व्यक्ति के साथ पेशगी के रूप में पांच लाख रुपये लेने के लिए नियुक्त हुए।

पारसी महोदय यह नहीं जानते थे कि राजा साहव डूंगर सुलतानपुर मिस्टर काक के भाई हैं। और उन्हें जानने की आवश्यकता भी क्या थी! उन्हें तो मुनाफा करने से मतलव था। जव एक ही 'डील' में विना खर्च के पाँच लाख रुपये वचते हैं, तो फिर उन्हें फजूल वातों से मतलव क्या था!

तीनों एक-दूसरे से वहुत प्रेमपूर्वक मिलकर अलग हो गये। वाद को एक तारीख तय हुई, जिस पर माल की सप्लाई दिखायी जाने का निश्चय हुआ। फिर एक वार मिस्टर काक के घर पर गुमटी वाले और फाटक वालो से लेकर सबका बुलावा हुआ। सव थर-थर कांपते हुए उनके घर पर हाजिर हुए और उनसे कहा गया कि वे अमुक दिन से इतने वजकर इतने मिनट पर अपनी-अपनी वहियों में यह बात चढ़ावें। इसी प्रकार और भी कई अन्य कारंवाइयाँ हुईं। पर किसी को यह नहीं वताया गया कि कारण क्या है। अव की वार भी लोगों ने निकल कर किसी से कुछ नहीं कहा।

जव यह सारा काम हो गया और राजा साहव डूंगर सुलतानपुर को पूरे दस लाख रुपये मिल चुके, तो मिस्टर काक दौरे पर निकले। सच कहा जाय, तो वे दौरे पर नहीं निकले थे, वल्कि यों ही दफ्तर से घर जा रहे थे। हाँ, आज कुछ रास्ता वदल दिया था। उनकी मोटर पुरानी थी, अक्सर वह फेल हो जाती थी। आज भी एक जगह फेल हुई। वे उतर कर उसे ठीक-ठाक कर ही रहे थे, तो ऐसा मालूम हुआ कि सामने की पगडण्डी मे कोई जा रहा है। उन्होंने आवाज लगाई—'कौन है', इस पर वह आदमी कोई चीज छोडकर भागता मालूम पड़ा। मिस्टर काक ने ड्राइवर की सहायता से उस आदमी को पकड़ लिया, और वह फेंकी हुई चीज भी वरामद कर ली गयी।

जो व्यक्ति पकड़ा गया था, उसका नाम रामसनेही था और जो चीज वरामद हुई थी, वह एक जंग लगा हुआ लोहे का टुकड़ा था, जिसके एक तरफ अंग्रेजी एस की तरह मुड़ा हुआ था। रास्ते में आते हुए रामसनेही को यह टुकड़ा मिल गया था और वीवी की वकरी की बात याद करके उसने यह टुकड़ा उठा लिया था। रामसनेही ने सारी बात सच-सच कह दी, पर सत्य कहने से अपराध कम थोड़े ही होता है।

मिस्टर काक ने उसे फौरन पुलिस के सुपर्द कर दिया, क्योंकि उसने राष्ट्र की सम्पत्ति चुरायी थी और मिस्टर काक को उसे क्षमा करने का अधिकार नहीं था। मिस्टर काक की ईमानदारी में उस दिन से और भी चार चाँद लग गये।

वकालत

वकील उमानाथ ने अपने मुंशी जी को ध्यान से देखा फिर नये आये हुए मुवक्किल को आँखों से तोला। अभी खेतों में काम शुरू नहीं हुआ था, इसलिए यह तो नहीं मालूम पड़ा कि यह खेत सम्बन्धी लड़ाई के सिलसिले में आया है। और अच्छी तरह देखा तो उसके शरीर पर कोई चोट भी नहीं ज्ञात हुई।

हो सकता है कि इसी ने किसी को मारा हो, पर चेहरे से ऐसा नहीं जान पड़ा। बड़ा भोलाभाला सीधा-सादा लगता था। पर कई मुवक्किल ऐसा चेहरा इस कारण बनाकर आते हैं कि पैसा अधिक न देना पड़े। उसके कपड़े भी औसत गाँव के शरीफ लोगों की तरह थे। वह अकेले ही आया था, उसके साथ कोई नहीं था जैसा कि गाँव के भले आदमी जब शहर में आते हैं तो उनके साथ होता है।

वकील साहब ने कहा—क्या बात है, जल्दी से कहो, मुझे समय नहीं है।

मुवक्किल ने जैसे वह डूब रहा हो इस दृष्टि से मुंशी जी की तरफ देखा कि तुम्हें तो सब बता चुका हूँ तुम्हीं बता दो, पर मुंशी जी ने उस तरफ से मुँह फेर लिया। तब मुवक्किल ने घबड़ाकर कहा—हुजूर, मेरे बाप मर गये…

वकील साहब बोले—तो बोलता क्यों नहीं कि बँटवारा चाहता है?

मुंशी जी ने एक बार मुवक्किल की तरफ घृणा-भरी दृष्टि से देखा, फिर बोला—नहीं हुजूर, सुन लें कुछ और ही बात है।

वकील साहब ने कहा—बाप तो सबके मरते हैं, बताता क्यों नहीं कि आगे क्या हुआ?

मुवक्किल ने लम्बी साँस ली, बोला—हुजूर, अगर वह होते तो फिर काहे को कुछ होता। वह तो तीन साल पहले मर गये।

वकील साहब कुछ निराश हुए। बोले—तीन साल पहले भी तो तुम्हारी उम्र 25 साल की रही होगी। तुम्हारे कितने लड़के हैं?

मुवक्किल ने गौरव के साथ मुसकराकर कहा—चार।

वकील साहब ने झुँझलाकर कहा—मेरे पास क्यों आये हो? कुछ बताओ न।

मुशी जी ने देखा कि अब गाड़ी बिल्कुल नही चल रही है तब बीच मे पड़ते हुए बोले—हुजूर, बात यह है कि ये दो भाई है। अब तक सारा काम ठीक से चल रहा था। स्त्रियों में तो लड़ाई होती रहती थी, पर भाइयो में प्रेम बना हुआ था। पर कल किसी बात पर लड़ाई हुई तो इसके बडे भाई ने इसकी तरफ, कहता है कि देखकर घूर दिया।

वकील साहब समझ गये कि मुकद्दमे मे कुछ भी दम नही है। उन्होंने मुशी जी से कहा—फिर क्या होगा?

मुंशी जी तो पहले ही समझ गये थे कि इसमें कोई बात नही है, घूरना किसी कानून के अन्तर्गत नही आता, हाँ, अगर बीबी या बेटी को घूरा होता तो कोई बात बनती।

मुशी जी ने कहा—पाँच रुपये तो ले लिए।

वकील साहब बोले—फिर?

मुशी जी ने कहा—अब आप समझिये। मै एक दरख्वास्त तो तैयार कर रहा हूँ, जिसमे मै यह लिख रहा हूँ कि सग्रामसिंह ने मुझे ऐसे देखा कि मुझे डर है कि वह रात-बिरात मुझ परं या मेरे परिवार पर हमला करेगा।

वकील साहब ने कहा—अभी ठहरिए।

फिर उन्होने मुवक्किल महीपतसिंह से कहा—तुम को घूर दिया और तुम यहाँ आ गये, इसी बिरते पर मुकदमा करने चले हो? मुझे तो मालूम होता है तुम कुछ छिपा रहे हो। उसने तुम्हे जरूर कुछ मारा-पीटा होगा।

—नही, मारा-पीटा नही था।

वकील साहब गरम होकर बोले—धक्का तो दिया होगा या तुम कायर की तरह घूरने पर ही भाग आये।

महीपतसिंह को कायर शब्द बहुत बुरा लगा। बोला—हुजूर, मैंने एक लाठी से जगली सूअर मार डाला था, ऐसी बात नहीं है। बडा भाई पिता की जगह पर होता है, इस नाते चला आया।

अब की बार वकील साहब आपे से बाहर हो गये, बोले—बड़ा भाई पिता की जगह पर होता है, यह शास्त्र का वचन है, पर भाई भाई का जितना गला काटता है, इतना और कोई काट सकता है? यह तो कहो कि ईश्वर की कृपा मे तुम जिन्दा हो, आज मर जाओ तो तुम्हारी ठकुराइन तुम्हारी भौजाई के यहाँ बरतन मांजा करेगी।

अरे वकील साहब भी वही बात कह रहे हैं, जो उसकी पत्नी श्यामा कहा करती है। और श्यामा ही क्यो सभी कहते है, भाई-भाई मे इतना मेल है, पर देखना आखिर तक एक-दूसरे का गला काटोगे, कलियुग में ऐसा नही चलता।

फिर भी महीपत बोला—मेरे बड़े भाई ऐसे नही हैं। वह मेले-ठेले मे जाते हैं

तो पहले हमारे बच्चों के लिए चीजें लाते हैं, फिर अपने बच्चों के लिए। शहर से साड़ी ले जाते है तो मेरे घर के लिए अच्छी लेते हैं और भौजाई के लिए सादी लेते हैं। कहते हैं कि अब उनकी उम्र ढल गयी, अब रंगीन साड़ियों से क्या मतलब ?

वकील साहब को ऐसे मुवक्किल से पाला नही पड़ा था जो इस प्रकार अपने दुश्मन की प्रशंसा करता हो। उन्होंने निराश होकर मुंशी जी की तरफ देखा, पर अपनी प्रतिभा पर उन्हें पूर्ण विश्वास था। यह हार मानने वाले नही थे। बोले—मुकदमा करना तुम्हारे वश का नही है···

अब की बार मुंशी जी को आश्चर्य हुआ, खैर, पाँच रुपये तो आ ही गये थे जिसमें एक उन्हें मिलता, पर वकील साहब यह कर क्या रहे हैं, एकदम मुवक्किल को निराश कर रहे हैं। जैसे डॉक्टर का काम है अगले ही क्षण मरने वाले का इलाज करता जाये, उसी तरह वकील का भी पवित्र कर्तव्य यह है कि मुकदमे में भले ही कुछ दम न हो, पर मुवक्किल को दिलासा देता जाये और यदि वह हार जाये तो उसे कहे कि अपील से जीतोगे। पर वकील साहब ने तो एकदम से कह दिया, मुकदमा करना तुम्हारे वस का नही है।

महीपत बोला—हुजूर यही तो मेरा भी ख्याल है, तभी तो आपके पास आया हूँ कि आपके पास जो आता है, कभी निराश नहीं जाता।

वकील उमानाथ शायद कुछ मुसकराये, बोले—जो मरीज दवा नही पियेगा, कुपथ्य खायेगा, उसका डॉक्टर क्या करेगा ?

महीपत बोला—हुजूर, ऐसा कोई तरीका नही है कि मुझे मुकदमा न करना पड़े और भाई साहब को कुछ हिदायत हो जाये ? वह इधर भौजाई की बातों में बहुत आने लगे हैं।

उमानाथ ने अपनी गंजी चाँद पर हाथ फेरते हुए कहा—तरकीब तो है, पर खर्च-वर्च ज्यादा होगा।

महीपत का हाथ मूँछों पर चला गया, बोला—सो आपकी कृपा से मैं सौ दो सौ लगाने के लिए तैयार हूँ···

वकील साहब ने कहा—क्यों मुंशी जी ?

मुंशी जी यही देख रहे थे कि बाबू उमानाथ कहाँ से कहाँ जा रहे हैं। कभी तो मछली को ऐसी ढील देते हैं कि मालूम होता है कि वह हमेशा के लिए सागर की अथाह गहराई मे विलुप्त हो गयी और फिर ऐसे डोरी खींचते हैं कि मालूम होता है मछली टोकरी मे आ गयी। मुंशी जी ने मन ही मन बाबू उमानाथ को प्रणाम किया और सिर्फ इतना ही बोले—जी।

उमानाथ ने फिर से वही बात कही—मान लिया खर्च-वर्च तुम कर सकते हो, पर मुकदमा करना तुम्हारे वश का नही है। तुमने एक लाठी से जंगली सूअर मार

नही-नही, वह कह दें तो मैं जान दे सकता हूं। मेरी तो शिकायत भौजाई से है कि भैया को गलत-सलत बातें न कहा करें।

उमानाथ बिल्कुल मंजधार में गोते खा रहे थे। उन्हें कही किनारा दिखायी नही पड रहा था, पर प्रकाश की एक रेखा जैसे एकाएक आयी, बोले—तो तुम्हारी भौजाई तुम्हारी दुश्मन है। है न ? फिर मुकर न जाना।

महीपत दिल कडा करके बोला—जरूर है, मैं डंके की चोट पर यह कह सकता हूँ।

वकील साहब बोले—मुझे भी ऐसा ही मालूम देता है और क्या पता, तुम्हें मालूम न होता हो, पर तुम्हारे भाई साहब साड़ियाँ लाते वक्त दिखाने के लिए तो अपनी पत्नी के लिए घटिया साड़ी लाते होंगे, पर सम्भव है चुपके से कोई रेशमी साड़ी भी लाते हो।

महीपत आश्चर्य के साथ बोला—आप भी ऐसा कह रहे हैं ? मेरी बीवी भी यही कहती है। उसका कहना है कि समय-समय पर भौजाई एकाध अच्छी साड़ी निकालती है। पूछने पर कहती है कि मायके से आयी। मेरी बीवी का कहना है, यह सब झूठ है।

उमानाथ ने अन्तिम फैसला-सा देते हुए कहा—मुकदमा करना तुम्हारे वश का नही है।

महीपत गिडगिडा कर बोला—हुजूर, आपका बड़ा नाम है, बड़ी आस लेकर आया था।

उमानाथ ने घड़ी की तरफ देखा, मन ही मन बोले, इसने बड़ा समय ले लिया। फिर बोले—अच्छा, मैं बताता हूँ, तुम मुकदमे से अलग हो जाओ।

महीपत बहुत खुश हुआ। बोला—यही तो मैं भी चाहता था कि आप मेरी भौजाई शन्नोदेवी को एक नोटिस भेज दीजिए कि तुमने अगर अपने देवर से किसी प्रकार दुर्व्यवहार किया या अपने पति को देवर के खिलाफ भड़काया तो तुम्हारा चालान किया जायेगा।

वकील साहब ने तुरन्त ही कहा—यह कैसे हो सकता है ?

फिर उन्होंने खुद ही कहा—एक काम करो, तुम मुकदमे से अलग हो जाओ। अपनी बीवी को ले आओ, उसी को मुद्दई बनाया जाये। वही दरख्वास्त दे, तुम बिल्कुल अलग रहो, बस मुंशी जी की फीस पहुँचाते रहो।

महीपत एक बार झिझका। उसकी पत्नी पढ़ी-लिखी नही थी, पर वह स्वय इस मुकदमे से इस हद तक अलग रहना चाहता था कि उसने कहा—अच्छा हुजूर, जब आप हैं तो कोई चिन्ता नही।

यही तय हुआ।

महीपत की बीवी गगा वकील साहब के यहाँ आयी। मुंशी जी ने महीपत

को अलग ले जाकर जितना बन पड़ा, रुपये ले लिए और इधर वकील साहब ने मुकदमा तैयार किया।

सम्मन पाकर संग्रामसिंह अदालत में हाजिर हुआ। गंगादेवी की तरफ से अर्जी दी गयी थी कि जब से मैं ब्याह कर आयी, तभी से मेरे जेठ मुझ पर कुदृष्टि रखते है। मैंने भाइयों मे झगड़ा न कराने की दृष्टि से पति से कभी कुछ नही कहा, पर 17 तारीख को दिन को जब हमारे पति शहर गये हुए थे और जेठानी कही गयी हुई थी तो जेठ ने मेरा हाथ पकड़ लिया, मुझे घसीटा और जब मैं उनकी बात पर राजी नही हुई तो मुझे मारा।

उसने घसीटने का दाग भी दिखलाया।

महीपत यह सब सुन रहा था और उसका पारा चढ़ता जा रहा था। यह सब होता रहा और मुझे कुछ पता नही लगा! मैं भाई को देवता समझता था और वह ऐसा शैतान था!

अगले दिन और भी गवाही शायद खरोंचों के सम्बन्ध में डॉक्टर की रिपोर्ट पेश होने वाली थी, पर उसकी नौबत ही नही आयी क्योंकि उसी दिन घर लौट कर महीपत ने गंडासा लेकर भाई का काम तमाम कर दिया। इसके बाद वह थाने हाजिर हो गया।

अगले दिन सारी बातें गंगादेवी से सुनकर उमानाथ ने कहा—अब मेरा जौहर देखना कि कैसे मैं तुम्हारे पति को साफ बरी करवाता हूँ। छोटे-मोटे मुकदमे में तो मेरा मन ही नही लगता।

सोख्ते का टुकड़ा

रेखा की उम्र तीस से अधिक हो चुकी थी। दो बच्चों की माँ थी। अपनी जान मे सुखी थी। पति काफी पैदा करते थे। गहने थे। निजी मकान था। जवानी थी अपनी तथा पति की। बच्चे स्वस्थ थे। बडा बच्चा, विन्ध्या, स्कूल जाता था। छोटा बच्चा, हिमू, अभी घर ही में पढता था। रेखा की तरह उच्चाकांक्षा से शून्य साधारण स्त्री के सुखी रहने के लिए और किस बात की जरूरत थी?

हाँ, वह बहुत सुखी थी। पर उसका यह सारा सुख एक दिन एक मुहूर्त के अन्दर काफूर हो गया। उसके पैर के नीचे से जमीन खिसक गई। सारा जगत् उसके सामने अन्धकारपूर्ण हो गया।

घर मे नौकर भी थे, और एक नौकरानी भी थी। पर वह अपने पति की बैठक को खुद ही झाड़ती थी, विशेषकर उनकी किताबों से लदी, लिखने की मेज को। एक बार उसके पति का कोई जरूरी कागज मेज पर से उड गया, इस पर वे बहुत नाराज हुए थे। पति ने नौकरो से कह दिया था कि वे उनके कमरे मे न घुसा करें। तब से रेखा स्वयं इस कमरे को साफ करती या करवाती थी। यदि कभी नौकर झाड़ू लगाते, तो भी मालकिन साथ मे रहती। जो कूड़ा घर से निकाला जाता, उसकी बाकायदा जाँच की जाती, और तब वह फेंका जाता।

कागज खोने वाली उस घटना को हुए कई साल हो गये थे, पर रेखा ने उस नियम को ढीला नही होने दिया था। और रामविलास बाबू को भी फिर कभी शिकायत का मौका नही मिला था।

ऐसे ही एक दिन जब वह रामविलास बाबू की मेज साफ कर रही थी, तो एक सोख्ते की तरफ उसका ध्यान गया। उस सोख्ते पर साफ-साफ लिखा था, 'प्यारी नीला'। हा, ये ही शब्द थे, और बिल्कुल साफ। और ये शब्द उसके पति की ही लिखावट मे थे। उसने सोख्ते को हाथ में उठाकर बड़े ध्यान से देखा। उसे सन्देह नही रहा कि लिखावट उसके पति की ही है।

नीला! यह नीला कौन है? वह नीला नाम की किसी स्त्री को नही जानती थी। नही, इस नाम की किसी स्त्री को उसने कभी देखा भी नही था। 'नीला'

और 'प्यारी' ! रेखा के पैरो के नीचे से जमीन खिसक गयी। तो यह बात है ! इस हरामजादी नीला पर इन दिनो आप मर रहे है ! तभी अनमने रहते है, और रात मे देर से आते है, और पूछने पर बताते है कि इन दिनो काम बढ़ गया है।

'अच्छा, तो यह काम रहता है ! बुढौती में अब मस्ती सूझी है। दो बच्चों की मा से अब जी नही बहलता, इस कारण अब एक नीला खोज निकाली गयी है। एक दफा देख तो लूँ कि यह नीला कैसी है, तो झाड़ू से उसकी तबियत झक कर दूँ। नौकरों से इतने जूते लगवाऊँ कि सब नखरे निकल जाएँ।' सोचते-सोचते रेखा की आँखें लाल हो गईं। पर वहाँ नीला कहाँ थी? वहाँ तो केवल सोख्ता था। उसकी मुट्ठी के अन्दर सोख्ता टेढा पड़ गया, और फटने को हो गया।

उसने सोख्ते को निकालकर फिर देखा। हाँ, इसमें कोई सन्देह नही कि 'प्यारी नीला' लिखा हुआ था। उसने उस सोख्ते को अपने ब्लाउज के अन्दर रख लिया, मानो वह कोई अमूल्य निधि हो। फिर उसने नौकर से कहा—जाओ।—और वह दरवाजा बन्द करके सारे कमरे की तलाशी लेने लगी। पहले तो उसने देखा कि कही और सोख्ता है कि नही। सारा कमरा खोजने पर सोख्ते के जो दो-चार टुकड़े मिले, उनसे वह जिस बात की खोज कर रही थी, उस पर कोई रोशनी नही पडी। ये टुकड़े बिल्कुल सादे थे। उन पर कही कुछ छपा नही था।

रेखा ने सोचा, हाय ! पहले मुझे क्यों नही मालूम हुआ? इसके पहले कूड़े में कई सोख्ते गए होंगे। मैं चूक गई।—इस बात के सूझते ही, वह झपटकर कमरे के बाहर निकली, और जिस 'डस्टबिन' मे घर का कूड़ा फेंका जाता था उसके पास पहुँची ! वहाँ कूड़ा था, पर बहुत थोड़ा। एक छडी लाकर उसे कुरेदा, तो उसके अन्दर कोई कागज नही मिला।

मालकिन को इस प्रकार व्यस्त होकर कूड़ा कुरेदते देखकर, दो नौकर तथा नौकरानी आकर एकत्र हो गये। और सब रुआँसे चेहरे बनाकर पूछने लगे—माई जी, क्या खो गया?

रेखा ने कुछ उत्तर नही दिया, और छड़ी से कूड़े को कुरेदती रही। फिर जब नौकरो ने वही प्रश्न किया, तो उसका उत्तर न देती हुई बोली—इतना कम कूड़ा क्यों है?

नौकरानी वयोवृद्ध थी, और रामविलास बाबू के पिता के जमाने की थी। और सब लोग तो रेखा को 'माईजी' कहते थे, पर वह 'बहूजी' कहती थी। बोली—बहूजी, आज ही का तो कूड़ा है। आपका ही तो हुक्म है कि रोज का रोज कूड़ा फेंक दिया करो।

नौकरानी और भी कुछ कहने जा रही थी, पर रेखा ने कहा—हाँ, मेरे सब हुक्म पूरे कर देती हो न ! इसी से तो सब कुछ हो रहा है !—कहकर, रेखा पति की बैठक में घुस गई, और दरवाजा बन्द कर लिया।

नौकर मालकिन के इस रुख से घबरा गये। रामखेलावन ने अभी चिलम भरी थी, और पीने ही जा रहा था कि इस प्रकार मालकिन उधर आ निकली। उसने जाकर जल्दी से चिलम उलट दी और उसे छिपाकर रख दिया। मालकिन जब प्रसन्न रहती थी तो किसी नौकर को चिलम पीते देखकर मुंह फेरकर चल देती थी, पर नाराजी के समय अवश्य बिगड़ती थी। दूसरा नौकर हरखू जाकर बरामदे में शोर करता झाड़ू लगाने लगा। अभी ही वह उस स्थान पर झाड़ू लगा गया था। पाडे रसोईघर में मसाला पीस चुका था, पर फिर से उसे पीसने लगा।

केवल नौकरानी जहाँ की तहाँ खड़ी रही। यदि मालूम हो जाता कि क्या चीज खो गई है, तो खोज की जाती; पर मालकिन ने तो कुछ बताया ही नहीं। उसने अपनी बुद्धि से अटकल लगाया कि हो न हो कोई चाभी खो गई होगी, क्योंकि मालकिन को चाभियाँ खो डालने की आदत थी। तब उसने उस कूड़े को फिर कुरेदा। पर उसमें कुछ होता, तब तो मिलता ? फिर भी नौकरानी निराश नहीं हुई, और इधर-उधर खोजने लगी। संयोग से एक चाभी मिल गयी।

वह उसे लेकर फुदकती हुई मालकिन के पास पहुँची, और दरवाजे पर थपकी लगाकर, बोली—बहूजी, बहूजी !···चाभी मिल गयी !

उसके कई बार दरवाजे पर थपकी लगा चुकने के बाद कहीं मालकिन ने दरवाजा खोला। बोली—क्या है ?

'बहूजी, चाभी मिल गई। लो।' कहकर उसने हाथ बढ़ाकर चाभी देनी चाही।

चाभी देखकर मालकिन का तेवर चढ़ गया। वह कुछ कटु शब्द कहने ही जा रही थी, पर एकाएक किसी बात के याद आ जाने से वह चुप रह गयी। इशारे से नौकरानी को कमरे के अन्दर बुलाकर, फिर दरवाजा बन्द करके बोली—अच्छा, जगन की माँ, बतलाओ, नीला कौन है ?

जगन की माँ अचम्भे में पड़ गयी। कुछ देर सोचकर बोली—नीला कौन, बहूजी ? मुझे तो मालूम नहीं। क्यों, नीला को क्या हुआ ?

रेखा समझती थी कि वह न जानती होगी, फिर भी वह निराश न हुई। उसने देखा कि जगन की माँ का चेहरा कौतूहल से तमतमा रहा है। शायद उसे कुछ संदेह हो गया है। तब रेखा ने चट कहा—इस नाम की मेरी कोई ननद थी, जो शायद बचपन में ही मर गयी थी ?

'नहीं तो, बहूजी ! माँजी के ज्यादा बाल-बच्चे हुए ही नहीं। दो बेटे हुए थे रामविलास और हरविलास, और एक बेटी, इन्दिरा। कोई बच्चा मरा नहीं। हाँ, एक दफा मैं घर चली गई, तब हमल गिर गया था।'

'अच्छा अपनी ननद न सही. कोई मौसेरी, चचेरी ननद थी ?' रेखा ने पूछा।

'नहीं। अच्छा ठहरो, बहूजी। क्या कहा, नीला ? फिर कुछ रुककर बोली

किन थी। फिर उसने पूछा—जगन की माँ, बताओ न क्या बात है? मैं भी तो आठ वर्ष से यहाँ का नमक खा रहा हूँ।—उसके स्वर में प्रार्थना थी।

जगन की माँ ने कुछ सोचा। रामखेलावन बाबू का प्यारा नौकर था। उसे नाराज करना ठीक नहीं। फिर वह भी तो उसे बातें बताता है। बोली—किसी से कहना मत! वही ननद-भौजाई का झगडा है!

किसी की समझ में यह बात नहीं आई, क्योंकि मालिक की एकमात्र बहन, इन्दिरा, यहाँ बहुत कम आती है। वम्बई या पूना रहती है। उसके पति कोई बड़े अफसर हैं। गत दो साल से नहीं आयी। फिर झगडा कैसा? फिर भी सब लोगों ने इस बात को मान लिया, और यह जानकर खुश हुए कि जो कमजोरी उन गरीबों में है, वही बड़े आदमियों में भी है। रामखेलावन शायद और भी कुछ पूछता, पर उधर कुछ खटका-सा मालूम हुआ। तुरन्त सब लोग अपने-अपने काम में लग गये। पाँडे बडे जोर से गोश्त को चलाने लगा। हरखू जाकर झाड़ू देने लगा और रामखेलावन भंडार में कुछ करने लगा।

पर मालकिन आयी नहीं। जो आवाज हुई थी, वह इस कारण हुई थी कि रेखा ने एक बक्स हटाया था। वह इस समय सारे कमरे की तलाशी ले रही थी। उसकी बुद्धि ने उसे बताया था कि यदि रामविलास बाबू इस नीला से प्रेम करते हैं, तो अवश्य ही उसका फोटो भी यहीं कहीं होगा। रेखा उस फोटो की तलाश में सारे कमरे को ढूंढ रही थी, और उसे वह तलाशी जल्दी ही खत्म करनी थी, क्योंकि अब बच्चों के स्कूल से आने का समय हो रहा था।

वह जल्दी-जल्दी रामविलास बाबू के बक्सों को, सूटकेसों को खोलती और खोजती जाती थी। पर कहीं कोई फोटो नहीं मिला। हाँ, कुछ पुराने पत्र मिले, जो रेखा ने कुमारी-अवस्था में रामविलास बाबू को लिखे थे। रामविलास बाबू ने उन्हें बड़े यत्न के साथ एक रेशमी रूमाल में बाँधकर रख छोड़ा था। उस पोटली में रेखा का एक फोटो भी था। उन दिनों उसकी उम्र 16 साल की थी।

पर इन पत्रों तथा फोटो को देखकर रेखा को कुछ प्रसन्नता नहीं हुई, बल्कि कुछ कष्ट ही हुआ। हाय, रामविलास कितने अच्छे थे, पर इस नीला ने उन्हें बिगाड़ दिया। अपने एक पत्र को रेखा ने उठाया, उसमें लिखा था—प्रियतम! यदि मैं इतना ही लिखूँ कि तुम्हें प्यार करती हूँ, तो वह मिथ्या होगा। मेरा रोम-रोम तुम्हारे रोम-रोम के लिए लालायित हो रहा है। तुमने मुझे लिखा है कि मैं सौंदर्य की रानी हूँ। काश, मेरा सौन्दर्य तुम्हारे दिल-बहलाव का सामान हो सकता, तो मैं इसे सार्थक समझती। तुम मेरे प्रियतम नहीं, देवता हो···

रेखा आगे न पढ़ सकी। उसकी आँखों से अश्रु जारी हो गये। उसने उस सोख्ते के टुकडे को निकालकर देखा। हाँ, उसमें सचमुच 'प्यारी नीला' छपा था। इसमें कोई सन्देह नहीं।

सोख्ते को देखते-देखते एक विचार उसके मन मे आया। रामविलास बाबू हमेशा फाउन्टेन पेन से लिखते हैं। और अच्छे फाउन्टेन पेनों की लिखाई कर कभी सोख्ते से छापने की जरूरत नही पडती। फिर वह एकाएक हर्षित हो गयी। नही, सन्देह झूठा है। ऐसा कभी नही हो सकता। जो व्यक्ति बराबर फाउन्टेन पेन से लिखता है, वह अपनी प्रियतमा को दिखाने के लिए उसे छोड़कर, मामूली स्याही तथा मामूली चार पैसेया कलम का इस्तेमाल क्यों करेगा?

उसने अपने मन मे अपने को फटकारा कि उसने व्यर्थ ही अपने पति पर सन्देह किया। पति के प्रति प्रेम की भावना से उसका हृदय परिप्लावित हो गया। उसका प्रियतम, यौवन का सहचर, जीवन का सहयात्री, उसके बच्चों का बाप, उसका प्राणेश्वर!

पर उसके हाथ मे वह सोख्ते का टुकडा था। उसे उसने फिर देखा, और उसकी यह सुन्दर भावना फिर दूर हो गयी। फिर वह सन्देह के भँवर में गोते खाने लगी।

बच्चों के आने का समय हो रहा था। उसने जल्दी से बक्सो को ठीक-ठाक किया। पत्रों को जहाँ का तहाँ रख दिया, सोख्ते के टुकडे को ले जाकर छिपा दिया, और मुंह धोकर रसोईघर की तरफ यह देखने चली की बच्चो का नाश्ता तैयार हो गया या नही, फिर उसे 'ओट्स' की खीर अपने हाथ से बनानी थी। पाडे इस चीज को कभी बना ही नही पाया। और छोटे बच्चे, हिमालय उर्फ हिमू, को यह बहुत पसन्द थी।

जाने को तो रसोईघर में वह गयी, पर उसका मन आज किसी काम में नही लग रहा था। वह चाहती थी, कि जल्दी से जल्दी वह रामविलास से मिले। अभी वह यह निश्चय नही कर पा रही थी कि पति से वह सीधा सवाल करे, या कि परोक्ष रूप से जाँच करे। सीधा सवाल करने के सम्बन्ध मे वह यह सोचती थी कि कही इससे कुछ नुकसान न हो। कोई व्यक्ति यह थोडे ही स्वीकार करता है कि वह दुराचारी है। फिर अपनी पत्नी के सामने? इस कारण सीधा प्रश्न करना व्यर्थ था।

यही सब वह सोच रही थी। इतने में बच्चे स्कूल से आ गये। विंध्या और हिमू उसकी आँखो के तारे थे। कैसा ही दुःख हो, इनको देखने हो दूर हो जाता था। वह इनको खिलाने-पिलाने मे सारा दुःख भूल गयी। पर जब लड़के खा-पी लेने के बाद जाने लगे, तो उसे ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे वह अकेली, बिल्कुल अकेली हो जायेगी। उसने लडकों को रोकना चाहा; पर विन्ध्या को मैच खेलना था, सो वह नही रुका। हिमू को लोभ दिखलाकर, फुसलाकर रेखा ने रोक लिया। फिर वह उसे भीतर ले जाकर ऐसे प्यार करने लगी, चूमने लगी, मानो वह उससे बिछुड़ रही है। हिमू की उम्र सात वर्ष की थी। वह अपने को खासा बड़ा और

रेखा ने इसका और मतलब लगाया। बोली—तो आप इस ज़माने की प्रेम-कला से भी अभिज्ञ हैं !

रामविलास कुछ झेंप गये। पर वे व्यापारी थे, और दिन-भर बातें किया करते थे। बोले—शादी नहीं करता, तो बारात तो करता ही हूँ। फिर क्यों न मालूम हो ?

रेखा ने कहा—पर मालूम तो ऐसा होता है कि बारात से अधिक तजर्बा है आपको।

रेखा कभी ऐसे बात नही करती थी, इसलिए रामविलास बाबू ने सारी बातों को मज़ाक के रूप में लिया। रेखा भी कुछ सोचकर आगे न बढ़ी; पर उसे जो खटका हो गया था, वह और भी बढ गया।

उस रात को बात यहीं तक रही। पर अब रेखा जब-तब रामखेलावन को भेजकर खबर लेती कि बाबू दफ्तर में है कि नही, और है तो कहीं उनके साथ कोई स्त्री तो नही है। रामविलास बाबू आते, तो वह उनकी जेबों की, मनी-बैग की चुपके से तलाशी लेती, उनके कपड़ों को सूंघती, कि कहीं किसी अन्य स्त्री के शरीर की बू तो उनमे नही है। अपने पति के शरीर की बू को वह भली भाँति पहचानती थी, और उसे यह दृढ़ विश्वास था कि यदि किसी और स्त्री की बू उससे संयुक्त हो, तो वह उसका पता पा सकेगी।

पर किसी तरफ से कोई सुराग नही मिला। यदि रामविलास नीला से प्रेम करते होंगे, तो बड़ी सावधानी से करते होगे, क्योंकि कुछ पता नही लगता था। फिर पता भी कैसे लगे ? जो व्यक्ति दिन-भर बाहर रहता हो, वह क्या करता है, क्या नही करता, इसका कैसे पता लगे ? वह अपने भाग्य को कोसने लगी कि उसके भाग्य मे यह नीला कहाँ से आ मरी। जिस दिन से नीला की बात मालूम हुई थी, उस दिन से उसका जीवन असहनीय हो गया था। पति को देखती, तो सन्देह होता, क्रोध होता। बच्चों को देखती, तो रोना-सा आ जाता। हाय, इन मासूम बच्चों ने किसी का क्या बिगाडा है ? पर नीला इनका भी सर्वनाश कर रही है। पता नही, किस दिन सारी जायदाद, मकान, सब अपने नाम लिखवा ले।

इसी प्रकार की विकल मानसिक अवस्था मे एक दिन रेखा ने पति से कहा—बच्चों के नाम कुछ रुपये कर दो, तो अच्छा रहे।

'क्यो ?' रामविलास ने आश्चर्य के साथ पूछा।

'बात यह है कि बगल के वकील साहब ने अपने दस साल की उम्र के लड़के के नाम से 500 रुपये जमा कर रखे हैं। इसीलिए मुझे भी यह ख्याल हुआ।'

रामविलास बाबू कुछ सोचकर बोले—यह कौन बड़ी बात है ? पाँच सौ नहीं, एक-एक हजार जमा कर दूँगा। पर यह सब है बेवकूफी। ये ही दो हज़ार

मेरे पास रहेंगे, तो पाँच साल में सात हजार हो जायेंगे। और वहाँ बैंक में क्या मिलेगा ? दो हजार के पच्चीस सौ भी तो न होंगे। खैर, जैसी तुम्हारी इच्छा।

इस पर रेखा बोली—पर व्यापार में घाटा भी तो होता है !

बैंक भी तो फेल होते हैं !

रामविलास ने और भी समझाया; पर जब रेखा ने फिर भी जिद की, तो अगले दिन उन्होंने दोनों बच्चों के नाम अलग-अलग दस साल के 'फिक्स्ड डिपॉजिट' पर ढाई-ढाई हजार रुपये जमा कर दिये, और रसीद लाकर रेखा को दे दी। कहा—लो। पर बच्चों को न बताना। उन्हें मालूम हो जायेगा कि इतने रुपये उनके नाम से जमा हैं, तो उनका दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ जायेगा।

रेखा ने रसीद लेते हुए कहा—सो क्यों ? उन्हें क्या मालूम नहीं है कि उनके पिता कोई भिखमंगे नहीं हैं ?

'सो मालूम होना ठीक है। पर यह मालूम होना कि उनके नाम बैंक में इतने रुपये जमा हैं और बात है। वे बच्चों में डींग मारेंगे।'

रेखा की समझ में बात आ गयी। पर पति ने इतनी आसानी से उसकी बात मान ली, इससे उसका भय कुछ बढ़ा ही। इस बात में तो रेखा को सन्देह नहीं था कि रामविलास बच्चों को प्यार करते हैं; पर उसने सोचा कि उन्होंने उसकी बात इस सम्बन्ध में इतनी जल्दी शायद इसलिए मान ली कि वे खुद ही नीला से उन लोगों को बचाना चाहते थे। वह किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सकी।

पर, 'जिन खोजा, तिन पाइयाँ।' एक दिन सवेरे रामविलास 'स्टेट्समैन' हाथ में लेकर एकाएक बोले—मैं आज रात को शायद कुछ देर में आऊँगा। तुम मेरा इन्तजार न करना।—कहकर वे उठ खड़े हुए और तैयारी करने लगे।

दफ्तर वे कुछ देर से गये, और आज बहुत बढ़िया सिल्क का सूट पहनकर गये।

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। कभी-कभी वे रात में जरूर देर से आते थे, पर शेयर होल्डरों की मीटिंग और चेम्बर आफ कामर्स की मीटिंग के कारण, लेकिन ऐसे मौकों पर हमेशा कई दिन पहले से खबर रहती थी। और आज तो अखबार देखकर तय किया ! फिर सिल्क का सूट !

जब रामविलास चले गये, तो रेखा 'स्टेट्समैन' देखने लगी कि कौन-सी खबर ऐसी थी, जिसे देखकर उन्होंने रात में देर से आने की बात कही, और सज-धजकर कार्यालय गये। वाणिज्य-व्यवसाय के स्तम्भों में कोई भी ऐसी खबर नहीं थी। वह निराश होकर अखबार को पटकने ही वाली थी कि 'व्यक्तिगत' शीर्षक सूचनाओं में से एक पर उसका ध्यान गया। उस सूचना का शाब्दिक अनुवाद यों है—

'प्रिय,
ग्राड में रात साढ़े आठ बजे ! जरूर !

तुम्हारी—
नीला।'

इस सूचना को देखना था कि रेखा का माथा ठनक गया। वह समझ गयी कि यही नीला है, जो उसके जीवन को नष्ट करने पर तुली हुई है।—यह बात है ! तो आज ग्रांड होटल मे गुलछर्रे उडेंगे। न जाने ऐसा कितनी बार हुआ होगा।—उसे इस बात का अफ़सोस हुआ कि वह अब तक इस पत्र की व्यक्तिगत सूचनाओं को नही देखती थी।

इन बातो को सोचकर रेखा बिल्कुल एक बदली हुई स्त्री हो गयी। उसमे न भय रहा, न लज्जा। यहाँ तक कि उसमे बच्चो के प्रति मोह भी नही रहा। बस, वह क्रोध और प्रतिशोध की प्रतिमूर्ति बन गई। उसने मन मे निश्चय कर लिया कि वह एकाएक ग्राड होटल मे पहुँचेगी, और फिर दिखला देगी कि एक अपमानित स्त्री क्या कर सकती है। वह नीला को बतलायेगी कि एक शरीफ स्त्री के साथ दगा करने का क्या नतीजा हो सकता है। और रामविलास बाबू को भी वह एक गहरा सबक देगी। वह उन्हे घसीट लायेगी, और बच्चो तथा नौकरो के सामने अपमानित करेगी।

उसने मन मे तय कर लिया कि वह यह सब करेगी। पर ज्यो-ज्यो ग्रांड होटल जाने का समय करीब आने लगा, त्यो-त्यो उसके हाथ-पैर ढीले पडने लगे। उसे रोना-सा आने लगा। उसे ऐसा ज्ञात होने लगा कि उसके लिए ग्राड होटल जाना असम्भव है। जिस खूँटे के बल पर वह उछल सकती थी, वह उसका पति ही तो था पर अब···

सन्ध्या के छः बज गये। उसने अनुभव किया कि किसी की सहायता के बगैर उसके लिए ग्राड होटल जाना असम्भव है। वह कोई पर्दानशीन स्त्री नही थी। विवाह के पहले तथा बाद मे बहुत दिनो तक वह बराबर होटलों तथा रेस्तराओं की हवा खाती रही थी। पर अब बच्चों के कारण तथा अन्य गृहस्थी के झझटों के कारण वह घर से बाहर बहुत कम निकलती थी, रेस्तराओं तथा होटलो मे जाने की बात दूर रही।

जब सात बज गये, तब रेखा के लिए वह परिस्थिति आ गयी कि अभी या कभी नही। उसका पति एक बाजारू औरत के साथ गुलछर्रे उडाने जा रहा है। हाँ, उसकी कल्पना मे नीला एक बाजारू औरत ही थी। बाजारू नही, तो क्या ? जो स्त्री इस प्रकार बुला-बुलाकर एक विवाहित व्यक्ति को लुभा सकती है, वह एक वेश्या से कम नही।

जाना तो है ही, पर कैसे जाया जाय ? किसे वह साथ ले ? नही, अकेली तो

वह नही जा सकती। फिर? नौकरानी को साथ लिया जाय? पर ग्रांड होटल में ऐसी नौकरानी कैसे जा सकती है? शायद उसे घुसने ही न दिया जाय। तो किसी दरवान को साथ लिया जाय? नही, यह बात भी ठीक नही। बड़ी भद्द होगी। फिर? चलना तो है ही।

वह निकल पड़ी। एक टैक्सी लेकर, वह एक मकान में पहुँची। बिजली की घंटी बजायी। भीतर से एक दरवान निकला।

'साहब है?' रेखा ने पूछा। पूछने को तो उसने पूछ लिया, पर वह मन-ही-मन पछता रही थी कि वहाँ क्यों आयी। पर अब तो आ ही चुकी थी।

दरवान ने कहा—कौन साहब?—दरवान उसे घूर रहा था।

रेखा ने कहा—ऋषभ साहब। ऋषभजी से मिलना है मुझे।

'हाँ, वे है, बैठिये।'—कहकर, उसने भीतर सोफे की तरफ इशारा किया। फिर बोला—क्या कहूँ?

अन्दर जाकर एक सोफे पर बैठकर वह बोली—कह दो, कि मिस वर्मा आयी है।

उसके मुँह से यह परिचय निकल गया। कभी वह मिस वर्मा थी, पर इस समय तो वह 'मिसेज' थी। पर उसने दरवान से अपना असली परिचय छिपाने के लिए ही ऐसा कहा था। रहा ऋषभ, सो वह तो जानता ही है कि उसका विवाह हुए वर्षों हो चुके है।

थोडी ही देर मे ऋषभ आ गया। बहुत सुन्दर पोशाक मे था। वर्षों से भेंट नही हुई थी, पर उसके चेहरे मे कोई फर्क नही था। वही नटखट हँसी, वही लापरवाही।

ऋषभ ने हँसकर कहा—ओह रेखा, तुम हो! ह्वाट गुड लक! कहो, मेरा यह भाग्योदय कैसे हुआ? कहकर, उसने एक पारखी की तरह रेखा को देखा। फिर बोला—माई गाड! बिल्कुल वैसी ही बनी हो, बल्कि कुछ और अच्छी लग रही हो!

रेखा को ज़रा-सा डर मालूम हुआ। पर उसने मन को समझाया कि पति एक बाजारू स्त्री से प्रेम करते फिरे, और उसे यह भी अधिकार नही कि एक शरीफ व्यक्ति से बोले? बोली—यही बात मैं भी कह सकती हूँ! आप वैसे ही है जैसे दस साल पहले थे!

'धन्यवाद! पर यह तो बताओ कि यह कृपा कैसे हुई? और यह 'आप' की दीवार क्यों, जब आई ही हो तो? हाँ, तुम तो मुझे कभी 'आप' नहीं कहती थी!'

रेखा ने कलाई-घडी की तरफ देखा। सात बजकर पच्चीस मिनट हो चुके थे। उसने मन मे कल्पना की कि अब मिलन हो रहा होगा। वे तो रेशमी सूट

में होंगे और वह बैंगनी साड़ी में होगी, क्योंकि उन्हे यही रंग सबसे अधिक पसन्द है। उस चुड़ैल ने इतने दिनो मे क्या इस वात का पता नही पाया होगा? जरूर पाया होगा। और बाजारू औरतों के पास क्या होता है?

इस प्रकार सोचकर रेखा बोली—'तुम' अच्छा 'तुम' क्या फुर्सत से हो?

'क्यों, क्यो! खैरियत तो है? कहाँ चलना होगा? मै तुम्हारे साथ नरक मे भी चलने को तैयार हूँ! मै जानता था कि बारह साल मे घूरे का भाग्य बदलता है! सो मालूम होता है, कि···'

उसकी बात काटते हुए रेखा ने खड़ी होकर कहा—अच्छा, रहने दो ये सब बातें! चलो, ग्रांड होटल मे दो घडी बैठें। बहुत-सी बातें करनी है।

'हाँ, हाँ, चलो!' पूरी बात, विशेषकर ग्रांड होटल मे चलने का आशय, न समझ पाकर भी ऋषभ बोला।

दोनों चल पडे। फिर एक टैक्सी ली। पहले रेखा चढी, फिर ऋषभ। जब गाड़ी चलने लगी, तब रेखा ने महसूस किया कि उसने गलती की, क्योंकि ऋषभ उससे सटकर बैठ गया। यहाँ से ग्रांड होटल बहुत दूर पड़ता था। टैक्सी से भी बीस मिनट का रास्ता था।

पहले तो दोनो चुपचाप बैठे रहे, अपने-अपने विचारों मे लीन, फिर ऋषभ ने उसके हाथ को पकड़ने की चेष्टा की। रेखा ने रोका। तब उसने उसके गले मे हाथ डालना चाहा, पर रेखा ने फिर रोका। तब ऋषभ ने कहा—रेखा!

'हाँ ऋषभ!' कहकर, वह जरा हट गई।

'क्या मेरी साधना पूरी न होगी? तुम जानती हो कि तुम्हारे ही कारण मैंने विवाह नही किया!'

रेखा ने उत्तर नही दिया। वह जानती थी कि ऋषभ ने उसी के कारण विवाह नही किया था। रेखा की शादी के बाद उसका स्वास्थ्य टूट गया था। साल-भर सैनेटोरियम मे रहने के बाद वह ठीक हुआ था। रेखा को ये बातें मालूम थी। उस समय तो उसने इन बातों की परवाह नही की थी, पर आज ये बाते स्मरण हो आयी, तो उसे रामविलास पर क्रोध आया। बारह साल से ऊपर हो गये, पर ऋषभ का रुख वैसा ही बना हुआ है। और 'वे ग्राड होटल मे एक बाजारू औरत के साथ गुलछर्रे उड़ा रहे है!' ऐसा सोचते-सोचते एकाएक उसके मन मे यह बात आयी कि ग्राड होटल मे पति को पकड़कर, उसका अपमान कर, और कलमुँही नीला को सबक देकर, यदि वह ऋषभ के साथ भाग जाए, तो कैसा रहे? ऋषभ जरूर उसे स्वीकार करेगा। रहे बच्चे! यह एक टेढ़ा प्रश्न है। पर जब रामविलास को उनकी चिन्ता नही, तो वह ही क्यो चिन्ता करे?

ऋषभ ने फिर कहा—जरा सोचो तो रेखा! अब तो मैंने प्रमाणित करके दिखा दिया कि तुम्हारे सिवा मै किसी और की बात सोच नही सकता।

रेखा के मन मे प्रतिशोध, निराशा, स्नेह, सतीत्व तथा कितनी ही अन्य बातें बारी-बारी से आती रही। उसने कहा—ऋषभ, तुम पुरानी बातों को इस तरह न उठाओ। चलो, ग्राड होटल में बातें होंगी।

ऋषभ ने और कुछ नही कहा, न फिर रेखा का हाथ पकड़ने की चेष्टा की, न उसके गले मे हाथ डाला। अलग ही बैठा रहा।

थोड़ी देर मे टैक्सी ग्राड होटल पहुँच गयी।

ऋषभ ने कहा—चलो, किसी प्राइवेट रूम मे चलें।

पर रेखा ने चारो तरफ देखते हुए कहा—नहीं, हम लोग यही कही बैठें।

'यहाँ कहाँ ? रास्ते मे ?'—निराशाजनित झुंझलाहट मे ऋषभ ने कहा।

'नही, रास्ते मे नही, हाल मे, ताकि आने-जाने वालों को देख सकें।' रेखा ने कहा—मै आज फिर अपने को षोडशी पा रही हूँ ! इच्छा हो रही है कि सारे होटल को घूम-घूमकर देखूं।

ऋषभ ने कहा—जैसी मर्जी तुम्हारी। पर होटल मे धरा क्या है जो देखोगी ? कमरे हैं, हाल है, बर्तन हैं, बैटर हैं ! मेरी तो राय है कि चलकर किसी कमरे मे बैठें। तुम तो कहती थी कि बातें करोगी !

'पहले घूम लूँ, फिर बातें करूंगी,' कहकर उसने घड़ी की तरफ देखा। उसमे आठ बज चुके थे।

रेखा इस समय चारों तरफ पैनी दृष्टि से देख रही थी, ठीक उसी प्रकार जैसे हवाई अड्डे में रात को सर्चलाइट घुमाई जाती है। वह शायद भूल गयी कि उसके साथ ऋषभ है। वह जल्दी-जल्दी सीढ़ी चढ़कर हाल में गयी। फिर वहाँ सबको देखकर, वह ऊपर की मंजिल मे पहुँची। कुछ कमरे बन्द थे। वहाँ कौन-कौन था, यह कैसे मालूम हो सकता था ? पर बाकी सारे होटल को उसने देख डाला।

जब सारे होटल को देख लेने पर भी न रामविलास का पता लगा, न बैंगनी साड़ी पहने हुए किसी नीला का, तो रेखा को बड़ी निराशा हुई। आठ बजकर बीस मिनट हो चुके थे। रेखा ने फाटक के पास लौटकर अनुभव किया कि ऋषभ उसके पीछे-पीछे है। बोली—अच्छा ऋषभ, उन कमरो मे कौन है ?

ऋषभ बोला—उनमे कुछ लोग टिके होंगे। कुछ तो केवल रात-भर के लिए टिके होंगे। वे कमरे दो-चार घण्टों के लिए भी मिल सकते है, पर रात-भर का किराया देना पड़ता है।

'अच्छा, तो प्रेमी-प्रेमिका भी उन कमरो को लेते होंगे ?'

'हाँ, सो तो लेते ही है। चलो न, हम लोग भी एक ले लें। वही बात करेंगे।' आकुल आग्रह से ऋषभ ने कहा।

सामने बैरा आर्डर के लिए खड़ा था। दूर से गोरा मैनेजर भी इनकी तरफ

देख रहा था। ऋषभ को बडी अजीब बेचैनी मालूम हो रही थी। वह समझ रहा था कि सब लोग उसे ही देख रहे है। कही किसी परिचित व्यक्ति से भेंट न हो जाए, इस कारण वह शुतुरमुर्गी तरीके से किसी तरफ देख नही रहा था। पर इन सारी बातो का नतीजा यदि यह भी होता कि रेखा उनकी बात मान लेती, तो यह भी ठीक होता ; पर उसका तो कुछ पता ही नही मिल रहा था।

रेखा ने एक बेटर को बुलाकर कहा—हमे ऐसी जगह पर बैठाओ कि फाटक से आने-जाने वाले दिखाई पडें। काम है।'''

बेटर ने ऐसी एक जगह पर मेज लगा दी। फिर रेखा ने आर्डर दिया।

आठ बजकर तीस मिनट हो रहा था। पर अभी तक रामविलास का पता नही था। रेखा के मन मे अजीब द्वंद्व मचा हुआ था। यदि रामविलास आकर उसे इस प्रकार ऋषभ के साथ देखे, तो? देखे न। वह भी तो एक परस्त्री, एक बाजारू औरत के साथ होगा। उसे उपदेश देने को उसका मुंह कहां होगा? जो खद पतित है, उसे अपनी पत्नी को उपदेश देने का हक ही क्या है?

पांच मिनट और बीत गये, पर कही कोई नही। दूसरे लोग आ-जा रहे थे।

एकाएक रेखा ने कहा—अच्छा, ऋषभ, अगर अभी मैं तय करूं कि तुम्हारे साथ भाग चलूंगी, तो तुम क्या करोगे?

'मै इसे अपना परम सौभाग्य समझूंगा!' ऋषभ ने बडे तपाक से कहा।

रेखा का चेहरा पहले लाल और फिर सफेद पड गया। उसकी आंखे घडी पर थी। दोनों चुपचाप नाश्ता करते रहे। रेखा की आंखे बारी-बारी मे घड़ी तथा फाटक की ओर जाती थी। ऋषभ की आंखे रेखा के चेहरे पर डटी थी। वह कुछ समझ नही पा रहा था कि क्या मामला है?

एकाएक रेखा का चेहरा फक पड़ गया। वह खड़ी हो गयी, और मालूम हुआ जैसे वह पछाड़ खाकर गिरना ही चाहती है। ऋषभ ने देखा कि एक मोटर से बैंगनी साड़ी पहने हुए एक तरुणी उतरी। मुश्किल से उसकी उम्र बाईस की होगी। न मालूम क्यो, रेखा को मालूम हुआ कि यही वह नीला है। वह मोटर से उतरकर इन्तज़ार करने लगी। मोटर में और लोग भी थे। रेखा के मन ने कहा कि उसमें जरूर रामविलास होंगे। वह धड़कता हृदय लिए इन्तज़ार करने लगी। पर उसमें से पहले एक बच्चा उतरा, फिर एक कुत्ता, और फिर एक पुरुष। वह पुरुष रामविलास नही था।

रेखा की जैसे जान में जान आई। वह बैठकर चाय पीने लगी। पर उसका चेहरा अभी कागज-सा सफेद पड़ा हुआ था।

ऋषभ ने कहा—रेखा, क्या बात है? तुमने तो ऐसा चेहरा बना लिया, जैसे भूत देख रही हो!

रेखा ने बात बनाते हुए कहा—भूत से भी बढ़कर! मैं समझी कि ननदजी

आ गयी।

'ओह, यह बात है!' ऋषभ हँसा। फिर बोला—इसीलिए तो मैंने कहा था कि किसी कमरे में चलें।

रेखा ने फिर बात बनाते हुए कहा—पर, ऋषभ, यह तुम्हारी ज्यादती है। कमरे मे जब तक बैठेंगे, तब तक तो ठीक रहेगा; पर अन्दर जाते और निकलते समय भी तो किसी से भेंट हो सकती है? यहाँ भेंट हो तो कोई बात नही। पर उस हालत मे जब मालूम हो जायेगा कि मै परपुरुष के साथ एक कमरे में थी, तो···

ऋषभ ने कुछ कड़वेपन के साथ कहा—पर तुम तो कह रही थी कि मेरे साथ निकल चलोगी!

'मैं पूछ रही थी, कि तुम क्या करोगे?' रेखा ने घड़ी की ओर देखा। नौ के करीब हो रहा था।

इसके बाद बहुत कम लोग होटल मे आए। जाने वालो का ही तांता रहा। सवा नौ बजे एकाएक रेखा ने फैसला किया कि चलना चाहिए। होटल से निकलकर उसने एक टैक्सी ली, और ऋषभ से विदा माँगते हुए कहा—जाती हूँ। काफी रात हो गयी।

ऋषभ ने गाड़ी पर चढ़ने की इच्छा से दरवाजा खोलना चाहा, पर रेखा बोली—मुझे जल्दी है। मै सीधे घर जा रही हूँ।—और उसने ड्राइवर को चलने का इशारा किया।

गाडी चलने लगी।

ऋषभ जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे उसने एक अर्थहीन स्वप्न देखा हो।

रेखा घर पहुँची तो मालूम हुआ कि रामविलास उसके निकलने के बाद ही घर आ गये थे।

रामविलास बोले—शेयर-होल्डरो की एक मीटिंग बुलाई थी, पर कोरम पूरा नही हुआ। इसलिए जल्दी ही लौट आए। फिर जरा रुककर पूछा—तुम कहाँ गयी थी?

रेखा ने एक सहेली का नाम ले दिया। पर वह पहले से अधिक गड़बड़ी मे पड़ गयी। 'स्टेट्समैन' की नीला ने किसी को 8-30 पर बुलाया था, और ये तो 7 बजे से ही घर पर डटे हैं। तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह नीला और थी। और इसी मरीचिका का अनुसरण कर उसने ऋषभ के साथ दो घण्टे बिताये; और इस बीच मे उसने उससे न मालूम क्या-क्या कहा। उस समय तो वे बातें कुछ अधिक मूर्खतापूर्ण ज्ञात नही हुई थी; पर इस समय पति को रोज की तरह घर पर बैठा देखकर, उसे उन बातो के लिए ग्लानि अनुभव होने लगी। पति के

दुराचार का प्रमाण न मिलने पर उसे निराशा हुई, पर साथ ही खुशी भी हुई। उसने मन में दो-एक बार अपने से कहा कि शायद उसका सन्देह गलत था, शायद उसकी आशंकाएँ निरर्थक है। पर वह सोख़्ते का टुकड़ा ?

इसी प्रकार हर्ष, विषाद, सन्देह, विश्वास, भय, आशा, ग्लानि, आनन्द के आवेश में उसकी अद्भुत हालत हुई। सोते समय उसके सिर मे दर्द था। सवेरे देखा गया कि उसे 102 डिगरी का बुखार है।

जब दो दिन तक बुखार डटा रहा, तो इलाज भी होने लगा। पर तरह-तरह का इलाज करने पर भी बुखार छूटा नही। रामविलास दिन मे चार-छ मर्तबा उसे देखने घर आते। और घर मे वे जब रहते, तो उसी के पास रहते। पर उस सन्देह के होने के कारण पति की कोई भी बात उसे पहले की तरह अच्छी न लगती। सब बातों मे उसे चाल ही दिखाई पड़ती।

रेखा को इन दिनों बस, बच्चों की चाह बनी रहती। बच्चे स्कूल जाते, और फिर खेलने चले जाते हमेशा की तरह। उन्हें क्या पता था कि माँ समझ रही है कि वह अब बचेगी नहीं ? रोगी की मनोवृत्ति के अनुसार रेखा को बच्चो की यह बात बहुत बुरी लगती। वह इन दिनो चिड़चिड़ी हो गयी थी। समझती थी कि बच्चे स्वार्थपरता बरत रहे हैं।

हिमू तो आता भी था, पर विन्ध्या का कही पता नही लगता था। जब आता भी, तो फौरन चला जाता। एक दिन हिमू से रेखा ने कहा—तेरे भैया को क्या हुआ है रे ? कहाँ रहता है ? मैं मर रही हूँ, और उसका पता नहीं। बस, खाने-सोने को घर आता है।

हिमू अपने भैया को प्यार करता था। पर वह यह चाहता था कि माँ उसे अधिक प्यार करे। बोला—रज्जू बाबू के घर में खेलता है।

झुँझलाकर रेखा बोली—क्या उसके घर-द्वार नही है कि जब देखो तब रज्जू बाबू के घर में घुसा रहता है ? कभी-कभी जाये तो कोई बात नहीं, पर हर वक्त वहाँ डटे रहने के क्या मानी ?

हिमू ने अपनी सुर्खरूई दिखाते हुए कहा—मैं तो बस स्कूल जाता हूँ, और तुम्हारे पास रहता हूँ।

बात यह थी कि वह भी रज्जू बाबू के यहाँ के लड़कों से खेलने आया करता था; पर दो दिन हुए, एक झगड़ा हो गया था, इस कारण उसका जाना कम हो गया था।

रेखा ने कहा—जाकर उसे बुला लो !

हिमू विन्ध्या को बुलाने गया, पर लौटा नही। रेखा और चिढ़ गयी। इन दिनों वह रामविलास से कोई अनुरोध नही करती थी, पर उस दिन उसने पति से कहा—तुम लड़कों को देखते नहीं। बिल्कुल आवारे हुए जा रहे हैं। मेरे मरने के

बाद तो आवारे हो ही जाएँगे, पर मेरे जीते-जी तो ऐसा न होना चाहिए।

उस दिन रामविलास बाबू ने दोनों बच्चों को कनैठी दी। हिमू रो पड़ा। रेखा ने चुप कराया। पति पर बिगड़ गयी। बोली—मैंने यह थोड़े ही कहा था कि कान उखाड़ लो! न मालूम कैसे हुए जा रहे हो!

रामविलास बाबू कुछ नहीं बोले, चुप रहे। बच्चों पर कनैठी का प्रभाव यह हुआ कि वे दो-एक दिन माँ के पास ही रहे। पर बच्चे तो थे ही, फिर भागने लगे। तब रेखा ने फिर पति से कहा—सचमुच लड़के खराब हो गए। कनैठी दो, चाहे जो करो, पर उन्हें ठीक करो! यह क्या कि भिखमंगों की तरह हमेशा दूसरों के घर डटे रहते हैं?

उस दिन फिर कनैठी लगी। अगले दिन लड़के घर पर रहे। हिमू तो मजे में रहा, पर विन्ध्या उमुर-मुमुर करता रहा। फिर माँ से बोला—सबक याद करना है।

यह कहकर वह बगल के कमरे में चला गया। फिर उसने हिमू को बुलाया। थोड़ी देर में जब रेखा की झपकी टूटी, तो उसने दोनों लड़कों को नाम ले-लेकर पुकारा।

विन्ध्या तो आया पर हिमू गायब था।

रेखा ने विन्ध्या से पूछा—कहाँ गया रे, हिमू?

विन्ध्या ने कहा—पता नहीं। खेलने गया होगा।

थोड़ी देर में हिमू आया, तो रेखा ने कहा—कहाँ गया था रे? फिर तू रज्जू बाबू के घर गया था? आज खूब पिटवाऊँगी! आने दे उन्हें!

हिमू ने सन्देहपूर्ण दृष्टि से विन्ध्या को देखा। उसने समझा कि यह सारी शरारत भैया की है। बदले की भावना उभर आयी। रुआँसा होकर बोला—इन्होंने ही तो मुझे भेजा था। चिट्ठी देकर भेजा था। और तुमसे चुगली कर दी!

विन्ध्या ने सफाई में कहा—नहीं, झूठ बोल रहा है!—वह बड़ा था। उसे निश्चय था कि चिट्ठी तो दे दी गयी होगी, अब क्या हो सकता है।

पर चिट्ठी दी नहीं गयी थी।

हिमू ने कहा—नहीं, माँ, देखो, यह चिट्ठी है। नीला दीदी के पास भेजी थी इन्होंने। पर वह मिली नहीं। उनके लिए मैं रुका था।—कहकर, उसने माँ के हाथ में चिट्ठी दे दी।

रेखा ने चिट्ठी ले ली। उसमें लिखा था—

'प्यारी नीला, मैं खेलने नहीं आ सकता। माँ बीमार है, सो बिगड़ती हैं। स्कूल जाते वक्त कल मिलूँगा।

विन्ध्या।'

पत्र पढ़कर रेखा फौरन उठ बैठी। 'प्यारी नीला !' बिल्कुल सोख्ते की तरह की हस्त-लिपि ! तो नीला यह है, और लेखक विन्ध्या। बाप-बेटा दोनों की हस्त-लिपि हू-ब-हू एक है।

विन्ध्या समझ रहा था, कि उसका पत्र पढ़कर माँ बिगड़ेगी। पर उसने हिमू से पूछा—नीला कौन है ?

हिमू इस समय पूरी तरह चुगली करने पर उतरा हुआ था। बोला—रज्जू बाबू की लड़की है ! तुम नहीं जानती उसे। 'नन्ही' कहकर पुकारते हैं उसे, भैया अपनी मिठाई, बिस्कुट, सेब ले जाकर उसे देते हैं, और उसके कहने पर मुझे मारते भी हैं !

सारी बात रेखा की समझ में आ गयी। बोली—तू और भी चिट्ठियाँ ले गया था ?

'हाँ, बराबर ले जाता हूँ। जब कभी नीला दीदी के यहाँ किसी से भैया का झगड़ा हो जाता है, तो ये चिट्ठी भेजते हैं। एक चिट्ठी पर एक बिस्कुट देते हैं।'

रेखा उठ खड़ी हुई। इसी नीला के कारण वह परेशान थी। कितना कष्ट पाया उसने ! वह हँसी। इच्छा हुई कि अभी पति के पास दौड़ी जाये।

फौरन दरबान दौड़ाया गया। रामविलास बाबू घबराकर आये। पर यहाँ देखा तो सब ठीक था। रेखा ने बच्चों को खेलने भेजकर, सारी कहानी कह सुनाई, यहाँ तक कि ग्रांड होटल की कहानी भी नहीं छोड़ी। रामविलास सुनकर हँसे। पर रेखा रो रही थी।

उसी दिन रेखा का बुखार उतर गया, और वह तेजी से अच्छी होने लगी।

सब कुछ हुआ तो, पर हिमू की समझ में यह नहीं आया कि विन्ध्या को कनैठी के बजाय आलिंगन क्यों मिला, और उस दिन से माँ नीला को बुलाकर बिस्कुट और मिठाई क्यों खिलाने लगी ?

□□

परिशिष्ट (क)
प्रकाशित कहानियों की सूची

मन्मथनाथ गुप्त की सम्पूर्ण प्रकाशित कहानियों की पूर्ण सूची बनाना असम्भव ही है, क्योंकि वर्षों के जेल-जीवन के कारण सारी सामग्री अस्तव्यस्त हो गयी और मन्मथनाथ जी ने भी उन्हें संभाल कर रखने का प्रयत्न नहीं किया। सन् 1946 से पहले उनकी लगभग 30 कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं, परन्तु अब उनका विवरण तलाश कर पाना असम्भव ही है। यहाँ उनकी कहानियों की सूची 1946 से दी जा रही है, जो निश्चय ही अधूरी है। लेखक के पास उपलब्ध सूचनाओं तथा पत्रिकाओं की पुरानी फाइलों से जो सूचनाएँ एकत्र हो सकीं, वे यहाँ दी जा रही हैं। इस सूची का इतना ही लाभ माना जाय कि उनकी कहानियों की पहली बार कालक्रमानुसार सूची दी जा रही है जो उनके रचनाकार की निरन्तरता को स्पष्ट करती है। यह सूची उनकी रचनाधर्मिता, तथा वैचारिक संसार के क्रमिक विकास का इतिहास जानने में भी सहायक बन सकेगी। लेकिन इस सूची को पूर्ण बनाने का प्रयत्न बराबर होते रहना चाहिए।

1946

1. त्रिया चरित्र	मनोहर कहानियाँ	अप्रैल

1947

1. अपराधी	माया	जनवरी
2. तीसरी बीबी	देशदूत साप्ताहिक	9 फरवरी
3. अपरिचित	मनोहर कहानियाँ	फरवरी
4. राजभक्त	देशदूत साप्ताहिक	2 मार्च
5. लाचार	देशदूत साप्ताहिक	16 मार्च
6. आत्महत्या संघ	मनोहर कहानियाँ	मार्च
7. पुराना वालंटियर	माया	अप्रैल
8. मटरू गुरु (प्रेम की विचित्र गति)	अज्ञात	अप्रैल
9. दया के आवेश में	माया	मई
10. शहीदों के नाम पर	माया	अक्तूबर
11. मेहमान	रानी मासिक	दिसम्बर

1948

1. समाज का बन्धन	मनोहर कहानियाँ	फरवरी
2. आशा-निराशा	मनोहर कहानियाँ	मई
3. महान अमीर ने अखबार निकाला	मनोरंजन	जून
4. पन्द्रह रुपये बारह आने	माया	जुलाई
5. देशभक्त का अन्त	विजय साप्ताहिक	24 अगस्त
6. परित्याग	मनोरंजन मासिक	नवम्बर
7. क्रान्ति का मुहूर्त	नवयुग साप्ताहिक	19 दिसम्बर
8. दो भाई	मनोहर कहानियाँ	अज्ञात
9. खिलौना कारपोरेशन	माया	अज्ञात
10. राजनीति	मनोहर कहानियाँ	अवकाश अंक
11. भाग्य	माया	"
12. सम्बन्ध	माया	अज्ञात
13. अन्धकार	माया	"

1949

1. वायसराय का मैडल	वीर अर्जुन	29 अप्रैल
2. मर्दुमखोर	नया समाज	दिसम्बर
3. अवसर की प्रतीक्षा	माया	दिसम्बर
4. देशभक्त का अन्त	माया	वार्षिक अंक
5. गुमराह	माया	अज्ञात

1950

1. सोने का टुकड़ा	'दूर की कौड़ी' में	अज्ञात
2. यन्त्र का मूल्य	"	"
3. महायुद्ध की देन	"	"
4. पन्द्रह रुपये बारह आने	"	"

1951

1. कालेज की छात्रा	अज्ञात	फरवरी
2. घेरा	माया	अज्ञात
3. भ्रान्ति-भंग	'रक्त के बीज' में	अज्ञात
4. इतिहास से बाहर	"	"
5. कलाकार का जगत	"	"

6. न्याय की गति	'रक्त के बीज' में	अज्ञात
7. भाग्य की चाभी	"	"
8. नींव की ईंट	"	"

1952

1. कटहा कुत्ता	धर्मयुग	17 फरवरी
2. पिकनिक	धर्मयुग	13 जुलाई

1953

1. उलटा चोर कोतवाल को डाटे	अज्ञात	4 अक्तूबर

1954

1. तरक्की	धर्मयुग	4 जुलाई

1955

1. कर्त्तव्य की पुकार	अज्ञात	26 जनवरी
2. दूर की सूझ	धर्मयुग	6 फरवरी
3. चक्कर	धर्मयुग	30 अक्तूबर

1956

1. नियुक्ति	धर्मयुग	8 जनवरी
2. बदला	म० प्र० सन्देश	22 सितम्बर

1958

1. दुनिया कैसे चल रही है	धर्मयुग	9 जनवरी
2. कानून के अन्दर	कल्पना	सितम्बर
3. रहस्य	म० प्र० सन्देश	8 नवम्बर
4. अंधेरा उजाला	सुप्रभात	अज्ञात

1959

1. मंगल की रात	मेरी प्रिय कहानियाँ	मार्च से पूर्व
2. चेंज	"	"
3. पागल कौन	"	"
4. मोड़	"	

5. महात्मा के भक्त	मेरी प्रिय कहानियां	मार्च से पूर्व
6. न्याय	"	"
7. आशा-निराशा	"	"
8. प्रतिक्रिया	"	"
9. मेहमान	"	"
10. गुमराह	"	"
11. मनुष्य और घोड़े	"	"
12. ढाई अच्छर	धर्मयुग	8 फरवरी
13. सत्यासत्य	म० प्र० सन्देश	7 मार्च
14. बाप बेटे	"	6 जून
15. शिक्षक की मृत्यु (मराठी में ही)	अज्ञात	नवम्बर
16. फैसला	धर्मयुग	4 नवम्बर
17. इस युग की सावित्री	ज्ञानोदय	दिसम्बर
18. बिछुड़े हुए मिलेंगे	रत्नदीप	अज्ञात

1960

1. सज्जन	धर्मयुग	17 अप्रैल
2. प्रेम कहानी	अज्ञात	11 दिसम्बर
3. प्रतिशोध	अज्ञात	अज्ञात

1962

1. एक औसत आदमी की हत्या	नीहारिका	फरवरी
2. काल गर्ल	नीहारिका	मई
3. आश्चर्य	ज्ञानोदय	अक्तूबर
4. नग्न चित्र	नीहारिका	"

1963

1. वोट कही नही गये	सा० हिन्दुस्तान	4 अगस्त
2. एक बूंद जहर	कहानी	अज्ञात
3. अभी तो बात बाकी है	माया	अज्ञात
४. साहब, बीवी, गुलाम	नई सदी	जून

1964

1. खलनायक	आँखे	1964

2. अफसोस	आँखें	1964
3. कोई असुविधा नही	"	"
4. वकालत	"	"
5. कलाकृति	"	"
6. ग्रन्थियों की क्रिया	"	"
7. काठ की हाडी	"	"
8. नीयत	"	"
9. जीवन और मृत्यु	"	"
10. आँखें	"	"

1968

1. सत्य का दर्शन	कहानी	जनवरी
2. युगान्तर	अज्ञात	जनवरी
3. जिन्दगी-भर लाश ढोता रहा	सा० हिन्दुस्तान	18 फरवरी
4. खटमल पुराण	अज्ञात	अप्रैल
5. नदी के उस पार एक ब्याही और इस पार एक अनब्याही	नीहारिका	मई
6. घर में आग लग गई	म० भा० सन्देश	19 नवम्बर
7. सत्य बनाम उसकी खोज	सा० हिन्दुस्तान	अज्ञात
8. नैतिक असर	माया	अज्ञात

1976

1. थानेदार	राष्ट्रधर्म	फरवरी

1978

1. घर में आग लग गई	सैनिक समाचार	14 नवम्बर

परिशिष्ट (ख)

कहानी-संकलनों में प्रकाशित कहानियाँ

दूर की कौड़ी
(प्रथम संस्करण 1950)

1. राजनीति
2. सोख्ते का टुकड़ा
3. महान अमीर ने अखबार निकाला
4. यन्त्र का मूल्य
5. तीसरी बीवी
6. वाइसराय का मैडल
7. महायुद्ध की देन
8. देशभक्त का अन्त
9. पन्द्रह रुपये बारह आने

रक्त के बीज
(प्रथम संस्करण 1951)

1. राज-भक्त
2. क्रांति का मुहूर्त
3. भ्रांति भग
4. इतिहास से बाहर
5. कलाकार का जगत
6. न्याय की गति
7. प्रेम की विचित्र गति (मटरू गुरु)
8. भाग्य की चाभी
9. खिलौना कारपोरेशन
10. नीव की ईंट

मेरी प्रिय कहानियाँ
(प्रथम संस्करण मार्च, 1959)

1. फाँसी
2. मगल की रात
3. चेंज
4. पागल कौन
5. मोड़
6. महात्मा के भक्त

17. गुल जो खिला
18. धोखा
19. कानून के अन्दर
20. पुरुष और स्त्री (1953 से पहले)
21. वकालत
22. भीड़ में एक औरत
23. स्कूल मास्टर
24. दूर की सूझ
25. चक्रवत
26. खलनायक
27. उलटा चोर कोतवाल को डाँटे
28. वेरी सॉरी (1953 से पहले)
29. इस युग की रामायण
30. समाधान
31. कल भेजवा दूंगा
32. चम्मच
33. चार लेडी टाइपिस्टें
34. प्रतिशोध
35. अपने अपने जमाने के
36. भैरवी चक्र का पुनराविष्कार
37. माफ़ी
38. भ्रम गलत
39. देशभक्त
40. दो भाई
41. रहस्य
42. सज्जन
43. सफेदपोश
44. अभ्यागत
45. प्रेम का मूल्य (1953 से पहले)
46. तकल्लुफ
47. पतिव्रताएँ
48. धोबी से बुरा (1953 से पहले)
49. मुक्ति
50. क्रिया-प्रतिक्रिया (1953 से पहले)
51. सौवाँ झूठ
52. दो बिस्तरे
53. जमाना
54. एक परिवार (1953 से पहले)
55. ईश्वर की इच्छा (1953 से पहले)
56. डॉक्टर और डॉक्टर (1953 से पहले)

परिशिष्ट (घ)
अनूदित कहानियाँ

बंगला से

1. तब और अब	प्रबोध मजुमदार	मनोहर कहानियाँ, जुलाई, 46
2. बच्ची का चम्मच	भास्कर	,, 7 जुलाई, 46
3. अथाह	विभूतिभूषण मुखोपाध्याय	देशदूत, 1 सितम्बर, 46
4. संकोच	गजेन्द्रकुमार मित्र	देशदूत, 29 सितम्बर, 46
5. छायावादी कहानी	सुबोध बसु	देशदूत, 13 अक्तूबर, 46

6. भाटे के खिंचाव में	प्रबोध मजुमदार	माया, अक्तूबर, 46
7. नानाजी का रोमांस	नारायण गंगोपाध्याय	मनोहर कहानियाँ, नवम्बर, 46
8. आधुनिका	विश्वपति चौधरी	" " " "
9. ताँबे का तार	हेमेन्द्रकुमार राय	माया, नवम्बर, 46
10. नई रोशनी	अरुण गुह	माया, दिसम्बर, 46
11. अभागी का स्वर्ग	शरत् चट्टोपाध्याय	मनोहर कहानियाँ, जनवरी, 47
12. घोर	भवेश दत्त	" " जनवरी, 47
13. इतिहास की पुनरावृत्ति	हेमेन्द्रकुमार राय	माया, फरवरी, 47
14. नई बहू	आशीष कुमार बर्मन	माया, अप्रैल, 47
15. आधुनिका	विश्वपति चौधरी	मनोहर कहानियाँ, मई, 47

रूसी से

1. फ्लूही	अलेक्जेंडर रूसो	मनोहर कहानिया, दिसम्बर, 46
2. करोड़पति	कुप्रिन	माया, मार्च, 47
3. पुरानी शराब	शोओलोफ	मनोहर कहानियाँ, अप्रैल, 46

उर्दू से

1. नया कानून	मंटो	माया, नवम्बर, 46

परिशिष्ट (ङ)
मन्मथनाथ गुप्त पर शोध-कार्य

कु० बलविन्दर गुलाटी, एल० डी० आर्ट्स कालेज, अहमदाबाद ने पी-एच० डी० उपाधि के लिए शोध-कार्य किया।

मन्मथनाथ गुप्त पर प्रकाशित लेख

1. साहित्य-कला-समीक्षा (पुस्तक समीक्षा) . कमला वर्मा, 'आजकल,' नवम्बर, 1955।
2. लेखनी और तलवार के धनी श्री मन्मथनाथ गुप्त : परमानन्द रस्तोगी, साप्ताहिक 'भारत' इलाहाबाद, 7 फरवरी, 1960।
3. क्रांतिकारी उपन्यासकार श्री मन्मथनाथ गुप्त—उनके उपन्यासों की समस्याएँ तथा विचारधाराएँ : डॉ० रामचरण 'महेन्द्र', 'मल्हार', 14 अप्रैल, 1963।
4. मशाल को जलाये रखने वाले श्री मन्मथनाथ गुप्त : बनारसीदास चतुर्वेदी,

'जनस्वर,' 10 नम्बर, 1974।

5. A Criticel View of Gandhi (Book Review Baren Roy, 'Link', 24th July, 1983.
6. इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता है (इंटरव्यू) : 'जागरण', 28 अगस्त, 1983।
7. यह कैसा सम्मान : वसन्त श्रीवास्तव, 'दिनमान,' 25 फरवरी, 1984।
8. क्रांतिकारी साहित्यकार—मन्मथनाथ गुप्त : डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा, 'गिरिराज' साप्ताहिक, 6 तथा 13 फरवरी, 1985।

□□